स्मृति

स्वर्गीय सेठ कमलापतजी सिंहानिया की पवित्र स्मृति में:—

PATRONS.

RULERS

1—His Highness Maharajadhiraj Sir George Jiwaji Rao Scindia Alijah Bahadur G. C I E Gwalior

2—Late Colonel His Highness Maharao Sir Ummed Singh Bahadur G C S I, G. C. I E., G B E, L-L D., Kotah

3—Lieutenant His Highness Maharaja Krishna Kumar Singh Bahadur Bhawnagar.

4—Lieutenant colonel His Highness Maharaja Jam Sahab Sir Digvijay Singh Bahadur K C S I, Nawanagar

5—Lieutenant colonal His Highness Maharaja Lokendra Sir Govind Singh Bahadur G C S I, K. C S. I., Datia

6—Lieutenant His Highness Maharaj Rana Rajendra Singh Bahadur Jhalawar

7—Captain His Highness Maharaja Mahendra Sir Yadvendra Singh Bahadur K C S I, K. C I E., Panna

8—Rai Bahadur Devi Singh Diwan Rajgarh State, Rajgarh

BANKERS

9—Sir Lala Padampatiji Singhania, Cawnpore

10—Seth Magni Ramji Ram Kumarji Bangar, Didwana

11—Rai Bahadur Rajya Bhushan Danbir Seth Hiralalji Kashliwal Indore

12—Seth Sohanlalji Shubhakaranji Ratanlalji Dugar Fatehpur

13—Seth Chunilal Bhaichand Mehta, Bombay.
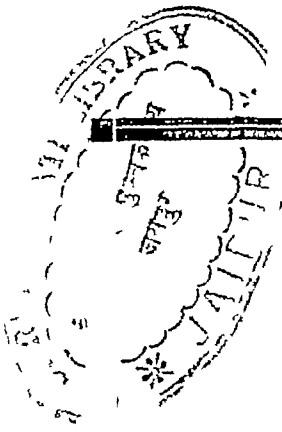
स्वर्गीय सेठ गेंदालालजी बडजात्या इन्दौर

॥ श्री ॥

सेठ गेंदालालजी सूरजमलजी बड़जात्या इन्दौर

मनुष्य जीवन कर्मशीलता का जीवन है, कर्मवीर पुरुष छोटी और कमजोर परिस्थितियों में पैदा होकर भी अपनी कर्मशीलता, अपने अध्यवसाय और अपने साहस के बल से महान् परिस्थितियों का निर्माण करता है, अपने जीवन की कठिन घड़ियों में, परिस्थिति के दुर्दान्त चक्र में और होनहार की भीषण आधी में जो मनुष्य कठिनाइयों के सामने पैर रोप कर खडा रहता है, जिसका साहस विपरीत परिस्थितियों में अटूट रहता है और जो सासारिक घटना चक्र में अविचलित रहता है ऐसे ही कर्मवीर मनुष्यों पर अन्त में भाग्य लक्ष्मी प्रसन्न होती है और अपना वरद आशीर्वाद प्रदान करती है। संसार के बड़े बडे धनाढ्यों, महान् पुरुषों और कर्मवीरों के जीवन इसी महान् सत्य को घोषित करते हुए इतिहास के पृष्ठो को उज्वल कर रहे है।

इन्दौर के सेठ गेंदालालजी बडजात्या का जीवन भी कुछ इसी प्रकार का है, सेठ गेंदालालजी उन व्यक्तियों में से एक थे जो बहुत साधारण और छोटी परिस्थितियों में पैदा होकर अपने परिश्रम, अपने साहस और अपनी मिलनसारिता के बल पर सुख सम्पति और सम्मान को प्राप्त करते रहे। इनका जन्म विक्रम सं० १९३६ में बिजलपुर (इन्दौर स्टेट) में सेठ फगड्डूजी बड़जात्या नामक साधारण गृहस्थ के यहाँ हुआ था। इनको सिर्फ तीन वर्ष का छोडकर इनके पिताजी स्वर्गवासी हो गये, और इनका लालन पालन इनकी माता के हाथों में होने लगा सिर्फ १४ वर्ष की आयुमें ही इन्होंने व्यापारिक जगत में प्रवेश किया और शुरू में अफ़ म की तथा रूई की दलाली का कार्य्य प्रारम्भ किया। दलाली के कार्य में इनकी कार्य पद्धति और प्रतिभा विलक्षण थी, इसी प्रतिभा के फल स्वरूप थोड़े ही समय में आप इन्दौर के प्रमुख दलालों में से एक हो गये। इन्दौर के सुप्रसिद्ध व्यापारी सेठ हुकुमचन्दजी का आप पर गहरा विश्वास था, और आप उनके खास व्यक्तियों में से एक थे।

ज्यों ज्यों सेठ गेंदालालजी अपनी प्रतिभा और अध्यवसाय के बल से अपने व्यवसाय में आगे बढ़ते गये त्यों त्यों भाग्य लक्ष्मी आप पर दिन दूनी रात चौगुनो प्रसन्न होने लगी और गत विश्वव्यापी युद्ध के पश्चात् तो आपकी गणना इन्दौर के प्रमुख धनिकों में होने लगी, धन के साथ साथ आपकी इज्जत, प्रतिष्ठा और मर्यादा भी बढ़ती गई। एक विशेष बात यह थी कि ज्यों ज्यों आपका धन और सम्मान बढ़ता गया त्यों त्यों धर्म में आपकी श्रद्धा और रुचि भी बढ़ती गई।

आपकी धर्म पत्नी श्रीमती हीराबाई अत्यंत सरल स्वभाव व गृहकार्य में निपुण महिला है, इनका स्वभाव अत्यत धार्मिक और उदार है। इन्होंने भारतवर्ष के सभी दि जैन तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा अनेक बार की है और श्री सम्मेद शिखर में ८००० रुपयों की लागत से एक धर्मशाला भी बनवाई है, व अन्य जगह भी कमरे, जमीन तथा अन्य सहायताएँ की है, सेठ गेंदालालजी को इनसे चार पुत्र और एक कन्या हुई। पुत्रों के नाम क्रम से श्री सूरजमलजी, बाबूलालजी, समीरमल-जी और गंभीरमलजी तथा कन्या का नाम गिरनोबाई है।

मिल व्यवसाय में प्रवेश —

सन् १९२४ में सेठ गेंदालालजी ने मिल व्यवसाय में प्रवेश किया, पहले पहल आपने कल्यानमल मिल की एजन्सी ली, और उसके पश्चात् सन् १९२७–२८ में आगरे के तीन मिलों को लीज पर लेकर मेसर्स सूरजमल बाबूलाल के नाम से उनका कार्य प्रारंभ किया।

मिल व्यवसाय में सेठ गेंदालालजी को बहुत अधिक सफलता मिली क्योंकि अब इनके बड़े

पुत्र सूरजमलजी भी अपने व्यापार में अपने पिताके साथ पूरा पूरा सहयोग करने लगे थे, इस सफलता के फल स्वरूप सन् १९३२ में जलगाव की भागीरथ मिल को इन्होंने अपने यहा रेहन रक्खा जो कि सन् १९३५ में आप ही के नाम से चलने लगी। पहले इस मिल मे ५५० आदमी काम करते थे मगर इन्होंने उसके काम को बहुत बढाया जिसके फल स्वरूप उसमें १००० आदमी काम करने लगे।

इस प्रकार बहुत साधारण स्थिति से क्रमश उन्नति करते हुए सेठ गेंदालालजी ने अपने हाथों से लाखों रुपयों की सपति का उपार्जन किया, समाज में नाम, प्रतिष्ठा और सम्मान को बढाया और अपनी उपार्जित सपति को दान धर्म और सार्वजनिक कार्यो में दिल खोलकर खर्च भी किया।

सार्वजनिक कार्य -

जनवरी सन् १९३९ में सेठ गेंदालालजी ने जलगाँव में एक नवीन जैन मन्दिर का निर्माण करवा कर उसकी वेदी प्रतिष्ठा बडे समारोह से करवाई, जिसमें इन्दौर से सैकडो साधर्मी भाई शामिल हुए थे, इस अवसर पर सेठ गेंदालालजी की ओर से सेठ हुकुमचन्दजी को कृतज्ञता प्रदर्शनार्थ एक अभिनंदन पत्र प्रदान किया गया था इस अवसर पर आपने एक लाख छत्तीस हजार रुपयों का दान निकाला था। जिसमें से ६० हजार औषधि दान में, २५ हजार विद्या दान में, २१ हजार जीर्णोद्धार फड में और १० हजार अभयदान मे विभाजित कर दिये गये। इस रकम का उचित खर्च करने के लिये एक ट्रस्ट कायम कर दिया गया है, इस रकम के सिवाय करीब दो लाख पचास हजार की रकम सेठ गेंदलालजी ने अपने जीवन काल में भिन्न भिन्न सार्वजनिक कार्यो में और दान की, आपने स्वर्गारोहण के समय भी १७ हजार का दान निकाला।

इस प्रकार अपने परिश्रम और अध्यवसाय से जीवन के कठिन क्षेत्र में सफलता पूर्वक बढते हुए अटूट सपत्ति, सन्मान और प्रतिष्ठा प्राप्तकर सेठ गेंदालालजी स० १९९८ में स्वर्गवासी हुए।

हम ऊपर लिख आये हैं कि सेठ गेंदालालजी के श्री सूरजमलजी, बाबूलालजी, समीरमलजी और गम्भीरमलजी नामक चार पुत्र हुए, ये चारों भाई इस समय अपने स्वर्गीय पिताजी के विस्तृत कारोबार का सचालन कर रहे है।

सेठ सूरजमलजी – सेठ गेंदालालजी के बडे पुत्र, सेठ सूरजमलजी का जन्म सम्वत् १९६५ में हुआ, आप प्रारभ से ही बडे प्रतिभाशाली और बुद्धिमान थे, अपने पिताजी की छत्रछाया मे रहकर बहुत ही जल्दी अपने सारे कारबार ओर विशेष कर मिल व्यवसाय में आपने निपुणता प्राप्त कर ली। सेठ गेंदालालजी ने मिल व्यवसाय में जो भारी सफलता प्राप्त की उसमें आपही का प्रधान हाथ रहा, अपने पिताजी के पश्चात भी आपने अपने मिल व्यवसाय की खूब विस्तृत किया।

कुछ दिनों पूर्व सेठ सूरजमलजी ने राय बहादुर सेठ हीरालालजी और सेठ मिश्रीलालजी गङ्गवाल के साथ खम्भात मिल को लीज पर लिया। इस कार्य में भी ईश्वर कृपा से लाखों रुपयों का लाभ हुआ, मतलब यह कि आप अपने भाईयों के साथ बहुत दक्षता पूर्वक अपने व्यवसाय का सञ्चालन कर रहे हैं, अपने पिताजी के पश्चात् आपने अपनी सम्पत्ति और प्रतिष्ठा को खूब बढाया है। साथ ही धार्मिक, सामाजिक और सार्वजनिक कार्यों में आप उदारता पूर्वक काफी खर्च करते रहते है।

इस समय यह परिवार इन्दौर के जैन समाज के प्रमुख और प्रतिष्ठित परिवारो में एक माना जाता है।

विषय-सूची नं० १

(हिन्दी नाम)

विषय-सूची नं० २

(संस्कृत नाम)

विषय-सूची नं० ३

(मराठी नाम)

विषय—सूची नं० ४

(गुजराती नाम)

विषय-सूची नं० ५

(बङ्गला नाम)

INDEX No. 6

(*Latin Names*)

विषय—सूची नं० ७

(रोगानुक्रम से)

विशेष प्रभावशाली औषधियों के आगे * ऐसे फूल लगा दिये गये हैं।

ज्वर

अतिसार

संग्रहणी

मस्तकशूल और आधा शीशी

उदर रोग

चर्म रोग और रक्त रोग

पुरुष जननेन्द्रिय संबंधी रोग

बनौषधि चन्द्रोदय

(आठवाँ भाग)

वनौषधि चन्द्रोदय

(आठवाँ भाग)

भुइअरंडी

नामः—

कोकण—भुइअरडी । लेटिन—Sebastiania chamaelea (सबस्टेनिया चेमेलिया) ।

वर्णन—यह एक वर्ष जीवी छोटी जाति की वनस्पति होती है । इसके पत्ते २ से लेकर ७-५ सेंटि मीटर तक लम्बे और .४ से लेकर १-३ सेंटिमीटर तक चौडे होते हैं । इसके फूल पीले रंगके होते है और इसके बीज पीले, दोनों किनारों से गोल और ४ मिलिमीटर लम्बे होते हैं । यह वनस्पति बिहार, कोकण और सीलोन में पैदा होती है ।

गुणदोष और प्रभाव—इसके पौधे का रस शराब के साथ मिलाकर एक संकोचक वस्तु की तरह काम में लिया जाता है । इसके पौधेसे सिद्ध किया हुआ घी पौष्टिक माना जाता है और सिरके चक्कर को दूर करने के लिये इसका लेप मस्तक पर किया जाता है ।

भुंइदरी

नामः—

बम्बई—मुइदरी, मुइदारी, । लेटिन—Tylophora Fasciculata (टिलोफोरा फेसिक्यू-लेटा) ।

वर्णन—यह एक छोटी जाति की वनस्पति होती है । इसकी डालियां जमीनसे ही फूटती हैं । यह वनस्पति मध्यभारत से लेकर सिलोन तक और गंगाके उत्तरी मैदानोंमें पैदा होती है ।

गुणदोष और प्रभाव—इसकी जड़ का रस दूधमें मिलाकर पौष्टिक वस्तुकी तरह दिया जाता है । इसके पत्तोंको कुचलकर लेप के बतौर दुष्ट व्रण और जख्मोंमें स्वस्थ मांसांकुर पैदा करने के लिये लगाया जाता है ।

भुंइजाम

नामः—

बंगाल—बनजाम । उड़िया—मुइजामू, मुइजाम, कुदना, कुतू । मध्यप्रान्त—कटेना, मेयारेवा । लेटिन—Ardisia Humilis (अरडीसिया ह्यूमिलिस) ।

वर्णन—यह एक झाड़ी होती है । इसके पत्ते बड़े होते हैं । यह वनस्पति प्रायः कमोबेश सारे भारत में पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति उत्तेजक और शान्ति दायक होती है ।

भूमि कुम्हड़ा

नामः—

बंगाल—भूमि कुम्हड़ा । लेटिन—Trichosanthes Cordata (ट्रिकोसेंथस कोरडेटा) ।

वर्णन—यह परवल के वर्गकी पराश्रयी लता होती है जो गंगाके उत्तरी मैदानों में और हिमालयमें नेपालसे बंगाल तक पैदा होती है ।

गुणदोष और प्रभाव—इसकी जड़का उपयोग पौष्टिक वस्तुकी तरह किया जाता है । ढाकामें इसकी

जडको सुखाकर उसका चूर्ण करके ५ रतीकी मात्रा में तिल्ली, यकृत और आतोंकी खराबी को दूर करनेके लिये देते हैं। इसकी ताजा जड को तेलमें मिलाकर उसका लेप कुष्ट जनित व्रणों पर किया जाता है।

पटनामें इसके सूखे फूल उत्तेजक वस्तुकी तरह दिये जाते हैं।

भूतकेशी

नामः—

सस्कृत—भूतकेशी। हिन्दी—भूतकेशी, भूतकिस। पजाब—भूतकेस। बंगाल—भूतकेशी। लेटिन—Corydalis Govaniana (कोरिडेलिस गोवेनिएना)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से लेकर कुमाऊ तक ८ हजार फीटसे १२ हजार फीटकी ऊचाई तक पैदा होती है। इसके फूल पीले रगके, दूध पीले रगका और स्वाद बहुत कडवा होता है। औषधिमें इसकी जडें काम आती है।

गुणदोष और प्रभाव—इसकी जड पौष्टिक, मूत्रल, धातु-परिवर्तक और पार्य्यायिक ज्वर निवारक मानी जाती है। यह उपदंश जन्य विकृति, कठमाला और चर्मरोगों में उपयोगमें ली जाती है।

भूतिया बादाम

नाम—

हिन्दी—भूतिया बादाम। गढवाल—कावसी, शीरोल्स। काश्मीर—थागी, थागकोली, विनटी। कुमाऊ—भूतिया बादाम, कावसी। लेटिन—Corylus colurna (कोरीलस कोलुर्ना)।

वर्णन—यह एक छोटा और मध्यम क़दका वृक्ष होता है। इसकी छाल गहरे भूरे रगकी और पतली होती है। यह वृक्ष हिमालय में काश्मीर से कुमाऊ तक पाँच हजार से लेकर दस हजार फीटकी ऊंचाई तक पैदा होता है।

गुणदोष और प्रभाव—इसके फल पौष्टिक वस्तुकी तरह उपयोगमें लिये जाते हैं।

भुइखाखसा

नामः—

सस्कृत—मार्कंडिका, भूमिचरी, मार्कंडी, मृदुरेचनी, भूमिवल्ली, पीतपुष्पी, महौषधि, जालतिका,। हिन्दी—भुइखखसा। गुजराती—मीढीं आवल, सोनामुखी। मराठी—भुइतरवड। तेलगू—नेलपोन्ना। बगाल—सेनामकी, सोनपात। फारसी—सनाये हिन्दी। इगलिश—Bamboy senna। लेटिन—Cassia Angustifolia (केसिया अगुस्टीफोलिया)।

वर्णन–यह एक सनायकी देशी जाति होती है जो हिन्दुस्तानके कुछ भागोंमें बोई जाती है ।

गुणदोष और प्रभाव–आयुर्वेदिकमत–आयुर्वेदिकमत से इसका पौधा कब्जियतको दूर करने वाला और भूख बढाने वाला होता है । यह उदर शूल, यकृतकी शिकायतें, तिल्ली की वृद्धि, अम्लपित्त, अजीर्ण, मोती ज्वर, पीलिया, पाडुरोग, कुष्ट, विषविकार, खासी, श्वासकी दुर्गंध और अर्बुद में लाभदायक होता है ।

इसका पौधा उत्तम जातिकी सनाय के नामसे बेचाजाता है ।

भेदस

नाम.—

मराठी–भेदस । उडिया–सागर बटना । तामील–मरुगी । लेटिन–Eugenia spicata (यूगेनिया स्पिकेटा) ।

वर्णन—यह जामुनके वर्ग की एक वनस्पति होती है । इसका वृक्ष मध्यम क़दका और झाडीनुमा होता है । जब इस पर फूलों की बहार आती है तब यह बहुत ही सुन्दर मालूम होता है। इसके फूल सफेद रग के होते हैं । इसका फल मटर के आकार का बिलकुल सफेद और एक बीज वाला होता है । यह वनस्पति उडीसा सिलहट और सीलोने में पैदा होती है ।

गुणदोष और प्रभाव—इसके बीज उत्तेजक, सधिवातको नष्ट करनेवाले और उपदश जन्य विषको दूर करनेवाले होते हैं । इन गुणों के कारण इण्डोचायना में इस वनस्पतिका बहुत प्रचार है ।

भेरी

नामः—

हिन्दी—भेरी, वेरी, चिलारा, चिल्ला । बबइ—बेरी, चिलारा । गुजराती—घोलेम, सुझल । कुमाऊ—चिल्ला । मराठी—करेई, लेनजा, मस्ती, मोदगी । उडिया—गिरारी । तामील कदिचाई । तेलगू—चिलाक दुद्दी । लेटिन—Casearia Tomentosa (केसेरिया टोमेंटोसा) ।

वर्णन—यह एक छोटी जातिका वृक्ष होता है । इसकी छाल मोटी, कुछ पीलापन लिये हुए सफेद, और मुलायम होती है । इसके पत्ते कगूरेदार और लबगोल होते हैं । इसके फूल कुछ हरापन लिये हुए सफेद होते हैं । इसके फल मासल, अडाकार, मुलायम, चमकते हुए और आधे इच से पौन इच तक लबे होते हैं । इसके फलका स्वाद कडवा होता है । यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्षमें पैदा होती है ।

गुणदोष और प्रभाव—जलोदरके अदर इसके फलका गूदा खिलानेसे और इसकी छालका लेप सारे शरीरमें करने से लाभ होता है । इसके फलका गूदा एक उत्तम मूत्रल वस्तु होती है ।

भोमा

नामः—

मराठी—भोमा। कनाडी—बनवारा, निरचेलि, निरजनी, सुलाई। उडिया—बनिया कधम, चिकनी, कलचिया। लेटिन—Glochidion Hohenackeri (ग्लोचिडिओन होहेनेकेरी)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। इसके पत्ते ६-३ से लेकर १५ सेंटिमीटर तक लंबे और २-५ से ४-५ सेंटिमीटर तक चौड़े होते हैं। इसके फूल कुछ हरापन लिये हुए पीले रगके होते हैं। इसके बीज लाल रगके और बहुत मुलायम होते हैं।

गुणदोष और प्रभाव—इसकी छाल उस समय औषधिके रूपमें दी जाती है जब कि पेटमें खाना हजम नहीं होता और पेट भोजन के विरुद्ध विद्रोह करता है।

भोजपत्र

नामः—

संस्कृत—भूर्जपत्र, भूर्ज, बहुल वल्कल, बिदुपत्र, भूतघ्न, इत्यादि। हिन्दी—भोजपत्र, भुजपत्र। गुजराती—भोजपत्र। बबई—भोजपत्र। मराठी—भूर्जपत्र। बगाल—भूर्जिपत्र। गढवाल—भुज। पंजाब—भुज, बुरुझल। तेलगू—भुजपत्री। लेटिन—Betuta Bhojapatra (बेटुटा भोजपत्र)।

वर्णन—यह एक छोटी जातिका झाड़ीनुमा वृक्ष होता है। इस वृक्षकी छाल को ही भोजपत्र कहते हैं। यह कागज के समान अथवा केलेके सूखे पत्तेके समान होता है। पहिले जब कागज नहीं बनता था तब भोजपत्र ही कागजके स्थानपर व्यवहार किया जाता था।

गुणदोष और प्रभाव—आयुर्वेदिकमत—आयुर्वेदिकमतसे इसकी छाल कसेली, चरपरी, गरम, पौष्टिक, भूतबाधाको दूर करनेवाली और आक्षेप, खासी, रक्तरोग, कर्णरोग, कुष्ठ और त्रिदोषको दूर करनेवाली होती है।

यूनानीमत—यूनानीमतसे भोजपत्र कर्णशूलमें लाभ दायक होता है। इसकी छालका काढा कानसे बहनेवाली पीब और जहरीले जखमों को धोनेके काममें लिया जाता है।

इसकी छालका शीतनिर्यास हिस्टीरियामें उपयोगी और शातिदायक माना जाता है। इसमें कुछ सुगधित और कृमिनाशक तत्व रहते हैं। मलायामें इसकी छाल काढ़े के रूपमें पीलिया और पित्तज्वर को दूर करनेके लिये दी जाती है।

भोरी लोध

नाम:—

हिन्दी—मैदालोध, धूपियालोध। लेटिन—Combretum Pilosum (कोम्ब्रेटम पिलोसम)।

गुणदोष और प्रभाव—कर्नल चोपड़ाके मतानुसार यह एक प्रकारकी झाड़ी होती है जो कड़वा [illegible] और आसाममें पैदा होती है। इसके पत्तोंका काढ़ा कृमिनाशक औषधिकी तरह काममें लिया जाता है।

मकड़ी का जाला

नाम—

संस्कृत—ऊर्णनाभतन्तु। हिन्दी—मकड़ी का जाला। मराठी—कोळ्याचे घर। गुजराती—करोळियानाजाळ। अंग्रेजी—A Spider।

वर्णन—एक जाति की मकड़ी होती है जो मकानों की दीवालों पर सफेद रंग के कागज के समान जाले बनाती है। ये जाले करीब २ इंच चौड़े और २ इंच लम्बे, गोलाकार होते हैं। इन्हीं जालों का यहाँ पर वर्णन किया जा रहा है। यह ध्यान में रखने की बात है कि दूसरी मकड़ियाँ रुई के समान जो जाले बनाती हैं उनको उपयोग में नहीं लेना चाहिये।

गुणदोष और प्रभाव—

यद्यपि प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस वस्तु के सम्बन्ध में कोई वर्णन दिखलाई नहीं पड़ता फिर भी बहुत वैद्य और पण्डितों के अनुभव में इस वस्तु के कई गुण अनुभव में आये हैं और उन्हीं की परम्परा के अनुसार हमने भी इस वस्तु को उपयोग में लेकर देखा है और चमत्कार पाया है।

मलेरिया ज्वर और मकड़ी का जाला—

मलेरिया ज्वर के ऊपर यह वस्तु चमत्कारिक प्रमाणित हुई है। विशेष करके इकांतरे के कई केसों में हमने इस वस्तु को चमत्कारिक पाया है। इसको देनेका तरीका इस प्रकार है :—

मकड़ी के जालों को दीवाल पर से खोलकर उनको दोनों तरफ से कपड़े से साफ करके रख लेना चाहिये। इन जालों में से १ रत्ती की मात्रा में दवा लेकर उसको गुड़ में मिला कर गोली बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से सबेरे, दोपहर और तीसरे पहर एक २ गोली ठण्डे पानी के साथ देने से और पथ्य में सिर्फ दूध या मोसम्बी का रस देने से सब प्रकार का मलेरिया ज्वर, इकांतरा, तिजारी, चौथिया, इत्यादि शमन होते हैं।

विशेष करके इकांतरे पर तो ये गोलियां विशेष रूप से अनुकूल हैं।

रसतन्त्रसार नामक ग्रंथके कर्त्ता सिद्ध निम्बावतने इकतरेपर इस औषधि के प्रयोगकी एक दूसरी विधि बतलाई है। वह इस प्रकार है—

मकड़ी के सफेद जालेकी बत्ती बनाकर उसको तेल में भिगोकर जला देना चाहिये और उसका काजल पाड़ लेना चाहिये। इस काजलको आंखों में आंजने से इकांतरा ज्वर दूर होता है।

जिन मकडी के जालों में से अडे और जीव दूर होगये हों उन जालों को इकट्ठे करके साफ करके एक २ जाला गुड में मिलाकर सबेरे, दुपहर और शामको भोजन के पश्चात खानेसे ५ दिन में सब प्रकार के दमा और खासी में बहुत लाभ होता है।

कलकत्तेके होमियोपैथ डॉक्टर डी. एन. रॉयने इस वस्तुसे ब्लेटा ओरियेंटालिस (Blatta orientalis) नामक एक स्पेशल औषधि तैयार की है। उनका कथन है कि जिन रोगियों के शरीर में चर्बी बहुत जम रही हो, उन लोगों के दमे में यह औषधि बहुत लाभ करती है। एक रोगी को १३ बर्ष से दमा चढता था और जिस समय इस दवा का उपयोग किया गया था उस समय करीब डेढ महिने से तो उसे इतना जोर का दम चढता था कि उसको ५ मिनिट का आराम मिलना भी कठिन था। खासी भी उसको बहुत जोरसे आती थी। उसकी छाती और यकृतका भाग बहुत दर्द करता था, न वह अच्छी तरहसे सो सकता था और न खा सकता था। उस रोगीको इस दवाकी ३× शक्तिके चूर्णकी ६ पुडिया बनाकर हर दो दो घटेके अतर से देनेसे आशातीत लाभ हुआ।

सुप्रसिद्ध होमियोपैथिक डाक्टर सर लाहिडी अपनी स्पेशल प्रिपेरेशन्स नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि ब्लेटा ओरियेंटालिस जो कि एक जातिकी मकडी और बादा नामक जीवोंसे तैयार की जाती है, दमे के रोग को दूर करनेके लिये एक आश्चर्य जनक उपाय है। औषधि चिकित्साके इतिहासमें आये हुए भिन्न भिन्न स्थितिके और दुस्साध्य हजारों केसोंको इस औषधिने थोडेही दिनोंमें आराम किया है। इसी प्रकार दमेके अत्यत कष्टदायक सामयिक हमलोंको रोकने में भी यह औषधि बहुत सफल सिद्ध हुई है।

इस सारे विवेचनसे तथा दमेके रोगियों पर लिये हुए इसके अनुभवसे यह विश्वास किया जा सकता है कि यह औषधि हरएक प्रकारके दमेंमें बहुत लाभ पहुँचाती है। इसकी १ × से लेकर ३×तकके पॉवरकी औषधि टिंक्चर अथवा चूर्णके रूपमें दी जाती है। यह औषधि तैयार हाल्तमें किसी भी बडे होमियौपैथिक केमिस्ट के यहा मिल सकती है।

मकोय

नामः—

सस्कृत—काकमाची, ध्वाक्षमाची, वायसी, घनाघना, बहुफला, बहुतिक्ता, कुष्ठघ्नी, इत्यादि। हिन्दी—मकोय, कवैय्या, चरगोटी, गुरकमाई। गुजराती—पीलुडी। मराठी—ल्घुकावडी, कामोनी। बगाल—काकमाची, मको, तुलीदन, गुडकामाई। बबई—घाटी, कामुनी, मको। पजाब—कचमच, कम्बेई, मको, कॉसफ। उर्दू—मकोय। तामील—मानातक्काली। तेलगू—गजचेट्टू, काकमाची, कमाची,। अरबी— अम्बूसालब। फारसी—रोबाहतरीक। इग्लिश—Common night Shade (कामन नाइट शेड)। लेटिन—Solanum Nigrum (सोलेनम नायग्रम)।

वर्णन—मकोय के पौधे एक से लेकर तीन फुट तक ऊँचे होते हैं। इसकी डालियाँ मिरची की डालियों की तरह आडी टेढी निकलती है। इसके पत्ते गोल, लम्बे और मिरची के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फूल सफेद रग के और छोटे होते हैं। इसके फल छोटी गूदी के फलों के समान होते हैं। ये कच्ची हालत में हरे, पकने पर लाल और बाद में काले पड जाते हैं। मालवे में यह औषधि चरबोटी के नाम से मशहूर है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मकोय त्रिदोष नाशक, स्निग्ध, गरम, स्वर को सुधारनेवाली, वीर्यजनक, कडवी, रसायन, चरपरी, नेत्रों को हितकारी तथा सूजन, कोढ, बवासीर, ज्वर, प्रमेह, हिचकी, वमन और हृदय रोग को हरनेवाली है। राज निघण्टु के मतानुसार मकोय चरपरी, तिक्त, गरम, कफ नाशक तथा शूल, बवासीर, सूजन, कोढ और खुजली को नष्ट करनेवाली होती है।

निघटु रत्नाकरके मतानुसार मकोय तिक्त, गरम, चरपरी, रसायन, कामोद्दीपक, पौष्टिक, मूत्रल, भूख बढानेवाली, रुचिवर्धक, हृदय और आखोंकी तकलीफ को दूर करनेवाली, दस्तावर, हल्की तथा कफ, शूल, बवासीर, सूजन, त्रिदोष, कोढ, खुजली, कानोंके कीडे, अतिसार, हिचकी, वमन, श्वास, खासी, ज्वर और हृदयरोग को दूर करती है।

यूनानीमत—यूनानीमतसे मकोय की जडकी छाल मृदु विरेचक कान, नाक और आँखकी बीमारी में उपयोगी, गलेपर होनेवाले व्रणमें लाभदायक, कठनाली की जलन को दूर करनेवाली तथा जीर्णज्वर और यकृत की सूजनमें बहुत उपयोगी होती है। यह औषधि गर्भवती स्त्रियोंको नहीं देना चाहिये। इसके पत्ते खराब गध और खराब स्वाद वाले होते हैं। ये मस्तक शूल और नाककी बीमारी में लाभ पहुँचाते हैं। इसका फल सूजनको दूर करनेवाला और ज्वरकी प्यासको मिटानेवाला होता है। इसके बीज मृदु विरेचक, वहमको दूर करनेवाले और सुजाक, प्यास और सूजनमें लाभदायक होते हैं।

देशी चिकित्सा विज्ञानमें सूजन को दूर करनेवाली जितनी वनस्पतिया प्रधान मानी जाती हैं उनमें मकोय भी एक है। इसकी प्रधान क्रिया यकृत के ऊपर होती है। इसके सेवन से यकृत की सब क्रिया सुधर कर उसमें उचित रूपसे रस की उत्पत्ति होने लगती है और विषैले उपसर्गोंकी उत्पत्ति बद हो जाती है। यकृतकी क्रिया बिगडनेसे जो सूजन, बवासीर, उदररोग, अतिसार या कई प्रकारके चर्मरोग हो जाते हैं वे सब इस औषधि के सेवनसे धीरे २ मिट जाते हैं। इसके पत्तोंके रससे दस्त साफ होकर आतोंके अदर पैदा होनेवाला विष नष्ट हो जाता है और जो थोडा बहुत विष यकृत में पहुँचता है वह पेशाब के जरिये से बाहर निकल जाता है। पित्त प्रकोपमें इसके पत्तोंकी शाग बहुत उपयोगी होती है। सूखी खुजली, दाद, खसरा तथा प्राचीन चर्म रोगोंमें इसके कोमल पत्तों तथा डखलों की तरकारी बहुत लाभदायक होती है। इसके पत्तोंका लेप भी ऐसे रोगोंमें किया जाता है। सूजन में इसके फलोंका लेप और उनका सेवन लाभदायक होता है। सुजाक, बस्तिशोथ, मूत्रपिंड की सूजन, और हृदयकी सूजन में वेदना को दूर करने के लिये इसके पत्तोंका रस पिलाया जाता है। मुँह, बवासीर अथवा किसी भी अग से होनेवाले रक्तस्राव को

रोकने के लिये इसका स्वरस उपयोगी होता है। जलोदर, हृदय रोग और नेत्ररोगों में इसके फल दिये जाते हैं। मकोय के रसको देने की विधि इस प्रकार है:—

इस वनस्पतिका स्वरस निकालकर उसको मिट्टी के बर्तन में भरकर हल्की आँच पर गरम करना चाहिये। जब उसका हरा रंग बदलकर कुछ ललाई लिये हुए बदामी पन पर आजाय तब उसको उतारकर छानकर १५ से २० तोले तक की मात्रा मे पीनेसे यह विरेचक और मूत्रल असर पैदाकर लीव्हर अथवा यकृत के पुराने से पुराने रोग को दूर करता है। तिल्ली की वृद्धि को मिटाकर सारे शरीर में चढी हुई सूजनको उतार देता है। हृदय रोग के अदर भी यह बहुत लाभ बतलाता है। इसी प्रकार तैयार किये हुए रस को कुछ कम मात्रा में अर्थात् २॥ तोले से ५ तोले तक की मात्रा में देने से यह अपना रक्त शोधक असर बतलाता है और शरीर में फैली हुई खुजली की व्याधिको तथा उपदशकी वजह से पैदा हुए रक्त दोषोंको दूर करता है। यह औषधि अपने मूत्रल गुण की वजह से पेशाब में इकट्ठे होने वाले क्षारों को गलाकर रक्त को शुद्ध और पुष्ट करती है, जिससे मनुष्यकी देह रोग मुक्त होकर दीर्घायु को प्राप्त करती है। इसीसे इस वनस्पति की गणना आयुर्वेद में रसायन औषधियों में की गई है। अगर इसका विधि पूर्वक सेवन किया जाय तो सधिवात, गठिया, जलोदर, प्रमेह, कफ, सूजन, बवासीर, कुष्ठ, लीव्हर तथा तिल्ली के रोगो में बहुत उपयोगी साबित होती है। इस औषधि में सूजन नाशक, जलरेचक और वेदनाशामक धर्म रहनेकी वजह से अडकोषकी वृद्धि में इसके रसका लेप किया जाता है। स्वेदल गुण की वजह से यह ज्वर में भी दीजाती है। इस औषधि में बेक्टेरिया नामक जन्तुओं को नष्ट करनेकी शक्ति भी रहती है जिससे इसके फल और फूलों का निर्यास क्षय रोगियों को देने में आता है।

इन सब बातोंके अतिरिक्त इस वनस्पति में जहरी चूहे के विषको नष्ट करनेकी अद्भुत शक्तिभी रहती है। जहरी चूहे के काटने से सारे शरीर का रक्त विषमय होकर जो यत्रणा पैदा होती है उसमें इसके रसको सारे शरीर पर मालिश करने से और १० तोले पानीमें १० तोले शक्कर और दो तोले मकोय का रस मिलाकर प्रतिदिन सवेरे शाम पिलानेसे आठ दस दिनमें ही चूहेके विषका सब असर नष्ट होजाता है। (जगलनी जड़ी बूटी)

डाक्टर मुडीन शरीफ का कथन है कि हमने इस वनस्पति के पत्तों का काढा और इससे तैयार किया हुआ एक्स्ट्रैक्ट दिन में तीन बार जलोदर की सूजन को दूर करने के लिये दिया और उसमें अच्छी सफलता प्राप्त हुई। यह वनस्पति अपने मूत्रल और मृदुविरेचक गुणों की वजह से उक्त प्रभाव पैदा करती है।

बंगाल में इसके फल ज्वर, प्रवाहिका, नेत्ररोग, और पागल कुत्तेके विषको दूर करने के उपयोगमें लिये जाते है।

बम्बई में इसका रस ६ से लेकर ८ औंस तककी मात्रामें यकृत वृद्धिके प्राचीन रोगको दूर करने के लिये दिया जाता है और यह एक उत्तम धातु परिवर्तक वस्तु मानी जाती है। इसके अदर जल निसारक, विरेचक और मूत्रल गुणभी रहते हैं। इसका शरबत कफ निस्सारक और पसीना लानेवाला होता है। ज्वर में इसका उपयोग एक शान्तिदायक पेयकी तरह किया जाता है।

उत्तर पश्चिमी प्रांतों में इस वनस्पति का रस खूनी बवासीर, खूनी अतिसार और किसीमी जगहसे होने वाले रक्त स्रावको रोकने के लिये किया जाता है।

कोंकण में इसकी कोमल डालिया और पत्ते पुराने चर्म रोग और खुजली इत्यादि में बहुत सफलताके साथ उपयोग में लिये जाते हैं।

चायना में इसके पत्तोंका रस गुर्दे और मूत्राशयकी सूजन और यंत्रणा को दूर करने के लिये दिया जाता है और तंत्र मुलाक में भी इस का उपयोग किया जाता है।

दक्षिण आफ्रिका के यूरोपियन लोग इस पौधेका उपयोग आक्षेपरोग (Convulsions) को दूर करनेके लिये करते है। यह वनस्पति वहापर फोडे फुन्सियों पर लेप करने के लिये एक घरेलू औषधिकी तरह काम में लीजाती है। दादके ऊपर इसके हरे पत्तोंका लेप बनाकर लगाया जाता है।

रोडेसियामें यह वनस्पति मलेरिया, अतिसार और गरम देशों में होने वाले भयंकर पैत्तिक ज्वर (Black water fever) में एक घरेलू औषधि की तरह उपयोगमें ली जाती है।

चरक और सुश्रुतके मतानुसार यह वनस्पति दूसरी औषधियोंके साथ सर्प विषको दूर करनेके काममें ली जाती है। मगर केस और महस्करके मतानुसार सर्प और बिच्छूके विषके ऊपर इसका कोई असर नहीं होता।

कर्नल चोपराके मतानुसार इसके काले फल एक मूत्रल और पसीना लाने वाले द्रव्यकी तरह हृदय रोगमें जब कि टांगों और पजोंपर सूजन आगई हो तब दिये जाते हैं। इसके पौधेके पचाग से तैयार किया हुआ ताजा एक्स्ट्रैक्ट भी एकसे दो ड्राम तककी मात्रामें दिया जाता है। यह कहा जाता है कि यह यकृत की वृद्धिको दूर करनेमें बहुत उपयोगी है।

उपयोग—

ज्वर—मकोयका क्वाथ बनाकर पिलानेसे ज्वर छूटता है।

मंदाग्नि—मकोयके क्वाथमें पीपलका चूर्ण भुरभुरा कर पिलानेसे मन्दाग्नि मिटती है।

पागल कुत्तेका विष—पागल कुत्तेके विषमें मकोयका क्वाथ पिलानेसे और उसी क्वाथसे उस घावको धोनेसे घाव भर जाता है और विष उतर जाता है।

यकृतकी वृद्धि—इसके पौधेका १५ से लेकर २० तोले तक रस आगपर गरम करके जब उसका रंग हरेसे गुलाबी हो जाय तब उसको पिलानेसे बहुत दिनोंकी पुरानी यकृत वृद्धि मिट जाती है।

लालचट्टे—इसको थोडी मात्रामें देनेसे शरीर पर पड़े हुए बहुत दिनोंके लाल चट्टे मिट जाते हैं।

चेचक—मकोयका क्वाथ पिलानेसे दबी हुई चेचक बाहर निकल आती है।

अनिद्रा—मकोयकी जडके क्वाथमें थोडा गुड मिलाकर पिलानेसे नींद आती है।

जलोदर और हृदय रोग—इसके पत्ते, फल और डालियोंका सत्व निकालकर उस सत्वको दो से आठ रत्ती तककी मात्रामें दिनमें एक या दोबार देनेसे जलोदर और सब प्रकारके हृदय रोग मिटते हैं।

मुँहके छाले—मकोयके पत्तोंको चबानेसे जीभ और मुँहके छाले मिटते हैं।

मूत्रकृच्छ्—मकोयके रसमें मिश्री मिलाकर पिलानेसे मूत्रकृच्छ्का दुर्गंधि युक्त श्राव मिटता है।

कामला—मकोयके क्वाथमें हल्दीका चूर्ण डालकर पिलानेसे कामला रोग मिटता है।

दांतोंकी तकलीफ—मकोयके पत्तोंके रसमें घी या तेल मिलाकर दातकी जगह पर मलनेसे दात बिना किसी कष्टके बाहर निकल आते हैं।

वमन—मकोयके रसमें सुहागा मिलाकर पिलानेसे वमन बंद होती है।

रासायनिक विश्लेषण—

इस वनस्पतिमें विषैला द्रव्य बहुत कम मात्रामें रहता है और उसमें एक अम्ल द्रव्य मिला रहनेसे वह प्राणघातक नहीं हो सकता दूसरे अंगोंकी अपेक्षा इसके फलमें विषकी मात्रा कुछ अधिक रहती है। इसके पंचांगको उबालनेसे उसके विषका असर बहुत कम होजाता है और किसी प्रकारकी हानि नहीं होती।

मकई

नाम:—

संस्कृत—महाकाया, मकाय, काडज, शिखालु, सपुटान्तरस्थ। हिन्दी-मकई, मक्का। बंगाल-भुट्टा, जनार। गुजराती मकाई। मराठी-मक्का। अरबी-दुराहकिश्तान, दुराहशमी। पंजाब-बडाज्वार, मक्की, मकई। उर्दू—मकई। तामील—मक्काशोलम। तेलगू-मक्काजाना। लेटिन—Zea mays (झी मेज)। अंग्रेजी—Indian corn।

वर्णन—मक्काका धान्य हिन्दुस्तानमें सब दूर होता है इसको सब कोई जानते हैं। इसलिये इसके विशेष वर्णनकी आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मतसे मक्का तृप्तिकारक, वातकारक, कफपित्तनाशक, संकोचक और रुक्ष होती है। कच्ची मक्का पौष्टिक और रुचिवर्धक होती है।

यह अन्न बहुत पौष्टिक होता है। इसका पौष्टिक तत्व। ओट (Avena sativa) और गेहूसे ऊंचा माना जाता है। इसके मखोलियेकी राख मूत्रल होती है और वह पथरी रोगमें दी जाती है। इसके भुट्टेके कोमल बाल (Corn silk) वेदना नाशक और मूत्रल होते हैं। इसलिये सुजाक, वस्तिशोथ और पथरीमें इनका काढा बनाकर पिया जाता है। ये बाल ताजी हालतमें ही गुणकारी होते हैं। मक्काके पौधेमें शक्कर रहती है। यह शक्कर ऊखकी शक्करकी अपेक्षा कम मेहनत और कम खर्चसे निकाली जा सकती है।

मकाके भुट्टेमें एक प्रकारका काले रंगका रोग लगता है जिसको कजली बोलते हैं। इस कजलीकी क्रिया गर्भाशयके ऊपर अंग्रेजी औषधि अर्गटके समान होती है। इसलिये इसको संग्रह करके रखना चाहिये।

रासायनिक विश्लेषण—

मकाके कच्चे दानोंमें ८$\frac{3}{4}$ मांसवर्धक द्रव्य, ५४$\frac{1}{3}$ प्रतिशत आटा, ३ प्रतिशत चर्बी, २$\frac{1}{3}$ प्रतिशत शक्कर, १२ प्रतिशत पानी और १$\frac{1}{2}$ प्रतिशत राख होती है। इसके सूखे दानोंमें ९ प्रतिशत मांस वर्धक द्रव्य, ७० प्रतिशत आटा ३ प्रतिशत चर्बी और १ प्रतिशत राख पाई जाती है।

यूनानीमत—यूनानीमतसे इसके दानोंके काढेका वफारा बवासीर पर देनेसे वेदना की कमी होती है। मुसलमान हकीम इस वनस्पतिको संकोचक, फोडा गलाने वाली और बहुत पौष्टिक मानते हैं। वे लोग इसको यक्ष्मारोग और आंतोंके ढीलेपनमें एक उत्तम पथ्य समझते हैं।

ग्रीसमें इसके भुट्टेके कोमल बालोंका काढा मूत्राशयके रोगोंको दूर करनेके काममें लिया जाता है और कुछ दिनोंसे इस वस्तुने अमरिकाके लोगोंका ध्यान भी आकर्षित किया है। वहा ये बाल कॉर्न सिल्क (Corn silk) के नामसे प्रसिद्ध हैं और इनका तरल सत्व वहाके औषधि विक्रेता मूत्राशयकी तीव्र वेदना और मूत्रकष्टको दूर करनेकी औषधिके रूपमें बेचते हैं। यह सत्व अपना मूत्रल प्रभाव बतलाकर वेदनाको दूर कर देता है।

फिलिपाइनमें इसका सारा पौधा एक मूत्रल वस्तुकी तरह उपयोगमें किया जाता है। इसके भुट्टेके बालों का अथवा डखलों (Stalk) का काढा मूत्राशय और गुर्देकी सूजन और वेदनाको दूर करनेके लिये घरेलू औषधिकी तरह काममें लिया जाता है।

मकाका तेल—इसके १०० तोले कच्चे मखोलियोंको यंत्रमें दबानेसे तेरहसे पद्रह तोले तक तेल निकलता है। यह तेल कुछ दिनों तक पडा रहनेसे निर्मल हो जाता है। इसका स्वाद फीका होता है और इसमें सुगन्ध अच्छी होती है। न यह जल्दी बिगडता है और न यह सूखता है। इस तेलके साधारण गुण जैतूनके तेलसे मिलते हुए होते हैं।

मकाई

नाम—

संस्कृत—बहुकटका, दुस्पर्शा, कर्कन्धु, मधुरा, शृगालकोली। हिन्दी—मकाई। मराठी-कनेरबाली, मकोर। बंगाल शियाकुल, माहकोआ। मध्यप्रांत—इरुन। उडिया-बडोकोली, कौंटाकोली। तामील-अम्बुलम्, सुगइ। तेलगू बाँका, पारकि। इंग्लिश—Jackal Jujube लेटिन—Zizyphus Oenoplia (झिझीफस ओनोप्लिया)।

वर्णन—यह एक बेरके वर्गकी वनस्पति होती है। इसकी छितराई हुई झाडी होती है। इसके पत्ते बहुत

सघन होते हैं। ये २.५ से लेकर ६.३ सेंटिमीटरतक लंबे और २ से लेकर २.५ सेंटिमीटर तक चौड़े होते है। यह वनस्पति हिन्दुस्तानके सभी गरम प्रातों में तथा सीलोन में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़की छाल का काढा ताजे जख्मों को भरने के उपयोग में लिया जाता है।

मुंडाजाति के लोग उदर शूलको दूर करने के लिये एक प्रकारकी गोलिया बनाते हैं। उन गोलियों में वे इस वनस्पतिके फलको भी उपयोग मे लेते हैं।

मकोला

नामः—

हिन्दी—मकोला, मसूरी। अल्मोडा-मकाव। गढवाल—गोगसा, मकाला मकरोली। झेलम-गुच। काश्मीर-बलेल, तद्रेल्ह। कुमाउ-अयार, मसूरी। मसूरी मसूरी। नेनीताल-मकोल। नेपाल भोजिन्सी। इंग्लिश-Mussoorie Berry। लेटिन-Coriaria Nepalensis (कोरिएरिया नेपालेन्सिस)।

वर्णन—यह एक जातिकी झाडी होती है। इसकी छाल गहरे भूरे रगकी ऊबड खाबड और जगह २ से फटी हुई होती है। इसकी शाखाए मुलायम होती हैं। इसके पत्ते २.५ से लेकर १० सेंटिमीटर तक लंबे और १.८ से लेकर ६.३ सेंटिमीटर तक चौडे होते हैं। इसके फूल छोटे और हरे रगके होते है। इसके फल कच्ची हालत में लाल और पकने पर नीले होजाते हैं। यह वनस्पति हिमालय में मरी, सिकिम और भूटान में तीन हजार से लेकर ११ हजार की फीट की ऊचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पतिके पत्ते सनाय के पत्तों की जगह विरेचक वस्तुकी जगह उपयोग में लिये जाते हैं। मगर अधिक मात्रा में लेनेसे ये अपना जहरीला प्रभाव दिखलाते हैं। इसके फलोंको खाने से कहा जाता है कि शरीर में धनुर्वात की तरह लक्षण पैदा होजाते हैं।

—※—

मक्र (मंडुआ)

नामः—

सस्कृत—बहुपत्रका, भूचरा, गुच्छा, कनीषा, लछन, रागी, राजिका,। हिन्दी—मक्र, मडुआ, नर्तक, रोतक। मराठी—नाचणी नागली। गुजराती-नागली, नवटोंगली। कोकण-नाचनी। पजाब-मडल, कोद्रा, कोदा, चालोदरा। फारसी—मडुआ। बंगाल मरुआ। तामील-क्यूर। तेलगू-राग्गूल। लेटिन—Eleusine

Coracana (इल्यूजिन कोरेकेना)। Dactyloctenium Aegyptium (डेक्टिलोक्टेनियम एजिप्टियम)

वर्णन—यह एक जातिका धान होता है जो मारवाड इत्यादि में पैदा किया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मतसे मडुआ कसेला, कडुआ, मधुर, तृप्तिकारक, हलका, बलकारक, शीतल, पित्तनाशक, त्रिदोष निवारक और रुधिरके दोषोंको दूर करने वाला होता है। इसके दाने सकोचक माने जाते हैं। कमरके दर्द में इसकी पेज बनाकर देनेसे लाभ होता है। व्रणोंपर इसके पत्तोंको पीसकर बाधा जाता है।

दक्षिण अफ्रिकामें टोंगा जातिके लोग इस वनस्पतिको चित्रक के साथ मिलाकर गलित कुष्ठकी बीमारी को दूर करने के लिये पिलाते हैं।

मुडाजातिके लोग इसके दानोंको मिट्टीके वर्तन में भूंजकर ऐसी स्त्रियोंको जो प्रसूति के पश्चात उदर शूलसे पीडित रहती हैं छोटी मात्रा में तीन से लेकर आठ दिन तक खिलाते हैं।

आफ्रिका में इसके बीजोंका काढ़ा गुर्दे के दर्दको दूर करने के लिये उपयोग में लिया जाता है और इसका पौधा पीसकर व्रणोंके ऊपर लेप किया जाता है।

मखाना

नाम:—

संस्कृत—पद्म, मखाना। हिन्दी—मखाना, मचना। पजाब—जेवार। बगाल—मखाना। मराठी—मखान। उर्दू—मखाना। उडिया—कुन्तले। लैटिन—Euryale Ferox (इयूरियल फेरोक्स)

वर्णन—यह कमल की एकजाति होती है। इसके पत्ते अडाकार रहते हैं। ये ऊपरके बाजू से हरे और नीचेकी बाजूसे गहरे नीले होते हैं। इसके फूल २ ५ से ५ सेंटिमीटर तक लम्बे रहते हैं। ये भीतर की तरफ से लाल और बाहर की तरफसे हरे रहते हैं। इसका फल चिकना होता है। इसके बीज के ऊपर का छिलका कठोर और काला रहता है। यह वनस्पति काश्मीर, अवध और पूर्वीय बंगाल में पैदा होती है

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानीमत से इसके पत्ते सधिवात में उपयोगी होते हैं। इसके फूल सफेद, चिकने, पौष्टिक और कामोद्दीपक होते हैं। ये प्रमेह की बीमारी में लाभदायक होते हैं। पेचिशकी बीमारी में ये दस्तको बाँधदेते है। इसका फल सकोचक और पौष्टिक होता है, यह फूलोंसे ज्यादा गुणकारी होता है। प्रमेह और नपुंसत्व की बीमारी में यह बहुत लाभ पहुँचाता है।

इसको लेने से रातमें भयानक सपने आना बन्द हो जाते हैं। इसके बीज पौष्टिक, सकोचक और पीडा निवारक गुणों की वजहसे बहुत उपयोग में लिये जाते हैं।

मंगुस्तन

नाम—

हिन्दी—मंगुस्तन। बंगाल—मंगुस्तन। बबई—मगुस्तीन। बरमा—मेंगकोप। तामील—मुलाबुली। लेटिन—Garcinia mangostana (गार्सीनिया मगुस्तन)

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। इसकी ऊचाई ६ से लेकर ९ मीटर तक होती है। इसकी छाल बहुत चिकनी और मुलायम होती है। इसके पत्ते मांसल, गहरे हरे रंगके और चमकदार होते हैं। इसके फल भूरे रग के होते हैं। हर एक फल में ६ से लेकर ८ तक बीजे रहते हैं। मद्रास प्रेसिडेंसी, नीलगिरि तथा गोआ में इसकी खेतीकी जाती है। फिर भी यह वनस्पति विशेष करके चीन देशसे यहा आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का प्रधान धर्म स्तंभक है। इसका यह स्तभक धर्म आँतो के विकार और मूत्रनलिका के विकार में दृष्टिगोचर होता है। इसका काढा रक्तातिसार और पुराने सुजाक में दिया जाता है। इसके गुणधर्म कोकम और रायतुंग के गुण धर्मसे मिलते हैं। मगर यह इन दोनोंकी अपेक्षा अधिक उग्र होती है।

इसके फलों का छिलका एक सकोचक औषधि की तरह अतिसार और प्रवाहिका में बहुत उपयोग में लिया जाता है। वेरिंग के मतानुसार बच्चों को लगने वाले पुराने दस्तों में यह औषधि बहुत ही उपयोगी प्रमाणित हुई है।

कंबोडिया में इसके पौधे की छाल और फलों का छिलका प्रवाहिका और अतिसार के रोग में बहुत उपयोगी माना जाता है।

रफियस के मतानुसार इसकी छाल और कोमल पत्ते प्रवाहिका, अतिसार और मूत्र सम्बन्धी शिकयतों को दूर करने के लिये काम में लिये जाते हैं।

केस और महस्कर ने इसके सूखे फल के छिलके का चूर्ण ६० से लेकर १२० ग्रेन तक की मात्रा में चार हिस्से करके अमेबिकडिसेंट्री के ३६ रोगियों को दिया। इन रोगियों में से २३ रोगी सन्तोषजनक रूप से आराम हुए। १५ इसका चूर्ण इसी मात्रा में नान अमेबिक अतिसार के रोगियों को दिया गया। इनमें से १० रोगी सन्तोषजकन रूप से आराम हुए। ४५ प्रवाहिका (Diarrhoea) और दूसरे अतिसार के रोगियों पर इसको दिया गया। जिसमें से ३३ रोगी आराम हुए। मंगुस्तीन का एस्ट्रैक्ट बनाकर भी उपयोग में लिया गया। मगर वह इसके चूर्ण की अपेक्षा बहुत हलके दर्जे का सिद्ध हुआ।

३

मजीठ

नाम—

संस्कृत—मंजिष्ठा, विकसा, जिंगी, समंगा, कालमेषिका, मण्डीरी, मंजूषा, ज्वरहन्त्री, हेमपुष्पी। हिन्दी—मजीठ। बंगाल—मंजीठ, मंजिष्ठ, मंजिष्ठा। मराठी—मंजिष्ठा। कुमाऊँ—मजेठी। काश्मीर—वेंद्र, रुहारगन। गुजराती—मजीठ। पंजाब—मजीठ, खुरी, काकरफली रुना, येनी, तिवरू। तामिल—मंजिट्टी, शेवेली। तेलगू—मंजिष्ठातिगे चिरेली। इंग्लिश—Indian madder, लेटिन—Rubia Cordifolia रुबिया कार्डिफोलिया Rudia munjista (रुबिया मंजिष्टा)।

वर्णन—यह एक हमेशा हरी रहनेवाली बर्षजीवी और फैलनी झाड़ी होती है। इसकी जड़ बहुत लम्बी होती है और उसके ऊपर लाल रंग की पतली छाल रहती है। इसकी डालियाँ बहुत लम्बी-लम्बी और ऊबड़-खाबड़ होती हैं। इसके पत्ते चार-चार लगते हैं। इसके फूल छोटे और सफेद होते हैं जो झुमकों में लगते हैं। इसके फल काले और चने के समान होते हैं। इसकी जड़ें शुरू-शुरू में ललाई लिये हुए भूरे रंग की होती है। इनको तोड़ने से इनके अन्दर लाल रंग का गर्भ दिखलाई देता है। मजीठ चार प्रकार की होती है। हिन्दुस्तानी, नेपाली, ईरानी और अफगानी। इनमें जो मजीठ अफगा-निस्तान से भारतवर्ष में आती है वह उत्तम समझी जाती है। भारतवर्ष में पैदा होनेवाली मजीठ हलके दर्जे की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से मजीठ मधुर, कड़वी, कसैली, गरम, रक्तविकार नाशक, स्वर को शुद्ध करनेवाली, कान्तिवर्द्धक भारी तथा विष, कफ, सूजन, योनिरोग, नेत्ररोग, कर्णरोग, कुष्ट, रुधिर विकार, विसर्प, व्रण और प्रमेह को नष्ट करनेवाली होती है।

मजीठ कसैली, गरम, वर्ण को सुन्दर करनेवाली, भारी, कड़वी, हलकी, मधुर तथा वात, प्रमेह, कफ, विष, नेत्ररोग, सूजन, योनिदोष, ज्वर, कामला, पक्षाघात, शूल, कर्ण रोग, कुष्ट, बवासीर, कृमि, रक्तविकार और विसर्प रोग को नष्ट करती है।

मजीठ के पत्ते मधुर, हलके, स्निग्ध, जठराग्नि को दीप्त करने वाले तथा वात और पित्त को हरने-वाले होते हैं।

मजीठ का फल तिल्ली के रोगों को दूर करने वाला होता है।

मजीठ में स्तम्भक, पौष्टिक, आर्तव-प्रवर्तक, वेदनानाशक, शोथघ्न, चर्म रोग नाशक, व्रणरोपक और गर्भाशय को संकुचित करनेके धर्म रहते हैं। इसकी प्रधान क्रिया मस्तिष्क और मज्जातंतुओं पर होती है। इसको थोड़ी मात्रा में देनेसे यह सारे शरीर में शान्ति पैदा करती है। मगर अधिक मात्रा में देने से यह मस्तिष्क में विकृति पैदा करके भ्रम उत्पन्न करती है। इसकी दूसरी क्रिया गर्भाशय के ऊपर होती है। इससे गर्भाशय का संशोधन होता है, उसमें होनेवाली वेदना बन्द होती है और मासिक धर्म साफ होने लगता है। इसकी तीसरी क्रिया त्वचा के ऊपर होती है। इससे त्वचा की रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ कर विनिमय क्रिया के द्वारा रक्त की शुद्धि होती है।

प्रसूति काल में गर्भाशय की शुद्धि के लिये मंजीठ की फाँट, पीपलामूल वगैरह गर्भाशयको शुद्ध करने वाली दूसरी औषधियों के साथ दी जाती है। त्वचा के रोगों को दूर करने के लिये इसको मृदु-विरेचक औषधियों के साथ देते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जंगली और बागी दो जातियाँ होती हैं। इसकी जड कडवी और खराब स्वाद वाली होती है। यह मृदु विरेचक, मूत्रल, मासिक धर्म नियामक और वेदना नाशक होती है। यह नेत्र रोग, लकवा, यकृत की शिकायतें, तिल्ली की बढती, जोडों के दर्द, सधिवात, श्वेतप्रदर, श्वेतकुष्ट, रक्तातिसार और मूत्रकष्ट में लाभदायक होती है।

चायना और मलाया में इसकी जड की उसके पौष्टिक, धातु परिवर्तक और सकोचक, तत्वो की वजह से बहुत प्रशंसा है।

केपटाउन में इसके पत्तों का अथवा जड़ का काढा प्लूरिसी रोग में अथवा छाती की भीतरी सूजन में दिया जाता है।

सूटो जाति के लोग इसकी जडका काढा कॉलिक उदरशूल, गले के व्रण और छाती की शिकायतों को दूर करने के लिये देते हैं।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार यह वनस्पति साँप और बिच्छू के विष पर लाभदायक होती है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार साँप और बिच्छू के ऊपर इसका कोई असर नहीं होता है।

बनवाटें—

मजिष्ठादि क्वाथ—मजीठ, हरड, बहेडा, आँवला, कुटकी, लालचन्दन, नीम की छाल, पीपल की छाल, नीम गिलोय, अनन्तमूल, चोबचीनी और दारुहल्दी इन सब चीजों को जौकुट कर लेना चाहिये। इनमेंसे एक तोला बुरादा पाव भर पानी में रखकर औटाना चाहिये, जब छटाँक भर पानी रह जाय तब उसको छानकर थोडी शहद मिलाकर पीना चाहिये।

इस काढ़े को नियमपूर्वक कुछ दिनों तक सेवन करने से, वातरक्त, दाद, खुजली तथा सब प्रकार के चर्मरोग दूर हो जाते है। रक्त रोग को दूर करने में यह देशी चिकित्सा विज्ञान का एक महान् योग है।

मझेरीयून

नाम—

हिंदी—मझेरीयून। लेटिन—Daphne mejhreon (डेफन-मझेरीयून)।

वर्णन—यह वनस्पति भारतवर्ष में बाहर से बिकने को आती है। इसकी छाल के टुकड़े पतले और चपटे होते हैं। ये बाहर से पीले और भीतर से सफेद होते हैं। इनका स्वाद तीक्ष्ण होता है।

गुण, दोष और प्रभाव—

मझेरीयून मूत्रल, स्वेदजनन और शोणित स्थापक होती है। शरीर के अन्दर इसकी क्रिया अनन्तमूल और अपराजिता की जड की क्रिया की तरह होती है। इसमें रहनेवाले तत्व पसीनेके जरिये त्वचा के मार्ग

से निकलते हैं। जिससे त्वचा की विनिमय क्रिया सुधरती है। इसका बाह्य लेप करने से चमडी लाल हो जाती है। जलन होती है और छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं।

चर्म रोगों में, उपदंश में और गंडमाला में इस वनस्पति को देने से अच्छा लाभ होता है। पुराने आमवात में इसको पेट में देने से और इसकी छाल से सिद्ध किये हुए तेल की जोड़ों पर मालिश करने से लाभ होता है।

मठियो भिंडो

नामः—

गुजराती—मठियोभिंडो। कच्छी—कोएडियोभिंडो। लेटिन—Hibiscus Trionum (हिबिस्कस ट्रिओनम)।

वर्णन—यह भिंडी के वर्ग की एक वनस्पति है। इसके पौधे बरसात के दिनों उगते हैं। उनकी जड़ पेन्सिल के समान मोटी, सफेद रंग की और जमीन में गहरी बैठी हुई रहती है। इसके फूल पीले रंग होते हैं और उनके भीतर का हिस्सा बैंगनी रंग का रहता है। इसका फल लम्बगोल और तीखी नोक-वाला होता है। हर एक फल में ५ खाने बीज के रहते हैं। इसके बीज भूरे रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कच्छ के लोग इस औषधि को अतिसार की दस्तों बन्द करने के लिये पिलाते हैं। वे इसको धातु-पौष्टिक मानते हैं तथा शतावरी की जगह पर इसको उपयोग में लेते हैं।

चीन और मलाया में इसके फूलों का शीत निर्यास खुजली और वेदनापूर्ण चर्म रोगों को दूर करने के लिये पिलाते हैं। मूत्रल औषधि की तरह भी इसका उपयोग किया जाता है। इसके सूखे पत्ते अग्निवर्धक माने जाते हैं।

मखमली खपाट

नाम.—

संस्कृत—वाटिका। गुजराती—मखमली खपाट। कच्छी—डावली भार। अंग्रेजी—Indian Button mallow लेटिन—Abutilon muticom (एब्यूटिलन म्यूटिकम)।

वर्णन—यह अतिबला के वर्गकी एक वनस्पति होती है। इसके पौधे अतिबला के पौधे से कुछ विशेष भारी होते हैं। इस वनस्पति के सारे पौधेपर हरे और पीले रंग के बहुत कोमल रुएँ मखमल के समान होते हैं। इसी से इसे मखमल खपाट कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़, फूल और बीज का उपयोग अतिबला की जड़, फूल और बीज के उपयोग की तरह ही होता है।

मखमली उड़द

नामः—

गुजराती—मखमली अडदियो। कच्छी—रूछड उदकनी। लेटिन—Crotalaria Filipes (क्रोटेलेरिया फिलिपस)।

वर्णन—इसके पौधे उडद के पौधे की तरह होते हैं मगर उनसे कुछ छोटे और मखमली रुओं से भरे रहते हैं इसके फूल पीले रग के पतग के समान और कलियाँ लम्बगोल होती है। हर कली में ८।१० बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के बीज पौष्टिक माने जाते हैं मगर ये विशेषकर ढोरों के खाने के काम में आते हैं।

मटर

नामः—

सस्कृत—कलाय, खींडक, कटी, मुडचणक, हरेणु, रेणुक, सतीलक, नीलक इत्यादि। हिन्दी—मटर, बडा मटर, बुतानी। बगाल—बडा मटर, वाटूला मटर, मटर। बाँबे—वटाणा। मराठी—वोटाण। गुजराती—वटाना, मटाना। पजाब—बडा मटर, खाँडा, मटर, सेन। तामील—पट्टानि, वेला पट्टानि। तेलगू—पेटालु। अरबी—हुम्मस। इग्लिश—Garden Pea। लेटिन—Pisum Sativum (पीसम सेटिवम)।

वर्णन—मटर की शाग सब दूर भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। इसका पौधा दो तीन फीट ऊँचा होता है। कुछ बडा होने पर यह लता की तरह पराश्रयी हो जाता है। इसके पत्ते छोटे-छोटे और गोल होते हैं। इसके फूल सफेद और गुलाबी रंग के आते हैं। इसकी फलियाँ दो इच से तीन इच तक लम्बी होती हैं। हर एक फ़ली में पाँच छ दाने मटर के रहते हैं। इसकी छोटी और बडी दो जातियाँ होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से मटर मधुर, पचने मे स्वादिष्ट, रूखी, शीतल, रक्त शोधक, मृदुविरेचक, भूख बढानेवाली, वातवर्द्धक और खाँसी पित्तविकार तथा दाह को शान्त करनेवाली होती है।

इसको कची हालत में अधिक खाने से अतिसार होने का भय रहता है। स्पेन में इसके बीजों का आटा चमडे को मुलायम करनेवाला और फोडे को गलानेवाला माना जाता है। वहाँ पर इसका पुल्टिस बनाकर फोडों पर बाँधा जाता है।

जर्मनी में यह व्रण और रगड के ऊपर उपयोगी समझा जाता है। वहाँ पर ऐसे बच्चों को जो छोटी माता (Measle) से ग्रसित होते है उनको मटर के उबाले हुए पानी से नहलाया जाता है।

इसके बीजों की राख में कुछ मात्रा में सखिया के समान एक विषैला तत्व पाया जाता है।

इसके बीजों मे २८ प्रतिशत मांसवर्द्धक द्रव्य, ५५ प्रतिशत आटा, १ प्रतिशत तेल और ढाई प्रतिशत राख रहती है।

मटर जंगली

नामः—

हिन्दी—जंगली मटर। बंगाल—जंगली मटर, मसूर चना। नेपाल—केनु। पंजाब—रेवान, रेवारी। इंग्लिश—Yellow flower Pea। लेटिन—Lathyrus Aphaca (लेथीरस अफेका)।

वर्णन—यह मटर की एक जंगली जाति होती है। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। यह उत्तरी भारत में सात हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पके हुए बीज कुछ नशीले और निद्राजनक माने जाते हैं। इसके फूल फोडा गलानेवाले होते हैं।

मचोला

नामः—

संस्कृत—सुवार। हिन्दी—मचोला। गुजराती—मोलहो, मच्चूर। मराठी—मच्चूर। तामील—कोलियम्, वेगल, उमरी। लेटिन—Arthrocnemum Indicum (आर्थ्रोसीनेमम इंडिकम)।

वर्णन—यह बिना पत्तेवाला पौधा खारी जमीनों में विशेष पैदा होता है। इसका रंग गहरा होता है इसके डंठल और डालियों में बहुत जोड होते हैं। ये डालियाँ बहुत रसभरी रहती हैं। इसकी तरकारी बनाई जाती है। ऊंट इस पौधे को बहुत खाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका पौधा पित्तशामक, रेचक और मूत्रल होता है। जलोदर और यकृत के रोगों पर इसका रस उपयोगी होता है। ऐसे रोगियों को जिन्हें पुराने आमवात की बीमारी होती है प्रतिवर्ष मौसम के समय में इसकी तरकारी बनाकर खिलाई जाती है।

सुश्रुत के मतानुसार इसके पौधे की राख साँप और बिच्छू के विष को दूर करने के लिये दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर दी जाती है।

मछेछी

नामः—

संस्कृत—मत्स्याक्षी, वालिका, मत्स्यगंधा, मत्स्यादनी। हिन्दी—मछेछी।

वर्णन—भाव प्रकाश के मतानुसार मछेछी के क्षुप छोटे-छोटे होते हैं। इसके पत्ते उडद के पत्तों के समान होते हैं। फूल सफेद और पीले रंग के होते हैं तथा इसमें मछली के समान गंध आती है।

भाव प्रकाश और शालिग्राम निघटु के सिवाय हमें इस वनस्पति का वर्णन कहीं देखने को नहीं मिला। कई लोगोंने जलपिप्पली को मत्स्यगधा लिखा है मगर उसके वर्णन में और इसके वर्णन में हमको अतर नजर आया। इसलिये हम यहाँ पर इसका अलग वर्णन दे रहे हैं। जल पिप्पली का वर्णन इस ग्रंथ के चौथे भाग में छप चुका है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से मछेछी सकोचक, शीतल, हलकी, कडवी, कसैली, स्वादिष्ट, पचने में चरपरी तथा कोढ, पित्त, कफ और उदरविकार को दूर करनेवाली होती है।

मज्जरतृण

नामः—

सस्कृत—मज्जर, पवन, सुत्रिण, स्निग्ध पत्रक, मृदुग्रथि।

वर्णन—यह एक जाति का घास होता है। जिसको पशु विशेष तौर से खाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

मज्जरतृण मधुर और गायों का दूध बढानेवाला होता है।

मंथानक तृण

नामः—

सस्कृत—मथानक, हरित, दृढ़मूल, तृणाधिप।

वर्णन—यह भी एक जाति का गायों के खाने का घास होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

मन्थानक तृण स्निग्ध, गायों को प्रिय, दुग्धवर्धक मधुर और बहुत वीर्य बढानेवाला होता है।

मराठी

मराठी बायूना गाव को कहते हैं। इसका वर्णन इस ग्रन्थ के सातवें भाग में पृष्ठ १८२६ में देखना चाहिये।

मण्डूर

नामः—

सस्कृत—मण्डूर, लोहकिट्ट, लोहज, लोहचूर्ण, कृष्णचूर्ण, शूलघातन, इत्यादि। हिन्दी मण्डूर, लोहकिट्ट। गुजराती—लोढानुकिट्ट। मराठी-लोहकीट। बगाल-मण्डूर। पजाब लोहेका मैल। मारवाडी-काँटी, मण्डूर। अंग्रेजी—Oxide of Iron। लेटिन—Ferri Peroxidum (फेरी पेरोक्साइडम)।

वर्णन—लोहेको तीक्ष्ण अग्निमें धोंकनेसे जो उसमेंसे एक प्रकारका कीट या मैल निकलता है उसको मडूर कहते हैं। यह मडूर नवीन हालतमें औषधि प्रयोगके काममें नहीं आता। मगर जब सौ पचास वर्ष पुराना हो जाता है तब वह औषधि प्रयोगके काममें आता है। सौ वर्षका पुराना मडूर उत्तम, अस्सी वर्षका पुराना मध्यम और साठ वर्षका पुराना अधम गिना जाता है। इससे कम आयुका मंडूर विषके समान माना जाता है। जो मडूर भारी, चिकना, ठोस, तोड़नेपर अंजनके समान तथा बिना गड्ढेवाला होता है; वह उत्तम माना जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मतसे मडूर कसेला, शीतल और पांडु शोथ, हलीमक, कामला तथा कुंभ कामलाको मिटाता है।

मण्डूर को शुद्ध करने की विधि—

सौ वर्षके पुराने मडूरको लेकर बहेड़ेके कोयलेकी आगमें उसको सुर्ख कर करके सात बार गौ मूत्रमें बुझाना चाहिये। आगमें मडूरको तपाते समय मडूर चटचट शब्द करता हुआ उछल २ कर भट्टीमें गिर जाता है। इसलिये तपाते समय मडूर को एक बड़े कलछे में रखकर उस कलछे पर एक तवा ढककर फिर उसको भट्टी में रखकर तपाना चाहिये। अगर बहेड़े की लकड़ी इतनी तादाद में न मिले तो बबूल की लकड़ी जलाकर उसमें दस बीस सेर बहेड़े के फल डाल देना चाहिये। जब उस आग में खूब लपटें उठने लग जाय तब मडूर के कलछे को उसमें गरम करना चाहिये। इस प्रकार सात बार गौमूत्र में बुझाने से मडूर शुद्ध हो जाता है। अगर सात बार इसको इसी प्रकार त्रिफले के काढ़े में भी बुझा लिया जाय तो यह शुद्धि और भी उत्तम हो जाती है।

मडूर भस्म की विधि—

उपरोक्त रीति से शुद्ध किये हुए मडूर को लोहे के इमाम दस्ते में खूब बारीक कूटकर कपड़े में छान लें। इस मडूर के चूर्ण को त्रिफला के गाढ़े-गाढ़े क्वाथ में खूब घोंट कर उसकी टिकियाएँ बना लें। उन टिकियाओं को सुखाकर सराव सम्पुट में रखकर उस सम्पुट की दर्जों को कपड़ा मिट्टी से बन्दकर गजपुट की आँच में फूँक देना चाहिये। फिर स्वांग शीतल होने पर उसको निकाल कर देखना चाहिये। अगर वह टिकिया चुटकी से पीसने लायक हो गई हो तब तो समझ लेना चाहिये कि भस्म तैयार हो गई। लेकिन यदि वह कठोर हो तो उसको उसी प्रकार त्रिफले के काढ़े में खरल करके दूसरी बार फूँकना चाहिये।

यह भस्म स्पर्श करने में मुलायम, देखने में सुन्दर, लालवर्णवाली और बहुत विशुद्ध होती है।

मडूर भस्मकी दूसरी विधि—

बाँस के अंकुरों के स्वरस में मडूर को घोट-घोटकर टिकिया बनाकर सौ बार गजपुट में फूँकी जाय तो वह मडूर भस्म अत्यन्त विलक्षण गुणवाली होती है।

द्रुत मडूर की विधि—

उपरोक्त रीति से तयार की हुई मडूर भस्म को पहले त्रिफला के काढ़े के साथ खूब घोट ले, बाद में मडूर भस्म से आठ गुना गौ मूत्र लेकर उस भस्म को उस गौ मूत्र में डालकर हलकी आँच से पकावें।

इसके साथ ही हरड, बहेडा, आँवला, सोंठ, मिरच, पींपर, नागरमोथा, चव्य, वायविडङ्ग, दारूहल्दी, चित्रक, देवदारू और पीपरामूल इन तेरह चीजोंको समान भाग लेकर इनका किया हुआ चूर्ण मडूर भस्मके बराबर वजनमें लेकर उसमें डाल देना चाहिए और फिर खूब अच्छी तरहसे हिलाकर जब सब गोमूत्रका शोषण हो जाय तब उसे उतार लेना चाहिये। यह इस मडूर कहलाता है।

मंडूरकी प्रधान क्रिया यकृतके ऊपर होती है। यह यकृतकी क्रियाको सुव्यवस्थित करके रस क्रिया को दुरुस्त करता है। इसलिये यकृतकी खराबीसे होनेवाले पाण्डु रोग, मन्दाग्नि, कामला, बवासीर, शरीरकी सूजन, रक्त विकार इत्यादि रोगोंमें यह हाजिर जवाब काम करता है। पाण्डुरोग अथवा एनिमियाँमें जब दूसरी औषधियाँ नाकामयाब हो गई हों तब किसी अच्छे वैद्यके यहाँसे विश्वसनीय मण्डूरभस्मको प्राप्त करके उसको गिलोयके रस अथवा पुनर्नवाके साथ प्रयोग करनेसे आशातीत लाभ हो सकता है। और भी कई प्रकारके उदर रोगोंमें यह वस्तु बहुत अच्छा काम करती है। कर्नल चोपराके मतानुसार मण्डूर दमा, साधारण कमजोरी, ज्वर और हृदय रोगोंमें लाभदायक होता है।

उपयोग—

पाण्डुरोग—गौमूत्रमें पचाकर भस्म किये हुए मडूरको गुडके साथ देनेसे पाण्डुरोग मिटता है। घी और मधुके साथ इसका सेवन करनेसे पाण्डुशोथ और मन्दाग्नि मिटती है।

कुंभकामला—त्रिफलाके काढेसे बनाये हुए मण्डूरको मधुके साथ चटानेसे कुम्भकामला और पाण्डुरोग मिटता है।

गलगड—मृत्तिकाके पात्रमें भैसका मूत्र भरकर एक महीनेतक उसमें मण्डूरको पडा रखकर फिर गजपुटमें उस मण्डूरकी भस्म बनाकर शहदके साथ सेवन करनेसे गलगण्ड मिटता है।

बनावटें—

मण्डूरकी गोली—पाँच तोले मण्डूर भस्मको अदरकके रसमें पत्थरकी खरलके अन्दर इतना घोटना चाहिये कि खरल मारे चिकनाईके जमीनसे उठ जाय। बाद में नींबूका रस डालकर भी खरलके उठने पर्यन्त उसे घोटे। बाद पचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) को पाँच पाँच तोले लेकर कूट कर कपरछान करके डाल दें और तीस तोले काली मिरच भी कपडछान करके डाल दें। इस साठ तोले औषध को अनारदानेके रसके साथ दो तीन दिनतक घोंटकर चनेके बराबर गोलियाँ बना ले। इन गोलियोंका सायकाल और प्रातःकाल सेवन करनेसे खूब भूख लगती है और खासी आदि रोग नष्ट होते हैं।

पुनर्नवादि मडूर—पुनर्नवादिमण्डूरका नुस्खा इस ग्रन्थके छठे भागमें पुनर्नवाके प्रकरणमें देखना चाहिये।

मट्ठा *

नामः—

संस्कृत—तक्र, दण्डाहत, घोल, गोरस, कट्टर, द्रव, भग्न, सन्धिक, गोरसज, छच्छिका। हिन्दी—

* डा० महेन्द्रनाथ पाण्डेय की "मट्ठा के उपयोग" नामक पुस्तक से मट्ठे के विवेचन में सहायता मिली है। —लेखक

मट्ठा, छाछ। बंगाल—घोल। मराठी—ताक। गुजराती—छास, घोलगृ। तेलगू—चल्ला। अंग्रेजी—Butter milk, Whey। अरबी—हमीज।

वर्णन—दहीको मथ करके मट्ठा तयार किया जाता है। आयुर्वेदकी दृष्टिसे यह पाँच प्रकारका होता है। घोल, मथित, तक्र, उदश्वित और छच्छिका। जो मट्ठा मलाई सहित दहीसे मथा गया हो और जिसमें पानी नहीं पड़ा हो उसे घोल कहते हैं। जिस दहीमें से मलाई निकाल ली गई हो और बिना पानी डाले मथा गया हो उसको मथित कहते हैं। जिसमें ३ भाग दही और १ भाग पानी डालकर मथा गया हो उसे तक्र कहते हैं। जिसमें आधा दही और आधा पानी डाला गया हो उसे उदश्वित कहते हैं और जिसमें अधिक भाग पानीका और थोड़ा भाग दहीका हो उसे छच्छिका कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मतसे मट्ठा स्वादिष्ट, कसेला, खट्टा, भक्षण योग्य, हलका, गरम, हितकारक तथा गुल्म, बवासीर, परिणाम शूल, वमन, तृषा, अरुचि, सूजन, मेद, विष, कफ, वात, मूत्र रोग, ज्वर और तेलसे उत्पन्न हुई पीड़ा को दूर करती है।

मट्ठा त्रिदोष नाशक, पचने में स्वादिष्ट, हलका, उष्णवीर्य, मूत्रकृच्छ्र नाशक, कसेला, खट्टा और अग्नि दीपक होता है।

मट्ठा अपने खट्टेपन से वातका, मीठेपन से पित्त का और कसैलेपन से कफका नाश करता है। इस प्रकार यह वस्तु त्रिदोष नाशक होती है।

आमातिसार, विषूचिका, वातज्वर, पाडुरोग, कामला, प्रमेह, गुल्म, उदर रोग, वात शूल और संग्रहणीमें मठा एक उत्तम पथ्य है।

महर्षि आत्रेयके मतानुसार तक्र तीन प्रकार का होता है। घृतहीन, अल्पघृत युक्त और पूर्णघृत युक्त। घृतहीन अर्थात् जिसमें से घृत निकाल लिया हो ऐसा तक्र हलका, सुपथ्य और त्रिदोष नाशक होता है। अल्प घृत युक्त अर्थात् जिसमेंसे थोड़ा घी निकाला हो ऐसा तक्र वीर्य वर्धक और घृतयुक्त अर्थात् जिसमें से घी नहीं निकाला हो ऐसा तक्र गाढा, भारी, कफ कारक, क्षीण मनुष्योंको बल देनेवाला तथा आम, सूजन और अतिसार को दूर करता है।

भाव प्रकाश के मतानुसार घोल वात पित्त नाशक है। मथित—कफ पित्त नाशक है। तक्र—मल रोधक, कसेला, खट्टा, पचनेमें स्वादु, रसमें भी स्वादु, हलका, उष्णवीर्य, अग्निप्रदीपक, वीर्य वर्धक, तृप्ति करने वाला, वात नाशक और संग्रहणी अतिसारादि रोगों में पथ्य है। तक्र हलका होनेसे ग्राही और स्वादुपाकी होने से पित्तको कुपित नहीं करता। अम्ल, उष्ण, दीपन, वृष्य, वात नाशक, कषाय, उष्ण, विकाशी और रूक्ष होने से कफ का नाश करता है। तक्र का पान करनेवाला मनुष्य कभी रोगी नहीं होता। और तक्र से भस्म किये हुए रोग फिर कभी नहीं होते। स्वर्गलोकमें देवताओं को जैसे अमृत है वैसे ही मृत्युलोक में प्राणियोंको तक्र है। उदश्वित—कफ कारक, बलवर्द्धक और श्रम नाशक है। छच्छिका—

शीतल, हलकी, पित्तनाशक, श्रमहारक, तृषा-निवारक और लवणके साथ वातनाशक, कफ हारक और अग्नि को दीपन करती है।

वात रोग में सोंठ और सेंधे नमक का चूर्ण मिलाकर खट्टा मट्ठा पीना चाहिये। पित्त रोगमें बूरा मिलाकर मीठा मट्ठा पीना चाहिये। कफ रोगमें त्रिकुटे के चूर्ण के साथ मट्ठा पीना चाहिये। घोलमें हींग, जीरा और सेंधा निमक मिलाने से वह अत्यन्त वात नाशक हो जाता है और बवासीर, अतिसार और वस्तिशूलको दूर करता है। मूत्र कृच्छ्र रोगमें गुडके साथ मट्ठा पीनेसे लाभ होता है और पाडु रोग में इसको चित्रक के साथ लिया जाता है।

पशुओं के दूध के भेद के अनुसार मट्ठे गुण धर्म में भी अन्तर रहता है वह इस प्रकार है—

गायका तक्र—त्रिदोष नाशक, उत्तम पथ्य, दीपन, रुचिकारक, बुद्धि वर्धक तथा बवासीर और पेटके विकारोंको दूर करनेवाला होता है।

भैंसका तक्र—कफ कारक, कुछ गादा, सूजनको पैदा करनेवाला तथा प्लीहा, बवासीर, सग्रहणी और अतिसार में लाभदायक है।

बकरीका तक्र—हलका, स्निग्ध, त्रिदोष निवारक तथा गुल्म, बवासीर, सग्रहणी, शूल और पाडु रोग को दूर करता है।

भेड़का तक्र—कुपथ्य, खट्टा, दुर्गन्ध युक्त, दीपन, चरपरा गरम, लेखन, हलका, पित्तकारक, रुधिर विकारको पैदा करनेवाला और कफ, वात नाशक होता है।

मानवी शरीर पर तक्र के प्रभाव—शरीरके अन्दर जो रक्तवाहिनी शिरायें होती हैं उन शिराओंमें धीरे धीरे कई प्रकारके क्षार द्रव्य जमा होते रहते हैं जिससे रक्त वाहिनी शिरायें रक्तका संचालन बराबर सुव्यवस्थित रूपसे नहीं कर सकती और रक्तका सचालन बराबर न होनेसे शरीर का पोषण ठीक तरह से नहीं हो पाता। जिसके फलस्वरूप मनुष्य युवाकाल में ही वृद्धके समान दिखलाई देने लगता है। उसके बाल असमय में ही सफेद हो जाते हैं। चेहरे पर झुर्रियां पडने लग जाती हैं और यौवन की स्फूर्ति कम हो जाती है। जब यह क्षार हड्डियोंके जोड़ोंमें जमा हो जाता है तब मनुष्यको सधिवात और गठियाकी शिकायत हो जाती है। तक्र मनुष्य की रक्तवाहिनी नाडियोंमें तथा जोडोंमें जमा हुए इस क्षारको मूत्रके द्वारा बाहर निकाल देती है। इसका असर मूत्रपिंडपर होता है और मूत्र साफ आता है। तक्रका नित्य सेवन करनेसे रक्तवाहिनी नसोंमें जमा हुआ क्षार पेशाब के द्वारा निकल जाता है और फिर जमा नहीं होने पाता। इसका फल यह होता है कि मनुष्य में अकाल वृद्धावस्था नहीं आने पाती। पेशाब साफ होते रहनेके कारण शरीर का विष निकल जाता है और आमाशय निर्मल हो जाता है, भूख बढती है दस्त साफ होता है। पाचन इन्द्रिया अपना काम उत्तम रीति से करती हैं और रातको गहरी नींद आती है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा विज्ञान में तक्र बहुत प्राचीन काल से एक अनुपम पथ्य की तरह स्वीकार की गई है। अनेकों ग्रन्थों में इसकी प्रशसा में कई तरह की श्रद्धाजलियाँ दी गई हैं। एक स्थानपर लिखा है।

नतक्रसेवी व्यथते कदाचित् न तक्रदग्धा प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणा अमृतं सुखाय तथा नराणाम भुवितक्र माहुः॥

अर्थात् मट्ठे का सेवन करनेवाला कभी दुख नहीं पाता और मट्ठे से नष्ट किया हुआ रोग फिर उत्पन्न नहीं होता। जिस प्रकार स्वर्ग में देवताओं के लिये अमृत है उसी प्रकार इस संसार में मनुष्यों के लिये तक्र है। यही कारण है कि इसको मृत्युलोक का अमृत कहते हैं।

मट्ठा किस प्रकार और किन किन रोगों में सेवन करना चाहिये। इसका विवेचन करते हुए आयुर्वेदिक ग्रंथों में लिखा है कि:—

शीतकाले अग्निमांद्ये च तथा वाता मयेषुच।
अरुचौ स्रोतसांरोधे, तक्र स्याद अमृतोपमम्।
तत्तुहन्ति गरच्छर्दि प्रसेक विषम ज्वरान्।
पाडु मेदो ग्रहण्यार्शो मूत्रग्रह भगन्दरान्।
मेह गुल्म मतीसार शूल प्लीहोदरा रुचिः।
श्वित्र कोष्ट गत व्याधीन् कुष्ठ शोभ तृषाकृमीन्।

अर्थात् जाड़े की ऋतु, मंदाग्नि, वातरोग, अरुचि, रक्तवाहक स्रोतों का अवरोध इत्यादि रोगों में तक्र अमृत के समान गुणकारी और लाभदायक है। इसके अतिरिक्त विषविकार, वमन, मिचलाहट, विषम ज्वर, पाडुरोग, मेदवृद्धि, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रावरोध, भगन्दर, प्रमेह, वायुगोला, अतिसार, शूल, प्लीहोदर, अरुचि, श्वेतकुष्ठ, उदररोग, कुष्ठ, सूजन, प्यास ओर कृमिरोग में भी यह बहुत लाभदायक है।

क्षत रोग, ग्रीष्मऋतु, मूर्च्छारोग, चक्कर, दाह और रक्त तथा पित्त के रोग में मट्ठे का उपयोग बहुत हानिकारक होता है।

हेमत ऋतु, शिशर और वर्षाऋतु में दही और मट्ठे का खाना उत्तम है। किन्तु शरद, बसन्त और ग्रीष्म ऋतु में यह हानिकारक होता है। क्योंकि बसन्त ऋतु में मनुष्य का कफ बढ जाता है और मट्ठा भी कफ को बढाता है। इसलिये बसत में मट्ठा हानिकारक होता है। ग्रीष्म और शरद ऋतु में मनुष्य का पित्त कुपित रहता है और मट्ठा भी पित्त को कुपित करता है। इसलिये ग्रीष्म और शरद ऋतु में भी इसका सेवन निषेध है। रात को भी मट्ठे का सेवन नहीं करना चाहिये। यदि दही या मट्ठा ठीक तरीके से नहीं खाया जाय तो ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कोढ, पाडु, कामला इत्यादि अनेक रोगों को पैदा करता है। इसलिये इसके प्रयोग में बहुत सावधानी रखने की जरूरत है।

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि आयुर्वेद के विद्वानों ने प्राचीन काल में तक्र के ऊपर बारीक से बारीक खोजें कीं और इस देश के चिकित्सकों का तक्र चिकित्सा पर अटूट विश्वास रहा है और उदर सम्बन्धी रोगों में तो जैसे अतिसार, प्रवाहिका, संग्रहणी, बवासीर, ज्वर रहित कामला, उदरशूल तथा मूत्रकृच्छ, मूत्राघात, पथरी, अग्निमांद्य, अरुचि, मेदवृद्धि, वमन, पाडु, भगदर, प्रमेह, तृषा, कृमि इत्यादि रोगों पर वे इसका प्रयोग सफलता के साथ करते रहे हैं।

लेकिन आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में मट्ठे की उपयोगिता को स्वीकार किये अधिक समय नहीं हुआ है। कुछ ही वर्षों पहिले एलोपैथिक डाक्टर छाछ को एक निकम्मी वस्तु मानते थे और संग्रहणी जैसे रोगों में देशी वैद्य जब अपने रोगियों को केवल छाछ पर रहने की सलाह देते थे तब डाक्टर लोग उनकी

मज़ाक उडाया करते थे मगर धीरे-धीरे इस विचार प्रणाली में परिवर्तन हुआ और हगरी देश के कुछ डाक्टरों ने अनेक प्रकार से अनुभव करके यह जाहिर किया कि मट्ठे में आँतों के अन्दर रहनेवाले कुछ विशेष प्रकार के जतुओं को मार डालने की शक्ति रहती है जिससे सग्रहणी के समान आँतों के विकार के रोगो में मट्ठा बहुत गुणकारी होता है।

हगरी के डाक्टरों के यह जाहिर करने के बाद दूसरे यूरोपियन डाक्टरों ने भी मट्ठे का अनुभव लेना शुरू किया जिसका परिणाम यह आया कि आयुर्वेद की इस पुरानी वस्तु को नवीन चिकित्सा विज्ञान ने भी अपना लिया।

प्रोफेसर ड्यूकला और मेचनीकाफ आदि प्रसिद्ध जतुशास्त्र विशेषज्ञों का कथन है कि तक्र में एक प्रकार के जन्तु रहते हैं। जिन्हें लेक्टिक जन्तु कहते हैं। ये मनुष्य शरीर के लिये बडे उपयोगी होते है। इनसे शरीर की रोग नाशक शक्ति बढती है और शरीर में स्थित रोगोत्पादक कीटाणुओं का नाश होता है जिससे मनुष्य स्वस्थ और दीर्घजीवी होता है।

यह यद्यपि एक निश्चित तथ्य है कि मट्ठा, सग्रहणी, अतिसार इत्यादि रोगों में एक उत्तम पथ्य है और यकृत की पित्त सचालन क्रिया को व्यवस्थित करनेमें यह बहुत सहायता पहुँचाता है फिर भी इसका प्रयोग बहुत समझ बूझकर करने की आवश्यकता है। अधाधुन्ध आँख मींचकर हर एक रोगी पर इसका प्रयोग करने से लाभ की जगह हानि होने की संभावना रहती है। कई लोग आँतों की हर प्रकार की बीमारियों में इसका उपयोग करते हैं मगर ऐसे लोगों को खयाल रखना चाहिये कि मट्ठा एक सकोचक द्रव्य हैं। आँतों का सकोचन करके यह सग्रहणी अतिसार इत्यादि में लाभ पहुँचा सकता है। मगर कब्जियत, लीह्वर की वृद्धि, जलोदर इत्यादि ऐसे रोगों में जिनमें विकास धर्मवाली औषधियों की आवश्यकता होती है; मट्ठे को देने से कोई लाभ नहीं होता बल्कि और हानि होने की सम्भावना रहती है। इसलिये ऐसे रोगों में मट्ठे की जगह दूध का प्रयोग ही उपयोगी होता है। सिर्फ पाचन क्रिया की मदता की वजह से होनेवाले रोगों में ही मट्ठा उपयोगी हो सकता है। छाती से सम्बन्ध रखनेवाले रोग जैसे श्वास, खाँसी, ब्रोंकाइटीज, निमोनियाँ इत्यादि रोगों में मट्ठे का उपयोग लाभदायक नहीं होता।

संग्रहणी और उदर रोगों में भी मट्ठे का प्रयोग तभी करना चाहिये जब यह मालूम हो जाय कि ये रोग वायु अथवा कफ के कोप से पैदा हुई आँतों की निर्बलता या जठराग्नि की मदता से पैदा हुए हैं। यदि यह मालूम हो कि पित्त की विकृति से ये रोग पैदा हुए हैं अथवा पित्त की विकृति से यकृत वृद्धि, कब्जियत, खूनी बवासीर, रक्तातिसार इत्यादि रोग पैदा हुए हैं तो उसमें मट्ठे का प्रयोग समझ बूझ कर करना चाहिये।

रोग की स्थिति में रोगी को किस प्रकार का मट्ठा दिया जाय इस विषय में भी बडी सावधानी की जरूरत है। रोगी को जो मट्ठा दिया जाय वह खट्टा नहीं होना चाहिये। बारह घटे के जमाये हुए दही से तयार किया हुआ मट्ठा ही रोगी के लिये हितकारी हो सकता है। अधिक समय के मट्ठे से रोगी के जोडोंमें दर्द और सूजन होने का डर रहता है। इसके अतिरिक्त जो मट्ठा रोगी को दिया जाय उसमे पानी

का अंश अधिक नहीं होना चाहिये। दही के प्रमाण से चौथाई पानी से ज्यादा पानी उस मट्ठे में नहीं डालना चाहिये। क्योंकि आँतों सम्बन्धी रोगों में पानी प्रायः नुकसान करता है।

जिन लोगों के पेट में वायु की अधिकता रहती हो और वायु की वजह से जिनके पेट में आफर चढता हो, जिनको अम्ल पित्त हो और खट्टी डकारें आती हो ऐसे रोगियों को मट्ठे में हींग, जीरा, सेंधा-निमक इत्यादि चीजें मिलाकर देना चाहिये।

इस प्रकार भलीभाँति समझ-बूझकर जो लोग मट्ठे का सेवन करते हैं उनकी जठराग्नि प्रबल होती है, उनकी जीवनी शक्ति और रोग निवारक शक्ति का विकास होता है। उनके शरीर से नष्ट हुआ रक्त और माँस पीछा भर जाता है और बवासीर तथा संग्रहणी की व्याधि नष्ट हो जाती है जो फिर से उत्पन्न नहीं होती। मट्ठे के सेवन से रक्त स्रोतों की शुद्धि होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है जिससे खाया हुआ अन्न अच्छी तरह से पचकर उसमें से उत्तम रस की पैदायश होती है। इसलिये वायु और कफ जनित संग्रहणी, उदर रोग और बवासीर में मट्ठे का प्रयोग अमृततुल्य होता है।

मट्ठा और बवासीर—महर्षि चरक का कथन है कि वात और कफ से पैदा होनेवाले बवासीर में तक्र से बढकर कोई दूसरी औषधि नहीं। यदि बवासीर वात से पैदा हुए हों तो बिना मक्खन निकाली तक्र का सेवन करना चाहिये और यदि बवासीर कफ से पैदा हुए हों तो मक्खन निकाली हुई तक्र रोगी को देना चाहिये। बल तथा काल के भेद के अनुसार चिकित्सक रोगी को सात दिन, दस दिन, पद्रह दिन अथवा एक मास तक तक्र का प्रयोग करावे। अगर रोगी की जठराग्नि बहुत मद हो तो उसे केवल तक्र पर ही रखना चहिये। अन्न नहीं देना चाहिये। जब उसकी जठराग्नि कुछ दीप्त हो जाय तब प्रातः काल उसे तक्र पिलावें और सायकाल को लाजा के सत्वों का तक्र से बनाया हुआ अवलेह चाटने को दे। सत्वों में तक्र उतना ही डाले जिससे वह अवलेह सदृश हो जाय।

इसके पश्चात् जब अग्नि और कुछ अधिक दीप्त हो जाय तब घृत युक्त तक्र में साँठी चाँवल का भात मिलाकर देना चाहिये और प्यास लगे तो पानी की जगह तक्र का ही प्रयोग करना चाहिये।

काल तथा उपयोग क्रम को जाननेवाले वैद्य को चाहिये कि वह इस प्रकार तक्र का प्रयोग कराने के पश्चात् रोगी को एकदम तक्र से निवृत्त न करा दे। धीरे-धीरे तक्र की मात्रा कम करते हुए उसे बन्द करे और तक्र के स्थान पर रोगी की भूख और अग्नि के अनुसार दूसरा हितकर भोजन खाने को देना चाहिये जिससे रोगी भूखा न रहे और निर्बल न होता जाय।

तक्र की वृद्धि और ह्रास का यह क्रम रोगी में शक्ति आने के लिये और आई हुई शक्ति की रक्षा के लिये तथा अग्नि की दृढता के निमित्त एवम् बल, पुष्टि और काति की वृद्धि के लिये कहा गया है। यथा विधान तक्र का सेवन कराने से रोगी शक्तिमान्, बलवान्, काँतिवान् और तीव्र जठराग्नि-युक्त होता है।

तक्र के द्वारा नष्ट हुए बवासीर पुन. उत्पन्न नहीं होते। भूमि पर भी सींची हुई तक्र जब वहाँ के तृण समूह को जला देती है तब जिसकी कायाग्नि प्रदीप्त है ऐसे पुरुष के शुष्क बवासीर का अगर वह समूल उच्छेदन कर दे तो इसमें क्या आश्चर्य है।

तक्र के द्वारा श्रोतों के शुद्ध हो जाने पर जो रस देह में सम्यक् तयार होकर पहुँचता है उससे पुष्टि, बल, वर्ण और प्रहर्ष उत्पन्न होता है अर्थात् शीघ्र ही बल वर्ण एव ओज की वृद्धि होती है। वात और कफ से पैदा हुए रोगों में तक्र से बढकर अन्य औषधि नहीं। वात विकार जो अस्सी प्रकार के होते हैं और कफ विकार जो बीस प्रकार के होते हैं वे सब तक्र के सेवन से नष्ट होते हैं।

महर्षि चरक कहते हैं कि चित्रक की जड़ की छाल को अच्छी तरह पीसकर एक मिट्टी के घड़े में तिल की मोटाई के समान लेप कर दें। उसके सूख जाने पर उस बर्तन में दही जमावे। बवासीर के रोगी को ऐसा ही दही या ऐसे ही दही से बिलोई हुई छाछ देना चाहिये।

मट्ठा और संग्रहणी—संग्रहणी रोग में भी मट्ठा एक अत्यन्त लाभदायक वस्तु है। एक स्थान पर कहा गया है कि:—

यथा तृणचय वन्हि स्तमांसि सविता यथा।
निहन्ति ग्रहणी रोग तथा तक्रस्य सेवनम्॥

अर्थात् जिस प्रकार तृण समूह को अग्नि नष्ट करती है और सूर्य भगवान अन्धकार को दूर करते हैं उसी प्रकार तक्र का नियम और पथ्यपूर्वक सेवन ग्रहणी रोग को नष्ट करता है।

ग्रहणी रोग में मट्ठे को औषधि रूप में सेवन करने के पहिले ज्वार की रोटी अथवा चाँवल तौलकर भरपेट खा लेना चाहिये। जिस दिन मट्ठा सेवन किया जाय उसी दिन से २ या २॥ तोला अन्न और थोड़ा जल प्रति दिन कम करते जाना चाहिये और पानी की जगह थोडा थोडा मट्ठा बढ़ाना चाहिये। जब जब प्यास या भूख लगे तब-तब थोडा-थोडा मट्ठा लेते रहना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर दस-दस पंद्रह-पंद्रह मिनिट पर भी दस दस पाँच-पाँच तोले मट्ठा ले सकते हैं।

एक बार ज्यादा मट्ठा पीने की अपेक्षा थोड़ा थोडा करके कई बार पीना विशेष अच्छा होता है। इसी क्रम से धीरे-धीरे अन्न और जल को घटाना और मट्ठे को बढाना चाहिये। यहाँ तक कि अन्न और जल बिलकुल बन्द हो जाय और रोगी को केवल मट्ठे का ही अवलम्ब रह जाय। जिस दिन उसका अन्न और जल बिलकुल छूट जाय उस दिन से कम से कम ४१ दिन तक केवल मट्ठे पर रहकर लघन करना चाहिये। कहा गया है कि:—

शनै: शनैः हरेदन्न तक्रन्तु परिवर्धयेत्।
तक्रमेव यथाहारो भवेदन्न विवर्जितः॥
तक्र सात्म्य यथा कुर्यान्नैवान्न तत्रभक्षयेत्।
बुभुक्षाया पिपासाया पिवेत्तक्र सनागरम्।
सप्ताह वा दशाह वा पक्ष मास यथापिवा,
बल काल विशेषज्ञो भिषक तक्र प्रयोजयेत्।
तक्र प्रयोगान्मासान्ते क्रमेणोपशयोमतः।

ऊपर के श्लोक में सात दिन, दस दिन, पंद्रह दिन या एक महीने तक केवल मट्ठे पर रहकर लघन करने को कहा गया है। फिर क्रमशः थोड़ा थोड़ा आहार देकर और मट्ठा घटाकर धीरे-धीरे आहार पर

आनेका आदेश दिया गया है। यह रोगी की स्थिति और चिकित्सक के विचार पर निर्भर है कि केवल मट्ठे पर सहारा लेकर कितने दिनों तक लंघन किया जाय। आज कल कम से कम ४१ दिनों के लंघन की आवश्यकता पड़ती है।

मट्ठे का ठीक तरह से पाचन होने और अग्नि को शीघ्र प्रदीप्त होने के लिये उसमें सोंठ का चूर्ण मिला लेना चाहिये। यह चूर्ण शुरू में कम मिलाना चाहिये मगर धीरे-धीरे इसकी मात्रा बढाकर २ तोले तक की जा सकती है। कुछ लोग मट्ठे में सेंधानमक मिलाकर पीते हैं मगर नमक डालने से मट्ठे के अन्दर रहनेवाले लेक्टिक जन्तु जो मनुष्य की जीवनी शक्ति के लिये बहुत उपयोगी होते हैं नष्ट हो जाते हैं। जिससे उसका स्वास्थ्य प्रद गुण कम हो जाता है।

जब लंघन पूरे हो जायँ और अन्न शुरू करने की जरूरत पड़े तब एकाएक भरपेट अन्न नहीं देना चाहिये। ऐसी गलती करने से भयंकर हानि की सम्भावना रहती है। पहिले दिन बढ़िया पुराना चाँवल अथवा पुराने गेहूँ, जव अथवा ज्वार की रोटी सिर्फ तीन माशा देना चाहिये। उसके निर्विघ्न पच जाने पर दूसरे दिन छः माशे देना चाहिये। फिर एक तोला डेढ तोला इस प्रकार धीरे-धीरे बढाते हुए धीरे-धीरे पूरी खुराक पर आना चाहिये। जैसे-जैसे खुराक बढती जाय मट्ठा घटाते जाना चाहिये। प्रतिदिन दस तोले मट्ठा कम करना चाहिये। धीरे-धीरे जब मट्ठा इतना कम हो जाय कि उससे प्यास न बुझने लगे तब थोड़ा-थोड़ा जल पीना शुरू करना चाहिये।

तक्र सेवनके कालमें कभी २ दस पद्रह दिनों पर गाढे या पतले दस्त होने लगते है किसी समय दौरा बहुत बढ जाता है ऐसी स्थिति में औषधि पर शंका न करना चाहिये। यह व्याधिका स्वभाव है। ग्रहणी बड़ा भयंकर रोग है साथ ही बड़ा हठीला भी। बड़े परिश्रम से जाता है। यदि दस्त अधिक बढ जायँ तो मट्ठे को रोक रोक कर जैसे २ पाचन होता जाय वैसे २ देना चाहिये। दस्तों के सुधरने पर क्रमशः उसे बढाना चाहिये।

ग्रहणी रोगमें गाय के दूध का मट्ठा ही सबसे श्रेष्ठ होता है। जिस गाय के दूध से मट्ठा बनाया जाय वह पूर्ण स्वस्थ हो। बुड्ढी या बीमार गाय का दूध अस्वास्थ्यकर होता है। उत्तम दूध प्राप्त करने के लिये गायको साफ और उत्तम आहार मिलना चाहिये। जिस गायको साफ और उत्तम आहार नहीं मिलता और जो गदी जगहों में बाधी जाती है और गदी, सड़ी, गली चीजें और मैला खाती हैं उसका दूध उत्तम नहीं होता। यदि उत्तम दूध से दही जमाकर मट्ठा नहीं बनाया जायगा तो उत्तम फल की आशा न करना चाहिये।

ग्रहणी रोगमे जो मट्ठा दिया जावे उसमें दही से चौथाई पानी डालना चाहिये। यदि रोगी इतना गाढा मट्ठा न पचा सके तो आधा दही और आधे पानी से मट्ठा बना कर उसे देना चाहिये। दही हमेशा बारह घंटे का जमाया हुआ लेना चाहिये। इससे अधिक समय का होने से वह खराब हो जाता है।

ग्रहणी के रोगी को जो मट्ठा दिया जाय उसमें से घी निकाला जाय या नहीं इस विषय में वैद्यों के अन्दर मतभेद है। कुछ वैद्योंका कथन है कि मट्ठे में से घी जरूर निकाल लेना चाहिये क्योंकि बिना घी निकाला हुआ मट्ठा देर से पचता है और रोगी उसको पचा नहीं सकता। इस कारण वह हानि कारक

होता है। घी निकाले हुए मट्ठे में भी शरीरको पोषण करने योग्य जितने पोषक तत्वोंकी आवश्यकता होती है उतने उसमें रहते हैं। इस लिये घी निकाला हुआ मट्ठा देते समय इस बात से नहीं झिझकना चाहिये कि इससे रोगीका पोषण कैसे होगा और उसमें ताकत कैसे रहेगी। मगर दूसरे मत के लोग संग्रहणी के रोगियों के लिये मट्ठे से घी निकालने के विरोधी हैं। उनका कथन है कि मट्ठे से घी निकालने पर उसके पोषक द्रव्यो की कमी हो जाती है और उससे शरीर का पोषण बराबर नहीं हो सकता। ऐसे चिकित्सक मट्ठे की अपेक्षा रोगियों को दही पर रखना ही विशेष पसन्द करते हैं। अजमेर के सुप्रसिद्ध संग्रहणी चिकित्सक डॉक्टर अम्बालालजी अपने संग्रहणी क रोगियों को दही पर ही रखते हैं।

आनुसगिक औषधियाँ—यद्यपि सिर्फ तक्र पर ही अवलम्बित रहने से मनुष्य ग्रहणी रोग से मुक्त हो सकता है मगर उसके साथ २ यदि उचित औषधिका प्रयोग भी होता रहे तो विशेष लाभ की आशा रहती है। इन औषधियों में स्वर्णपर्पटी, लोह पर्पटी, पचामृत पर्पटी, लाइचूर्ण, दुग्धवटी इत्यादि औषधियें विशेष रूप से उपयोगी समझी जाती हैं। चिकित्सक इनमें से किसी भी औषधिका प्रयोग अपने अनुभव के अनुसार कर सकता है।

उपयोग—

ववासीर—मट्ठे में सेंधा निमक और अजवायन का चूर्ण मिलाकर पीने से बवासीर में लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र—मट्ठे में ३ माशे शुद्ध गंधक मिलाकर पीने से पेशाब की जलन शान्त होती है और मूत्रकृच्छ्र के रोगी को आराम मिलता है।

दाह—गाय के मट्ठे में कपड़ा डुबोकर शरीर पर मलने से शरीर की दाह शान्त होती है।

मूंगफलीका अजीर्ण—मूगफली के अजीर्ण पर मट्ठा पीने से अजीर्ण का दोष मिट जाता है।

घी का अजीर्ण—घी और तेल अधिक मात्रा में सेवन करने से अगर किसीको अजीर्ण हो जाय तो वह मट्ठे के सेवन से शान्त हो जाता है।

कब्जियत—गाय के मट्ठे में अजवायन और काला नमक मिलाकर खाने से कुछ दिनों में पुरानी कब्जियत नष्ट हो जाती है।

कफोदर—गाय के मट्ठे में जीरा, मिर्च, अजवायन, पीपर और सेंधे निमक का चूर्ण मिलाकर खाने से कफोदर अच्छा होता है।

आधा शीशी—मट्ठा भात और मिश्री इन तीनों चीजोंको मिलाकर सूर्योदय से पहिले खानेसे दो तीन दिनोंमें आधा शीशीका दर्द दूर हो जाता है।

पतले दस्त—ताजा मट्ठेमें सफेद जीरा भूनकर पीस छानकर मिलाकर खानेसे पतले दस्तका आना बन्द हो जाता है।

अतिसार—आधपाव मट्ठेमें एक तोला शहद मिलाकर पीनेसे अतिसार बन्द होता है।

काँचका विष—अगर कोई काँचका चूर्ण खाले तो उसको गायका मठा पिलानेसे काँचका विष शान्त हो जाता है।

बनावटें—

तक्रारिष्ट—हाउबेर, जीरा, धनिया, सफेद जीरा, कारवी (छोटा कालाजीरा), कचूर, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, गजपीपल, अजवायन, अजमोद, इन सब चीजोंको समान भाग लेकर चूर्ण करके मट्ठेमें मिलाकर, घीसे चिकने मिट्टीके वर्तनमें रखकर उस वर्तनका मुँह बन्द करके उसपर कपडमिट्टी कर दें। इस समय इसमें अम्ल और कटु रस मन्द होते हैं। मगर ७ रोज तक पडा रहनेके पश्चात् इसमें खट्टा और कडवा रस खूब हो जाता है। उसके पश्चात उसे खोलकर भोजनके पश्चात् बलके अनुसार पीवे। यह तक्रारिष्ट बवासीर, सूजन, और कण्ठरोगमें लाभदायक होता है। अग्निको दीप्त करता है, बलको बढाता है, भोजनमें रुचि पैदा करता है, सुस्वादु होता है और कफ तथा वातका अनुलोमन करता है।

(चरक संहिता चिकित्सा स्थान अध्याय १४)

तक्रारिष्ट नम्बर २—अजवायन, आँवला, हरड, कालीमिर्च, प्रत्येक बारह बारह तोला, सेंधा निमक काला निमक, सञ्चरनिमक, साम्हर निमक और दरियाइनिमक ये पाँचों निमक चार चार तोला लेकर इन सब चीजोंका चूर्ण करके ८ सेर मठेमें सबको मिलाकर घीसे चिकने मिट्टीके बरतनमें भरकर बरतनका मुंह बन्दकर सात दिन तक पडा रहने दें फिर उसको निकालकर अपनी शक्तिके अनुसार उचित मात्रामें भोजन के पश्चात् सेवन करे। इसके सेवनसे बवासीर, संग्रहणी, कृमि, प्रमेह और उदर रोगोंमें लाभ होता है। यह अरिष्ट अग्निको भी दीप्त करता है।

रसाला या शिखरण—खट्टा दही तीन सेर, साफ चीनी एक सेर, घी एक छटाँक, शहद आधापाव, मिर्च, सोंठ, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर ये सब चीजें दो दो तोला। इन सब चीजोंको अच्छी तरह पीसकर दहीमें मिलाकर गाढे कपड़ेमें छानकर चिकने मिट्टीके बरतनमें रखना चाहिये। यह शिखरण बलवर्धक, धातुवर्धक, पौष्टिक, स्वादिष्ट और रुचिको उत्पन्न करनेवाला होता है।

तक्रवटी—शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक एक भाग, वच्छनाग २ भाग, ताम्र भस्म ४ भाग मण्डूरभस्म १२ भाग और छोटी पीपरका चूर्ण १२ भाग। इन सब चीजोंकी कजली और चूर्ण बनाकर स्याहजीरेके क्वाथमें घोंटकर तीन तीन रत्तीकी गोलियाँ बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से प्रति दिन सबेरे और शाम एक एक गोली मट्ठेके साथ लेना चाहिये। पथ्यमें भूख और प्यास लगने पर सिर्फ ताजा मट्ठा ही पीकर रहना चाहिये। अन्न, जल और नमकका बिल्कुल त्याग कर देना चाहिये। इस प्रकार इस प्रयोगको कुछ सप्ताहों तक करते रहनेसे संग्रहणी और मन्दाग्निका नाश होता है।

दधिवटी—शुद्ध पारा, भाँगरेके रसमें शुद्ध किया हुआ गधक, शुद्ध हरताल, वच्छनाग, नीला थूथा, कवाब चीनी, ताम्रभस्म, सोना मुखीकी भस्म और लोहभस्म। इन सब चीजोंको समान भाग लेकर उनका चूर्ण करके उस चूर्णको निर्गुण्डी, माल काँगनी, सफेद फूलकी अपराजिता, अरनी और चित्रकके जड के रसकी एक एक भावना देकर, एक एक रत्तीकी गोलियाँ बना लेना चाहिये। इनमेंसे एक से लेकर दो तक गोली, पीपर के क्वाथ के साथ ले कर ऊपर से शक्कर मिला हुआ दही खाना चाहिये। इस प्रयोग से भी संग्रहणीमें लाभ होता है।

मट्ठा पीनेका समय—

भोजनान्ते पिबेत्तक्रं निशान्ते च पिबेज्जलम्,
निशामध्ये पिबेद्दुग्धं किं वैद्यस्य प्रयोजनम्।

अर्थात् भोजनके अन्तमें मट्ठा, निशाके अन्तमें जल और रात्रिके मध्यमें दूध पीनेसे मनुष्य हमेशा स्वस्थ रहता है।

मधु (शहद) ❀

नाम:—

संस्कृत—मधु, मकरन्द, रस, माक्षिक, पुष्पासव, क्षौद्र, पुष्परसोद्भव, भृंगवात। हिन्दी—मधु, शहद। बंगाल—मधु, मौ। मराठी—मध। गुजराती—मध। पंजाब—शहद, मधु। फारसी—शहद। तामील—तयनतेना। अंग्रेजी—Honey (हनी)। लेटिन—Mel (मेल)।

वर्णन—मधु शहद को कहते हैं। यह मधुमक्खियों के द्वारा निर्माण होता है। मधुमक्खियाँ भिन्न-भिन्न जाति के फूलों से उनका मकरन्द चूसकर उन्हे अपने पेट के समीप की मधुवाली थैली में संग्रह करती है और फिर अपने छत्ते में जाकर छत्ते की छोटी-छोटी कोठरियों में उसको भर देती है। यह शहद पहिले तो पानी के समान पतला और फीका रहता है मगर मधुमक्खियों की थैली में कुछ देर रहने के कारण वह कुछ गाढा और मीठा हो जाता है और फिर छत्ते में वह और भी गाढा होकर मधु के रूप में परिणत हो जाता है। छत्तेमें मधुमक्खियाँ उसे मोम से सुरक्षित कर रख छोडती हैं।

मधु चिपचिपा, कुछ पारदर्शक, हल्के भूरे रंग का, वजनदार, सुगंधियुक्त, अत्यन्त मीठा, गाढा, पानी में अच्छी तरह घुल जानेवाला एक प्राकृतिक द्रव पदार्थ होता है।

मधु की जातियाँ:—

आयुर्वेद में मधुमक्खियों के भेद के अनुसार मधु की आठ जातियाँ मानी गई हैं। १ पौत्तिक मधु, २ भ्रामर मधु, ३ क्षौद्र मधु, ४ माक्षिक मधु ५ छात्र मधु, ६ आर्घ्यमधु, ७ औद्दालक मधु और दालमधु।

इनमें से पहले ६ प्रकार के मधु ६ जाति की मक्खियों द्वारा तैयार होते हैं। इन छहों के नाम छहों मक्खियों के नामों के अनुसार ही रक्खे गये हैं। दाल और आर्घ्यजाति के मधु को सुश्रुत में वृक्षोद्भव लिखा है अर्थात् फूलों का रस स्वयं टपक-टपक कर पत्तों पर गिरता है और कुछ कालतक पडा रहने के कारण जमकर मधु के तुल्य हो जाता है। इसको दाल मधु कहते हैं जिस वृक्ष के फूलों से यह रस टपकता है उसी वृक्ष के स्वभाव के अनुसार इस मधु का रूप, रंग, गंध और स्वाद रहता है।

आर्घ्य नामक मधु महुए के पेड से टपक कर गाढ़ा हो जाता है। यह मधु जब महुए के पेड से टपकता है तब बहुत गाढा रहता है और कुछ देर में बाहर की हवा और धूप लगते ही जमकर गोंद की तरह हो जाता है। यह मधु देखने में बहुत ही साफ स्वाद में अत्यंत मीठा और महुए के फूल की तरह गंधवाला होता है।

❀ श्री केदारनाथ पाठक लिखित "मधु के उपयोग" नामक पुस्तक से इस विवेचन में सहायता ली गई है।—लेखक

शुद्ध मधु की पहचान

और २ वस्तुओं की तरह मधु के अन्दर भी कृत्रिम वस्तुओं का मिश्रण बहुत अधिक होने लगा है। शहरों में तो असली मधु का मिलना दुष्प्राप्य सा हो गया है। शहद में लोग चीनी, गुड, मेदा, जिलाटिन नामक एक प्राणिज पदार्थ और अरारोट इत्यादि वस्तुओं का मिश्रण किया करते हैं। बनावटी मधु तो केवल गुड या चीनी के शीरे मे नीबू का सत्व मिलाकर बनाया जाता है। नट नामक जाति के लोग कृत्रिम मधु के निर्माण में आश्चर्यजनक कौशल दिखाते हैं। उनके बनाये हुए मधु की चाहे जितनी परीक्षा कर ली जाय वह कभी फेल नहीं होता। फिर भी वह मधु नकली ही रहता है। तथापि औषधि शास्त्र में असली मधु के जो लक्षण बताये हैं वे यहाँ पर लिखना आवश्यक है।

(१) असली मधु को कुत्ता नहीं खाता।

(२) मधु में रुई की बत्ती भिगोकर उसे जलाने से बत्ती जल उठती है।

(३) मक्खी को पकड कर उस पर आप सेरों शहद डाल दीजिये उसमें मक्खी मरेगी नहीं और दबेगी नहीं बल्कि थोडी ही देर में मक्खी तैरती हुई ऊपर आ जायगी और उड जायगी।

(४) चौथी परीक्षा मधु की उसकी गध स्वाद और रूप से की जाती है।

मगर ये सब परीक्षाए पर्याप्त नहीं हैं। हमने इन सब परीक्षाओं से खोज बीनकर लेने पर भी मधु के खरीदने में धोखा खाया है। नकली मधु को बनानेवाले इतनी चतुराई से उसे तयार करते है कि वह इन सब परीक्षाओं मैं आसानी से उत्तीर्ण हो जाती है। मगर उन लोगों के जाने के दो चार दिन बाद ही उसकी पोल खुल जाती है। इसलिये मधु को लेते समय इन परीक्षाओं पर निर्भर रहना उचित नहीं है। बल्कि जहां तक बने विश्वसनीय स्थान से मधु खरीदना ही उत्तम है।

मधु उत्पादन की आधुनिक योजनाएँ—

आधुनिक वैज्ञानिक युग में मधुमक्खियों का पालन और उनके द्वारा मधु का उत्पादन एक बहुत मनोरजक और दिलचस्प विषय हो गया है। ज्यों-ज्यों इस विषय में मनुष्य का अनुभव बढता जा रहा है त्यों त्यों मधुमक्खियों के सम्बन्ध में उसे नई नई जानकारियाँ प्राप्त होती जा रही हैं और धीरे-धीरे यह विज्ञान मनोरंजन की हद से निकलकर आर्थिक सफलता की हद में आ पहुँचा है। अब यूरोप में सैकडों स्थानों पर आर्थिक दृष्टि से मधुमक्खियों के पालने का व्यवसाय होता है। इस प्रकार का व्यवसाय करनेवाले लोग लकडी के फ्रेम से कृत्रिम छत्ते बनाते हैं और तरकीब से मधु मक्खियों को उन छत्तों में लाकर पालन करते हैं। यद्यपि यह विषय बहुत ही दिलचस्प और आवश्यक है फिर भी विषयान्तर होने की वजह से हम यहाँ पर इसको अधिक विस्तार नहीं दे सकते। जो पाठक इस विषय में दिलचस्पी रखते हों उन्हें इस विषय का स्वतन्त्र साहित्य मगाकर पढना चाहिये।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से मधु शीतल, स्वादिष्ट, रूखा, स्वर को शुद्ध करनेवाला, ग्राही, नेत्रों को हितकारी, अग्निदीपक, व्रणशोधक, नाडी को शुद्ध करनेवाला, सूक्ष्म, कांतिवर्धक, मेधाजनक, कामोद्दीपक, रुचि-कारक, आनदजनक, कसैला, कुछ वातकारक तथा कुष्ट, बवासीर, खासी, पित्त, रुधिरविकार, कफ, प्रमेह,

कृमि, मद, ग्लानि, तृषा, वमन, अतिसार, दाह, क्षतक्षय, मेद, क्षय, हिचकी, त्रिदोष, आफरा, वायु, विष और कब्जियत को नष्ट करनेवाला होता है। सब प्रकार के मधु व्रणों को भरनेवाले, शोधक और टूटी हड्डियों को जोडनेवाले होते हैं।

आग पर गरम किया हुआ मधु अथवा ग्रीष्म काल में उष्ण द्रव्यों के साथ खाया हुआ मधु विष के समान संताप को पैदा करता है।

हारीत के मतानुसार मधु शीतल, कसैला, मधुर, हलका, अग्निदीपक, शरीर को शुद्ध करनेवाला, व्रणशोधक, घाव को भरनेवाला, हृदय को हितकारी, बलकारक, त्रिदोष नाशक, पौष्टिक तथा खाँसी, क्षय, मूर्छा, हिचकी, भ्रम, शोष, पीनस, रक्त प्रमेह, श्वास, अतिसार, रक्तातिसार, रक्तपित्त, तृषा, मोह, हृदयरोग, नेत्र रोग, संग्रहणी और विष विकार में लाभदायक होता है।

चरक के मतानुसार मधु वात कारक, भारी, शीतल, कफनाशक, छेदक, रूक्ष और मीठा तथा कसैला होता है।

पौत्तिक मधु—यह पुत्तिका नामक मक्खियों के द्वारा निर्माण किया जाता है। यह गाढ़ा और घी के रंग का होता है। यह उष्णवीर्य, किंचित कसैला, वातवर्धक, रक्तपित्त को पैदा करनेवाला, भेदक, मद-कारक और मधुर होता है। यह कुछ विषैला होता है।

भ्रामर मधु—यह भ्रमर नामक मक्खियों के द्वारा बनाया जाता है। यह मधु बहुत गाढा, सफेद पारदर्शक और मिश्री के समान रवेवाला होता है। यह बहुत स्वादिष्ट, रक्तपित्त नाशक, मूत्ररोधक, भारी, पाकमें मधुर, अभिष्यन्दी और शीतल होता है।

क्षौद्र मधु—क्षुद्रानामक छोटी मक्खियों के द्वारा बनाया हुआ क्षौद्र मधु कपिल रंग का और कुछ पतला होता है। यह शीतल, हलका, लेखन तथा प्रमेह रोग को दूर करनेवाला होता है।

माक्षिक मधु—यह मक्षिका नाम की मधुमक्खियों द्वारा तयार किया जाता है। इसका रंग तेल की तरह होता है। यह मधु श्रेष्ठ और दमे के रोग में विशेष रूपसे हितकारी होता है।

छात्र मधु—छात्र जाति की मक्खियों द्वारा तैयार किया हुआ मधु छात्रमधु कहलाता है। यह कुछ अधिक पीले रंग का और गाढा होता है। यह मधु शीतल, भारी, पाक में मधुर, तृप्तिदायक और कृमि-रोग, कुष्ट, रक्तपित्त, प्रमेह, भ्रम, तृषा तथा विषकोनष्ट करनेवाला होता है।

औद्दालक मधु—उद्दालक नामक मधु मक्खियों द्वारा बनाया हुआ मधु औद्दालक कहलाता है। यह सोने के समान रंगवाला, चमकदार और किंचित गाढा होता है। यह रुधिर को बढानेवाला, कसैला गरम, अम्ल, पाक में कड़वा और पित्तकारक होता है।

दाल मधु—दालमधु पाक में हलका, अग्निदीपक, कफको नष्ट करनेवाला, कसैला, रूखा; रुचिवर्धक मधुर, चिकना, पौष्टिक, वजनदार और प्रमेहको नष्ट करनेवाला होता है।

आर्घ्य मधु—नेत्रोंको अति हितकारक, कफ तथा पित्तनाशक, उत्तम, कसैला, पाकमें चरपरा, कड़वा और पौष्टिक होता है।

पुराना मधु—एक वर्षके बाद पडा रहनेवाला मधु पुराना समझा जाता है। यह पुराना मधु सकोचक, रूखा और मेदरोग नाशक समझा जाता है।

अभाव से पैदा होनेवाले सुप्रसिद्ध बेरीबेरी नामक रोग में भी शहद का प्रयोग बहुत सफलता पूर्वक किया जाता है।

आँतों के ऊपर शहद के प्रभाव—

शहद पेट के अन्दर जाकर आँतों की बिगडी हुई क्रिया को सुव्यवस्थित करके उनके अन्दर जमे हुए विजातीय द्रव्यों को दूर कर देती है। इसलिये पुरातन अतिसार, प्रवाहिका तथा पुरानी कब्जियत में मधु की वस्ति देना लाभदायक होता है। इससे आँतों का कुपित कफ शमन होकर उनसे भली-भाँति रस निकलना प्रारम हो जाता है। और रस निकलने से अहार रस का ठीक से शोषण होता है। जिससे कब्जियत, अतिसार इत्यादि उपद्रव दूर हो जाते हैं।

आँतों की तरह आमाशय और पक्वाशय पर भी इसकी क्रिया बडी सन्तोषजनक होती है। प्रकृति विरुद्ध और भारी भोजन बहुत अधिक समय तक करने की वजह से आमाशय और पक्वाशय में खराबी हो जाय तो मधु को स्वतन्त्र रूप से या किसी दूसरी अनुकूल औषधियों के साथ सेवन करने से आमाशय की रस ग्रथियाँ क्रियाशील होकर अधिक पाचक रस निकालना प्रारम्भ कर देती हैं। जिससे सूजन दूर हो जाती है, जठराग्नि तीव्र हो जाती है और भूख अधिक लगने लगती है।

यकृत की क्रिया शिथिल होने के कारण यदि रोगी पोषक अहार दूध, दही, घृत या शक्कर की जाति के दूसरे पदार्थों को पचाने में असमर्थ हो तो ऐसी हालत में मधु का सेवन करने से यकृत की क्रिया सुधर कर पाचन क्रिया दुरुस्त हो जाती है।

चर्म रोगों पर मधु के प्रभाव—

मधु में विटामिन बी की प्रधानता होने की वजह से यह त्वचा की और रक्त की विनिमय क्रिया को सुधारती है। इस कारण चर्म सम्बन्धी रोगों तथा रक्त सम्बन्धी रोगों में भी मधु का आन्तरिक और बाह्य प्रयोग बहुत लाभदायक होता है। डॉक्टर डब्ल्यू-जेसिस अपनी हेल्थ एड विटेलिटी नामक पुस्तक में लिखते हैं कि मधु बच्चों की आँतों की बीमारी के लिये अति उत्तम औषधि है। हृदय रोगों के लिये भी यह बेजोड चीज है। इसमे नमक और एल्ब्यूमिन नामक तत्व का अभाव होने से यह गुर्दे की व्याधि से ग्रस्त लोगों के लिये उत्तम पथ्य के रूप में व्यवहार की जा सकती है। चर्म रोगों पर मधु को २४ घंटों में एक बार लगाना उचित है। चर्म रोगों में इसका आन्तरिक प्रयोग उसी समय उपयोगी होता है जब शरीर की रासायनिक क्रिया की विकृति से फोडे आदि निकलते हों। बडे-बडे कठिन फोडे मधु के बाहरी प्रयोग से अच्छे हो गये हैं। ऐसे फोडों में पहिले किसी साधारण शस्त्र से छोटा सा छिद्र कर दें और फिर मधु का व्यवहार करें, आश्चर्यजनक लाभ होगा। शल्य क्रिया में भी मधु एक बहुत उपयोगी वस्तु है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि इसके बराबर व्यवहार से घाव में पीप पैदा नहीं होने पाता और न घाव का निशान रहने पाता है। मधु को ड्रेसिंग भी अच्छी होती है। इसकी पट्टी लगाने पर फिर दूसरे मरहम इत्यादि लगाने की आवश्यकता नहीं होती। बिगडे हुए घाव को साफ करने में मधु एक बेजोड वस्तु है।

कामेंद्रिय पर मधु के प्रभाव—

पुरुष और स्त्री की कामेंद्रिय पर मधु के बाह्य प्रयोग से बहुत लाभ होते हैं। काम विज्ञान की आचार्या मेरी स्टोप्स का कथन है कि यदि सहवास के समय स्त्री अपनी योनि के भीतरी प्रदेश को मधु से तर कर ले तो इससे स्त्री और पुरुष दोनों को लाभ होता है। क्योंकि सहवास के समय रक्त की चाल और हृदय की धड़कन में तीव्रता आ जाती है और सारे शरीर के तन्तु सक्रिय और सतेज हो जाते हैं ऐसी अवस्था में धमनियों के केन्द्र स्थान जननेंद्रिय को मधुपूरित करने से मधु का विशिष्ट गुण जननेंद्रिय की पेशियों द्वारा शरीर की सम्पूर्ण नसों में शीघ्र व्याप्त हो जाता है। इस प्रयोग से एक लाभ यह होता है कि प्राणियों में सहवास के कारण होनेवाली क्षति की जल्दी ही पूर्ति हो जाती है और उससे शिथिलता नहीं आने पाती। जननेंद्रिय के दूषित कीटाणु तथा उसके मल को साफ करने में भी इससे अच्छी मदद मिलती है।

लिंगेंद्रिय की शिथिलता को मिटाने में भी मधु बहुत अच्छा कार्य करती है। अधिक सहवास या अप्राकृतिक सहवास की वजह से अगर पुरुष की लिंगेंद्रिय शिथिल हो जाय, उसमें उत्तेजना पैदा होना बंद हो जाय तो एक मिट्टी के बरतन में सेर डेढ़ सेर मक्षिका नामक मक्खियों का शुद्ध और पीला मधु भरकर उस मधु पात्र में प्रतिदिन १५ मिनिट तक लिंगेंद्रिय को डुबोये रखना चाहिये। फिर बाहर निकालकर सूखे और मुलायम कपड़े से उसे अच्छी तरह पोंछकर उसपर गाय के घी की मालिश करना चाहिये। स्नान के समय मूत्रेंद्रिय के भीतर जमे हुए मल को प्रतिदिन साफ कर लेना चाहिये। इस प्रयोग को एक महीने डेढ़ महीने तक करने से और इस काल में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने से मूत्रेंद्रिय की शिथिलता नष्ट होकर उसपर उभरी हुई नीली नसें मिट जाती हैं और उसमें उत्तेजना पैदा होने लगती है।

सर्व संग्रह नामक एक हस्तलिखित ग्रंथ में लिखा है कि यदि स्त्री सहवास से एक घंटा पहिले पुरुष अपने नाभि के गड्ढे में रूई के फोये को मधु में तर करके रक्खे तो उसका लिंग बहुत देर तक दृढ़ बना रहता है।

मस्तिष्क पर मधु के प्रभाव—

मस्तिष्क के ऊपर भी मधु के लगातार सेवन से बहुत अनुकूल प्रभाव होता है। कुछ दिनों तक लगातार इसका सेवन करने से मस्तिष्क और ज्ञान तन्तुओं की दुर्बलता मिटती है। उनके अन्दर पैदा हुआ कफ का विकार शान्त होता है और मनुष्य की विचार शक्ति, स्मरण शक्ति और धारणा शक्ति बढ़ती है।

नेत्रों पर मधु का प्रभाव—

नेत्रों में अञ्जन की तरह नित्य एक बार मधु को आँजने से नेत्रों के सब प्रकार के विकार आँसुओं के साथ निकल जाते हैं और नेत्रों का भारीपन, धुन्ध आदि मिट जाते हैं। नेत्रों के अन्दर पैदा होनेवाले विविध प्रकार के रोग भी मधु के नियमित अञ्जन से दूर हो जाते हैं। मगर इस अञ्जन के काम में हमेशा काश्मीर में पैदा होनेवाला पद्म मधु ही उपयोग में लेना चाहिये। यही मधु इस कार्य के लिये सबसे श्रेष्ठ होता है।

एक नेत्र चिकित्सक ने हमको बतलाया कि अगर मनुष्य प्रतिदिन बडे सबेरे आधी छटाँक मधु को एक छटाँक पानी में अच्छी तरह मिलाकर नियम से पिया करे तो उसे जन्म भर नेत्र सम्बन्धी कोई व्याधि न हो।

यूनानी मत—यूनानी मत से शहद शरीर के दोषों को साफ करता है। पुराने और लसदार कफ को छाँटता है। हर किस्म की बिगडी वायु को ठीक करता है। पेशाब अधिक लाता है। औरतों के रुके हुए मासिक धर्म को जारी करता है। दूध को खूब बढाता है। मसाने और गुर्दे की पथरी को तोडता है। यकृत और आमाशय को शक्ति देता है और छाती को साफ करता है।

हकीम जालीनूस का कथन है कि सर्द बीमारियों की शहद से बढकर दूसरी दवा नहीं। अगर कानों में खडखडाहट और तडतडाहट की आवाज सुनाई पड़े तो पानी में ४।५ बूँद शहद और जरा सा कलमी शोरा मिलाकर कानों में टपका देने से तुरन्त बंद हो जाता है।

भिन्न भिन्न रोगोंपर मधु के प्रयोग—

पुरानी कब्जियत और मधु—जिन रोगियों को हमेशा कब्जियत की शिकायत रहती है उन्हें पहले २४ घण्टे तक उपवास कराना चाहिये। उपवास की हालत में प्यास लगने पर थोडा जल देना चाहिये। दूसरे दिन से प्रात:काल आधी छटाँक और शामको आधी छटाँक मधु चटाना चाहिये। जब तक प्रयोग चलता रहे तब तक पथ्य में गाय का दूध देना चाहिये। धूप में घूमना और आग के निकट बैठने से बचाना चाहिये। इस प्रकार ७ या ११ दिन तक प्रयोग करने से कब्जियत दूर हो जाती है।

चर्म रोगों में मधु—

जिन लोगों को दाह, खाज, खुजली, फोड़े-फुन्सी इत्यादि चर्म रोगों की शिकायत रहती है वे लोग अगर हमेशा नियम से आधी छटाँक मधु १ छटाक जल में मिला कर बडे सबेरे ४।६ महीने तक पिया करें तो हमेशा के लिये ऐसी शिकायतें दूर हो जाती हैं।

यक्ष्मा रोग और मधु—

यक्ष्मा से पीडित रोगियों के लिये मधु एक बहुत ही उत्तम पथ्य है। क्योंकि मधु में यह विशेषता है कि उस में जीवन रक्षा के योग्य सब पोषक तत्व होते हुए भी वह पचने में बहुत हलका होता है। इस के सेवन से आँतों पर किसी प्रकार का दबाव तक नहीं पड़ने पाता। यदि यक्ष्मा वालों को उचित रीति से मधु का सेवन कराया जाय तो उनकी जीवनी शक्ति को पनपने में बहुत मदद मिलती है। यक्ष्मा के रोग में मधु को ताजे मक्खन के साथ दिया जाय तो विशेष उत्तम रहता है। इस कार्य के लिये २ तोले मधु को ४ तोले मक्खन में मिला कर देना चाहिये। दोनों चीजों को समान भाग लेना वर्जित है।

रासायनिक विश्लेषण—

शक्कर की अपेक्षा मधुमें डेक्ट्रोज और लेव्यूलोज अधिक मात्रा में होता है। यह कारबोहाइट्रेड के वर्ग का पदार्थ होता है। इसके अतिरिक्त इसमें प्रोटीन, फार्मिक एसिड, विटामिन बी और ग्लूकोज की मात्रा भी रहती है। इसमें जल १६-३ प्रतिशत, डेक्ट्रोज ७८-७४ प्रतिशत, क्षार '१२ प्रतिशत, स्याकरोज २'९९ प्रतिशत और नाइट्रोजन १'२९ प्रतिशत पाया जाता है।

वर्जनीय मधु—यह खयाल रखना चाहिये कि मधु अमृत तुल्य होने पर भी विशेष परिस्थितियों अथवा सयोग विरुद्ध पदार्थों के मेल से विष के तुल्य हो जाता है। इसलिये मधु का उपयोग करते समय नीचे लिखी बातों पर ध्यान रखना अत्यत आवश्यक है।

(१) मधु की प्रकृति सब उष्ण पदार्थों के विरुद्ध है। इसलिये इसको आग पर कभी गरम नहीं करना चाहिये। आग के ऊपर औटाया हुआ मधु विष के समान हो जाता है। इसके अतिरिक्त ग्रीष्मकाल में गरम जल के साथ अथवा गरम दूध के साथ इसका कभी सेवन नहीं करना चाहिये। सुश्रुत सहिता में एक स्थान पर लिखा है कि—

"मधु विष-युक्त होने के कारण सम्पूर्ण उष्ण पदार्थों के विरुद्ध है। उष्मा से पीडित मनुष्य को उष्ण-वीर्य द्रव्यों के साथ और उष्णकाल में इसको देना उचित नहीं। क्योंकि ऐसा मधु विष तुल्य होकर प्राण नाश करता है।"

सिर्फ यदि किसी रोगी को वमन कराने के निमित्त गरम जल के साथ मधु दिया जाय तो उससे कोई हानि की सभावना नहीं रहती। क्योंकि वह मधु शीघ्र ही वापस वमन के साथ निकल जाता है।

(२) दूसरी बात त्रिदोष और सन्निपात के रोगियों के लिये मधु का निषेध है, ऐसे रोगियों को मधु अनुपान या औषधि के रूप में नहीं देना चाहिये।

(३) घी और मधु को तौल में समान भाग मिलाकर उपयोग में नहीं लेना चाहिये। ऐसा कहा जाता है कि घी और मधु समान भाग मिलाने से बिष के समान हो जाते हैं।

(४) मकोय को मधु के साथ मिलाकर नहीं खिलाना चाहिये।

(५) लगातार बहुत बडी मात्रा में बहुत लम्बे समय तक मधु का उपयोग नहीं करना चाहिये। महर्षि चरक का कथन है कि मधु के अधिक सेवन से पेट में मध्वाम् नाम अतिसार हो जाता है। इससे बढकर दूसरा कष्टदायक रोग नहीं क्योंकि मधु सेवन की वजह से जो मध्वाम् होता है उसकी चिकित्सा करने में बडी कठिनाई होती है कारण मध्वाम् प्रायः आमदोष से होता है। आमदोष की चिकित्सा प्रायः उष्ण वीर्य वस्तुओं के द्वारा ही की जाती है और शहद से पैदा हुए मध्वाम् में उष्ण वीर्य औषधियों के द्वारा चिकित्सा करने से दाह, तृषा इत्यादि उपद्रव बढकर अतिसार और भी उग्ररूप धारण कर लेता है। इस कारण आमदोष मधुदोष में परस्पर विरोध होने के कारण रोगी की बडी दुर्गति हो जाती है। इसलिये इस रोग से बचने के लिये मधु को अधिक मात्रा में अधिक समय तक नहीं सेवन करना चाहिये।

दंत शूल—दत शूल में दर्द वाले स्थान पर मधु से तर किया हुआ रूईका फोया रखनेसे दाँत का दर्द मिट जाता है। और उसके अन्दरके कीडे मर जाते हैं।

कर्ण शूल—मधु को थोडे से पानी में मिला कर कान में टपकाने से कर्ण शूल मिटता है।

खासी—एक तोले से डेढ तोले तक मधु दिन में ३।४ बार चाटने से कफ छट कर खासी मिट जाती है।

स्वरभंग—जुकाम की वजह से यदि गला बैठ गया हो तो दिनमें ३।४ बार एक तोला मधु चाटने से गला साफ हो जाता है।

हड्डीका टूटना—हड्डीके टूटने पर सुबह शाम तीन २ तोले मधु का सेवन करने से और टूटी हुई हड्डी पर मधु में तर किया हुआ कपडा रखने से लाभ होता है।

खुजली—सारे शरीरमें अथवा शरीरके किसी भाग में खुजली की फुन्सिया हो और उनमें बहुत अधिक खुजली चलती हो तो मधु का लेप करनेसे शात हो जाती है।

व्रण—दूषित वृणों में मधु का शोधन रूपमें व्यवहार करनेसे बडा लाभ होता है।

कुष्ट—कुष्ट और कृमि आदि रोगों को दूर करने के लिए वायविडग, त्रिफला व छोटी पीपरके चूर्ण में माक्षिक मक्खीका मधु मिला कर चाटना चाहिये।

गडमाला—वरुणा की जड़ के क्वाथ में माक्षिक मधु मिला कर पीनेसे गडमाला में लाभ होता है।

श्वास—श्वास और खासी आदि रोगों को दूर करने के लिए त्रिफला और पीपल के चूर्ण के साथ मधु मिला कर चाटना चाहिये।

मधु शर्करा—जिस मधु में द्राक्ष शर्करा अथवा ग्लूकोज की मात्रा अधिक होती है वह मधु जम कर रवे के रूप में परिणित हो जाती है। इसे मधु शर्करा कहते हैं। यह मधु शर्करा रूखी और तृषा, मूर्च्छा तथा अतिसार को नष्ट करनेवाली होती है।

मघनी

नाम:—

सस्कृत—मघनी। तामील—अरात्तम, सेमवेल्लु। तेलगू—इट्टापट्टी। लेटिन—Gossypium Barbadense (गासिपियम बरबेडेन्स)

वर्णन—वह कपासके वर्गकी एक वनस्पति होती है। इसका पौधा झाडीनुमा होता है। इस वनस्पति की खेती की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके बीजोंमें एक प्रकारका तेल रहता है जो दबाकर निकाला जाता है। इस तेलको चमड़ेपर पड़नेवाले सफेद धब्बों और दागोंको दूर करनेके लिये उपयोगमें लिया जाता है। इसके बीजोंसे एक प्रकार का पेय तयार करके अतिसार और छातीके रोगोंको दूर करनेके लिए पिलाया जाता है।

मदन घंटी

नाम:—

संस्कृत—मदनघंटी। हिन्दी—मदनघंटी। बंगाल—मदन्त बुन्त कडु। गुजराती–मधुरी जडी, खरखर शवरो। कच्छी—बकनजोझाड। संथाल—पिटवारा। तामील—नुक्टे चुरी। तेलगू—मदन ग्रंधी। लेटिन—Syermacoce Hispida, Borreria Hispida (स्परमैकोसी हिस्पिडा, बोरेरिया हिस्पिडा)।

वर्णन—यह एक छोटी जातिका क्षुप होता है। इसके क्षुप जमीन पर छत्तेकी तरह फैलते हैं। इसकी डालियाँ खुरदरी, चौधारी और कुछ लाल होती हैं। इसके पत्ते आमने सामने लगते हैं। ये खुरदरे, दलदार और गोलाई लिये हुए होते हैं। इसके फूल नीले और बैगनी रंगके होते हैं। इसके फल खरदरे होते हैं और जब ये पक जाते हैं तब इनके दो पडदे खुल जाते हैं। यह वनस्पति बरसातके दिनोंमें बहुत पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ें पौष्टिक, उत्तेजक और रक्तशोधक होती हैं। इसके बीज शीतल और स्नेहन होते हैं। इसकी जडें अपने रक्तशोधक गुणोंकी वजहसे सार्सापरिला या अनन्त मूलकी जगहपर उपयोगमें ली जाती है। इसके बीज काफीकी जगह उपयोगमें लिये जाते हैं।

इस औषधिका पौधा दुग्धवर्द्धक होता है। इसे घासकी जगह भैंसको खिलानेसे भैंसका दूध बढता है। घीमें इसका शाग बनाकर स्त्रियोंको खिलानेसे स्त्रियोंके स्तनोंमें भी दूध बढता है।

ममीरा

नामः—

संस्कृत—मिश्मी तिक्त, महातिक्त, हेमतन्तु। हिन्दी—ममीरा, ममीरन, मिश्मीतीता। सिंध—महमीरा। बम्बई—ममीरान। आसाम—लीला, मिश्मीतीता। इंग्लिश—Coptis, Cold Thread। लेटिन—Coptis Teeta (कोप्टिस तीता)।

वर्णन—यह वनस्पति आसामके उत्तरी और पूर्वी पर्वतोंमें पैदा होती है। इसकी नर और मादा दो जातियाँ होती हैं। नर जातिको ममीरा और मादा को ममीरी कहते है। ममीरेके पौधे छोटे, बिना डण्डी के, बहु वर्षायु और बहुत जड़ों वाले होते हैं। इसकी जडें गहरे सुनहरे रग की, कठिन रेशे वाली और स्वाद में कड़वी होती है। हर एक जड के ऊपर एक से चार इञ्च लम्बा डखल निकलता है और उसके ऊपर धनियें समान फटी हुई किनारों के तीन स्थलों में विभाजित पत्ते लगते हैं। इसके फूल सफेद रंग के छोटे २ होते हैं। इसके फल छोटी फलियों की तरह होते हैं और उनमें बहुत छोटे २ तिल के समान बीज रहते हैं। आसाम से इसकी जडों के एक से तीन इञ्च तक लम्बे टुकडे करके बाँस की छोटी २ टोकरियों में नीचे की तरफ भेजे जाते हैं। यह वनस्पति बहुत थोडी तादाद में मिलने के कारण इसकी जगह बहुत सी नकली चीजें भी बाजार में बिकती हैं। इस लिये इसको लेते समय पीले रग की और कठिन जड़ों को ढूँढ कर लेना चाहिये।

मादा जाति अर्थात् ममीरी के पौधे ४ से लेकर ८ फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके फूल फीके लाल रंग के अथवा कुछ बैगनी रग के होते हैं। इसकी जडों का रग भी पीला होता है। यह वनस्पति कुमाऊ में पैदा होती है और वहाँ से बाहर निकल कर ममीरे के नाम से बिकती है। मगर यह खयाल रखना चाहिये कि ममीरी के गुण ममीरे के समान नहीं होते।

गुणदोष और प्रभाव—

ममीरा फर्माकोपिया आफ इण्डिया में सम्मत माना गया है। आसाम में और सारे भारतवर्ष में इस वनस्पति की नेत्र रोगों के लिये बहुत प्रशसा सुनने में आती है। बहुत से वैद्यों का यह विश्वास है कि अगर असली ममीरा प्राप्त हो जाय तो नेत्र सम्बन्धी कठिन से कठिन रोग उससे आराम किये जा सकते हैं। मगर इस सम्बन्ध में अभी तक कोई प्रत्यक्ष अनुभव देखने में नहीं आये हैं।

इस वनस्पति की जड में पाया जाने वाला प्रधान तत्व बरबेराइन है। यह इसमें ८-५ प्रतिशत पाया जाता है। यह दारू हलदी में पाये जाने वाले बरबेराइन के समान ही होता है।

यह वनस्पति एक उत्तम कटु पौष्टिक वस्तु होती है। गंभीर रोगों के पश्चात् शरीर के अन्दर आई हुई अशक्ति को मिटाने के लिये इसको देने से रोगी में बहुत जल्दी शक्ति आ जाती है। आमाशय की शिथिलता और मदाग्नि में इसको देनेसे बहुत लाभ होता है और पाचन शक्ति बढ कर भूख लगने लगती है।

उदर शूल में इसको १० रत्ती की मात्रा में १० काली मिरच और ५ रत्ती सेंधे निमक के साथ देने से उदर शूल बन्द हो जाता है।

मलेरिया ज्वरमें यह औषधि विशेष प्रभावशाली नहीं होती है। मगर जीर्णज्वरमें यह काफी लाभ पहुँचाती है। इसका तीन माशे कपड़छान चूर्ण आवे पाइण्ट ठण्डे जलमें भिगोकर दो भाग करके सवेरे शाम दिया जाता है। इसके छोटे टुकड़ेको दाँतकी कोचरमें रखनेसे दतशूल मिट जाता है।

बनावटें—

नेत्रशोधक सुर्मा—उत्तम जातिका सुरमा, भीमसेनी कपूर, केशर, बिना बिंधे हुए मोती और कल-खपरिया, ये सब चीजें समान भाग लेकर इन सबके वजनके बराबर ममीरा मिलाकर सात दिनतक सफेद पुन-र्नवाके रसमें खरल करके शीशीमें भर लेना चाहिये। आँखके हर किस्मके रोगमें इस औषधिको आँजनेसे बड़ा लाभ होता है।

ममीरन

नाम—

हिन्दी—ममीरन। लेटिन—Corydalis Ramosa (कोरीडेलिस रेमोसा)।

वर्णन—यह भूत केशीके वर्गकी एक वनस्पति होती है। जो हिमालयमें काश्मीरसे लेकर सिकिम तक बारह हजार फीटसे लेकर पन्द्रह हजार फीटकी ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका पौधा नेत्र रोगोंमें लाभदायक होता है।

मयूर पंख

नाम—

संस्कृत—मयूरपख। हिन्दी—मयूरपख। गुजराती—मोरनापींछा। बगाल—मयूर पुच्छ। अंग्रेजी—Peacock's Feathers.

वर्णन—मोर नामक जानवरके पखको मयूर पख कहते हैं। इस वस्तुको सब लोग जानते हैं।

इसलिये इसके विशेष विवेचन की जरूरत नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक निघंटुओं में मयूर पंखों के सम्बन्ध में कोई विशेष विवेचन देखने में नहीं आया। तत्रविद्या को करनेवाले लोग इन पंखों को काम में लेते हैं और बहुत से वैद्य भी इन पखों को जलाकर इनकी राख को शहद के साथ हिचकी, वमन इत्यादि रोगो को रोकने के लिये देते हैं। मगर इसका कोई शास्त्रीय विवेचन देखने में नहीं आया।

जगलनी जडी बूटी नामक ग्रन्थ में इस वस्तु के सम्बन्ध में बहुत विस्तार के साथ लिखा गया है। इस ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि उनको ये प्रयोग अयोध्या निवासी गोस्वामी सरजूदास महाराज की कृपा से प्राप्त हुए हैं।

सग्रहणी रोग और मयूर पंख—

पच्चीस तोला उत्तम जाति के गेहूँ लेकर उनको आकडे (मदार) के दूध में सात बार तर कर करके छाया में सुखा लेना चाहिये। इसके पश्चात् उन गेहूँ को किसी मिट्टी के बरतन में रखकर आग पर चढा कर जला डालना चाहिये। उसके बाद मयूर पख के ऊपर जो तुर्रे की तरह रेशमी बालों का रगीन भाग रहता है उसको निकाल कर १०० इकट्ठे करना चाहिये। उनको भी जलाकर उनकी राख कर लेना चाहिये। फिर ऊँची जाति के छुहारे (खारक) लेकर उनकी गुठलियाँ निकाल कर गुठली की जगह एक-एक कली लहसुन की और तीन-तीन रत्ती अफीम रखकर उनका मुँह बन्द करके पानी में गलाया हुआ आटा उनके ऊपर लेप कर देना चाहिये और उस आटे के ऊपर कपडमिट्टी करके ऊपले कडों की आग में रख देना चाहिये जब वे सब तप्त होकर लाल हो जायँ तब उनको बाहर निकाल कर ठण्डी करके कपडमिट्टी हटाकर खारक लहसुन और अफीम को साथ पीसकर चूर्ण कर लेना चाहिये। फिर इस चूर्ण में वे जलाये हुए गेहूँ और मयूरपख की राख मिलाकर खरल करके एक बोतल में भर लेना चाहिये। प्रतिदिन सबेरे शाम इस चूर्ण को डेढमाशे की मात्रा में ठण्डे पानी के साथ लेने से और पथ्य में सिर्फ दूध पीने से कुछ समय में सग्रहणी और अतिसार के रोग नष्ट हो जाते हैं।

मयूर पखों के अदर ताँबा रहता है और वह ताँबा खदान से निकलनेवाले तावे की अपेक्षा बहुत सौम्य होता है। इसलिये सग्रहणी, अतिसार, गुल्म तथा दूसरे उदर रोगों की जीर्णावस्था में जहाँ दूसरा ताँबा बहुत उग्र सावित होता है वहाँ उपरोक्त प्रयोग लाभदायक सिद्ध होता है।

मयूर पंख और दमे का रोग—

रस सिंदूर एक भाग, शुद्ध गधक एक भाग, सेही (सेंडी) नामक जानवर के काटे की राख एक भाग, मयूरपख की राख १ भाग और काली कसौंदी के बीजों का चूर्ण दो भाग। इन सब चीजों को पुराने घी के साथ खरल करके चार-चार रत्ती की गोलियाँ बना लेनी चाहिये। इनमें से सबेरे शाम

एक-एक गोली गरम पानी के साथ लेने से कुछ दिनों में दमे का रोग दूर हो जाता है। यह बताना निरर्थक है कि तांबा श्वास के ऊपर बहुत लाभदायक होता है और मयूरपख में भी तांबा रहता है। मगर खनिज तांबे की भस्म अगर पूरी सावधानी से न बनाई गई हो अथवा उसके सेवन के साथ उचित पथ्य का पालन न किया गया हो तो वह लाभ के बदले हानि अधिक पहुँचाती हैं। मगर मयूरपख में रहनेवाले तांबे से किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होता। इसलिये उपरोक्त प्रयोग श्वास में विशेष लाभदायक होता है।

मयूर की हगार और बवासीर—

मयूर की हगार १० तोला और कबूतर की हगार १० तोला। इन दोनों को एक लोहे की कढाई में डालकर लोहे के दस्ते से एक पहर तक घोंटना चाहिये। फिर उसमें नींबू का रस डालकर आठ दिन तक छाया में पडी रखना चाहिये। आठ दिन के पश्चात् उसमें चार तोला नागरमोथा, तीन माशे केशर, एक तोला इन्द्रायन की जड, दो तोला अमरबेल, चार तोला अपामार्ग के सूखे पत्ते, ४ तोला गोरखमुंडी की जडों का चूर्ण। इन सब चीजों को उस कढाई में डालकर अच्छी तरह मिलाना चाहिये। और फिर सब औषधि को खरल में डालकर चार दिन तक खूब खरल करना चाहिये। उसके बाद इसकी बडी-बडी गोलियाँ बनाकर छाया में सुखाकर बोतल में भर लेना चाहिये। इस गोली को प्रतिदिन सबेरे शाम पानी में घिसकर बवासीर के मस्सों पर लगाने से एक महीने में चाहे जैसे बवासीर मुर्झा कर गिर जाते हैं।

जगली जडी बूटी के लेखक लिखते हैं कि यह प्रयोग हमको काशी के मधुसूदन सरस्वती नामक एक महात्मा से मिला है उन महात्मा का कहना था कि इस औषधि को खूनी तथा बादी बवासीर के सैकडों रोगियों पर हमने अजमाया है और यह कभी असफल नहीं सिद्ध हुई।

मयूर पख और नारू का रोग—

मयूरपख को कूटकर उनका बारीक चूर्ण कर लेना चाहिये फिर उस चूर्ण में गुड समान भाग मिलाकर तीन-तीन रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से एक से लेकर दो तक गोली हर छः घंटे के अन्तर से देने से नारू का कृमि मरकर सूख जाता है और नारू का रोग नष्ट हो जाता है।

मयूर पख और बिच्छू का विष—

मयूरपख का चूर्ण और तमाखू को समान भाग लेकर चिलम में रखकर तमाखू की तरह पीने से बिच्छू का विष उतर जाता है। (जगली जड़ी बूटी)

मल मूत्र

वर्णन—अनेक प्रकार के पशुओं के मल और मूत्र औषधि प्रयोग में अनेक प्रकार से काम में आते हैं। उनका संक्षिप्त विवेचन यहाँ दिया जाता है।

गाय का मूत्र और गोबर—आयुर्वेदिक मत से गौमूत्र तीक्ष्ण, गरम, खारी, कसैला, बुद्धिवर्धक, कफ और वात को नष्ट करनेवाला, रक्तपित्त को शान्त करनेवाला तथा गुल्म और उन्माद दोष को नष्ट करनेवाला होता है। यह किलास, खुजली, शूल, मुख रोग, नेत्र रोग, आमवात, गुदा रोग, मूत्रावरोध, खाँसी, कुष्ठ, उदर रोग और कृमियों को नष्ट करनेवाला होता है।

गौ मूत्र कसैला, चरपरा, कड़वा, हलका, खारी, गरम, तीक्ष्ण, पाचन, अग्निदीपक, भेदक, पित्त-कारक, बुद्धिवर्द्धक, किंचित् मधुर, सारक, लेखन तथा कफ, वात, कोढ, गुल्म, उदर रोग, पाडु रोग, किलास, शूल. ववासीर, खुजली, श्वास, आम, ज्वर, आनाह, वात, खाँसी, कब्जियत, सूजन, मुखरोग, नेत्ररोग, चर्मरोग, स्त्रियों का अतिसार और मूत्रावरोध को दूर करता है।

गौ मूत्र का प्रधान धर्म रेचक और कृमिनाशक होता है और आजकल विशेष रोग कब्जियत और कृमियों से ही पैदा होते हैं। इसलिये विषम ज्वर, खाज-खुजली, फोड़े-फुन्सी, उदर-शूल, कामला, सूजन इत्यादि रोगों में विधिपूर्वक इसका प्रयोग करने से वड़ा लाभ होता है।

पुरानी कब्जियत को दूर करने के लिये कई वैद्य उग्र विरेचक औषधियों का प्रयोग करते हैं। मगर ऐसा करने से आँतें बहुत निर्बल हो जाती हैं और उनकी मल-त्याग करने की शक्ति हमेशा के लिये कमजोर हो जाती है। जिससे कब्जियत मिटने के बदले और बढ़ जाती है। ऐसी औषधियों के बदले गौ मूत्र का अगर उचित मात्रा में विधिपूर्वक उपयोग किया जाय तो मनुष्य की आँतें सतेज होकर कब्जियत को हमेशा के लिये नष्ट कर देती है।

जलोदर के रोग पर भी गौ-मूत्र का विधिपूर्वक प्रयोग करने से बहुत लाभ होता है। महर्षि वाग्भट्ट का कथन है कि वकरी की मेंगनी को जलाकर उसकी राख में से क्षारविधि से क्षार निकाल कर उस क्षार में चौगुना गौमूत्र डालकर औटाना चाहिये। जब गाढा हो जाय तब उसमें छोटी पीपर, पीपलामूल, सोठ, सेंधा नमक, संचर नमक, बीड नमक, वडागरा नमक, समुद्री नमक, दंती की जड़, निसोत, हरड, बहेडा, आँवला, तालमखाने की जड, सत्यानाशी की जड, सज्जीखार, बच और इन्द्र जौ। इन सब चीजों को एक-एक तोला लेकर उनका चूर्ण करके उसे गौ मूत्र में डालकर वेर की गुठली के बराबर गोली बना लेना चाहिये। इन गोलियो को कॉजी के साथ नियम पूर्वक सेवन करने से जलोदर और सूजन में बहुत लाभ होता है।

पागलपन और कामले के रोग मे गौमूत्र, गाय के गोवर का रस, दूध, ताजा दही और घी ये सब चीजें समान भाग लेकर हलकी आँच पर औटाना चाहिये। जब सब चीजें जलकर घी मात्र शेष रह जाय

यकृत की खराबी से होनेवाली सूजन में भैंस का मूत्र पिलाने से और साथ में मकोय के फलों का रस देने से सूजन में बहुत लाभ होता है।

खाज-खुजली इत्यादि चर्म रोगों में शरीर पर भैंस का गोबर मसल कर धूप में बैठने से खुजली मिट जाती है।

मनुष्य का मूत्र—आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से स्त्री का मूत्र खारा, चरपरा, मधुर, हलका, नेत्र रोगों को नष्ट करनेवाला. बलकारक और दीपन होता है। मनुष्य का मूत्र—विषनाशक और विषूचिका रोग को नष्ट करनेवाला होता है।

बिच्छू के विष को दूर करने के लिये स्त्री अथवा बालक का ताजा पेशाब काटी हुई जगह पर खूब मालिश करने से १० मिनिट मे जहर का जोर कम होने लग जाता है और आधे घटे में वह बिलकुल नष्ट हो जाता है। उसके बाद डक के ऊपर उसी पेशाब में रूई का फोहा भिगोकर बाँध देने से डंक की वेदना भी शान्त हो जाती है। लेकिन इस कार्य के लिये हमेशा तुरत के ताजे पेशाब को ही काम में लेना चाहिये। एक घटे तक पड़ा रहने के बाद मूत्र का यह गुण नष्ट हो जाता है।

बैल का मूत्र सूजन को दूर करनेवाला, कृमिदोष नाशक, अग्नि दीपक और कामला तथा सग्रहणी में लाभदायक होता है। बकरी का मूत्र और गाय का मूत्र पीने में उत्तम होता है। भैंस का मूत्र और घोड़े का मूत्र तेलपाक में हितकारी होता है। हाथी के मूत्र का लेप दाद, खुजली और विसर्प रोग को नष्ट करनेवाला होता है। ऊँट का तथा गधे का मूत्र तेल में और नस्य में उत्तम होता है। ऊँट, गाय, बकरी, भेड, हाथी, घोडा, भैंस और गधे का मूत्र कडवा, तीक्ष्ण, हलका, गरम, नमकीन, पित्तकारक, भेदक, रूखा, हृदय को हितकारी, रुचिकारक, कृमिनाशक, भूख बढानेवाला, कुष्ट और मेद को नष्ट करनेवाला तथा गुल्म, आनाह, बवासीर, शूल, वात, कफ, विष, सूजन, पाडु और उदर रोग को दूर करता है।

सब प्रकार के मूत्रों में गौ मूत्र श्रेष्ठ होता है। इसलिये जहाँ कहीं खाली मूत्र शब्द आवे वहा पर गौ मूत्र समझना चाहिये। यह गोमूत्र प्लीहा, उदर रोग, श्वास, खासी, सूजन, मलावरोध, शूल, गुल्म, आफरा, कामला और पांडुरोग में बहुत लाभदायक होता है।

पीने में गौ मूत्र, सूघने में ऊँट का मूत्र, तेल योग में गधे का मूत्र, वस्तिकर्म में घोड़े और भैंस का मूत्र तथा दाद, खुजली औरर विसर्प के लेप में हाथी का मूत्र लेना चाहिये।

रोझ के लींडे—रोझ यह एक जगली प्राणी होता है जो घोडे की तरह होता है। इसकी लीद भी घोडे की लीद की तरह होती है। यद्यपि इसकी लीद का गुणधर्म आयुर्वेदिक ग्रथों में नहीं मिलता पर जगलनी जडी बूटी के लेखक ने अपनी पुस्तक में इस वस्तु के एक अद्भुत गुण का विवेचन किया है। जो इस प्रकार है:—

बहुत सी स्त्रियों को उपदंश की गर्मी की वजह से गर्भ नहीं रहता। अगर रहता है तो थोड़े ही महीनों में गर्भपात हो जाता है अथवा बालक पैदा होकर मर जाता है। ऐसी स्त्रियों में से जिनको गर्भ न रहता

हो उनको रोझ के हरे अथवा सूखे तीन या चार लींडे लेकर पाव भर पानी में भिगोकर दूसरे दिन उसी पानी में उन लींडों को पीसकर फिर उस पानी को कपड़े में छानकर शक्कर मिलाकर पिलाना चाहिये और खट्टी, खारी तथा तीखी चीजों का त्याग करवा देना चाहिये। तीन महीने में उनके शरीर में से गर्मी का असर दूर होकर उनका गर्भाशय गर्भ धारण के योग्य हो जाता है।

जिन स्त्रियों को गर्भ रहने के पश्चात् अधूरी हालत में गर्भ स्राव होता है उनको गर्भ रहने का विश्वास होने के पश्चात् हर महीने के प्रारम्भ में तीन दिन तक ऊपर बताई हुई रीति से रोझ के लींडों को पीना चाहिये। यह क्रम नौवें महीने तक चालू रखना चाहिये। चौथा महीना शुरू होने पर प्रति दिन सवेरे एक तोले जीरे का चूर्ण उतनी ही शक्कर और घी के साथ चटाना चाहिये। जीरे का यह सेवन चौथे मास के प्रारम्भ से लेकर पाँचवें मास के आखिर तक प्रतिदिन चालू रखना चाहिये।

जंगलनी जड़ी बूटी के लेखक लिखते हैं कि हमने उपरोक्त रोग से ग्रसित करीब २० स्त्रियों के ऊपर इस प्रयोग को किया और उसका परिणाम सन्तोषजनक मालूम हुआ। इसलिये इस प्रयोग का उपयोग करने की हम सब जरूरत मदों से सिफारिश करते हैं।

मराड़ा

नाम.—

हिन्दी-मराडा, चमड़ा, चमकत, गुरशगल, मार्टन, मोथा, शामरू, सौंदर इत्यादि। पंजाब,—चमड़ा, दूब शबर, लेवर, मराद्दा, पिरही। फारसी-मुदकजमी। कुमाउ—चमलाई। नेपाल—सरकिनु। अरबी-सद-रूफी। लेटिन—Desmodium Tiliaefolium (डेसमोडियम टिलाइ फोलियम)

वर्णन—यह शालपर्णी के वर्ग की एक वनस्पति होती है। यह झाड़ीनुमा होती है। इसका पौधा ३ फीट से लेकर ६।७ फीट तक ऊँचा होता है। इसकी छाल साफ, चिकनी और मुलायम होती है। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। यह वनस्पति हिमालय के अन्दर उत्तरी पंजाब से लेकर टेनाय तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से इसकी जड़ कड़वी, गरम और खराब स्वाद वाली होती है। यह छाती और मस्तिष्क के लिये एक पौष्टिक वस्तु है। अनैच्छिक वीर्यस्राव में यह उपयोगी होती है। जबान का हकलाना, जलोदर की सूजन, बवासीर, पीनसरोग, नेत्रविकार, कटिवात और नष्टार्तव में यह लाभ पहुँचाती है।

इसकी जड़ मूत्रल होती है और यह पित्त सम्बन्धी शिकायतों में उपयोग में ली जाती है।

मयूरशिखा (१)

नाम:—

संस्कृत—मयूरशिखा। कच्छ-मयूरशिखा। पंजाब—गुनकिरी। लेटिन-Adiantum Caudatum (एडिएटम कोडेटम)।

वर्णन—यह हंसराज के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसकी उत्पत्ति प्रायः सारे भारतवर्ष में होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते खाँसी और ज्वर को दूर करने के उपयोग में लिये जाते हैं। मधु प्रमेह में भी इनके सेवन से लाभ पहुँचता है। चर्म रोगों में इनको पीस कर लगाने से लाभ होता।

मयूर शिखा (२)

नाम:—

संस्कृत—वर्हिचूडा, सहस्रा, शिखिनि, केकिशिखा, मयूरशिखा इत्यादि। हिन्दी-मोरशिखा, मोरपखी, लाल मुर्गा, पीला मुर्गा। बंगाल—लाल मुर्गा, हलदी मुर्गा। गुजराती। मोरशिखा। मराठी—मयूर शिखा। काश्मीर—मावेल। उर्दू—अलसाना, अस्नाना। इंग्लिश—Cock's Comle लेटिन— Celosia Cristata (सेलोसिया क्रिस्टेटा)।

वर्णन—यह एक क्षुप जाति की छोटी वनस्पति होती है। उत्तरी भारतमें और राजपूताने में यह विशेष तौरसे पैदा होती है। इसका पौधा करीब ३ फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते लम्बे और पतले होते हैं। फूल सफेद, पीले और गुलाबी होते हैं। इसके बीज उदी रंग के होते हैं। इसके कोमल पत्तों की तरकारी बना कर खाई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव

आयुर्वेद के मतसे इसका पौधा शीतल, कसैला, खट्टा, हलका तथा पित्त, कफ और अतिसार को दूर करनेवाला होता है।

मोर शिखा स्वादिष्ट, मूत्रकृच्छ्र नाशक, ग्रहों के दोषों को शान्त करनेवाली और वशीकरण के काम में उपयोगी होती है। साँप के काटने पर भी इसका उपयोग किया जाता है। प्रसूति कष्ट को दूर करने में भी यह उपयोगी होती है।

इसके फूल संकोचक होते हैं। प्रवाहिका रोग में इनको देने से लाभ होता है। मासिक धर्म की अधिकता को भी दूर करने के लिये इनका उपयोग होता है। इसके बीज शान्तिदायक होते हैं। ये

खाँसी, अतिसार, और मूत्र कष्ट को दूर करते हैं। इसके चूर्ण को एक तोले की मात्रा में मिश्री और गरम दूध के साथ देने से मनुष्य की काम शक्ति बढ़ती है। चीन में इसके बीज अत्यधिक रजः श्राव को कम करने के लिए उपयोगमें लिये जाते हैं। इनका लोशन बना कर आँखों के दुखनेपर टपकाते हैं।

उपयोग—

अतिसार—मोर शिखा के फूलों का क्वाथ पिलाने से अतिसार मिटता है।

मासिकधर्म की अधिकता—इनका शरबत बना कर पिलाने से मासिक धर्म में, प्रमाण से अधिक रुधिर का निकलना बंद हो जाता है।

मूत्रकष्ट—इसके बीजों को घोट, छान कर पिलाने से पेशाब करने के समय की वेदना मिट जाती है।

खाँसी—इसके बीजों के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से खाँसी मिटती है।

पथरी—मोर शिखा की जड़ को चाँवलों के धोवन के साथ पीने से और पथ्य में सिर्फ दूधका आहार लेनेसे कुछ दिनों में पथरी गल जाती है।

मंडा

नामः—

बम्बई—मंडा। तेलगू—पेंडुम्पा। मलयालम—गार्डोंग। लेटिन—Dioscorea Triphylla (डिसकोरिया ट्रिफिल्ला)।

वर्णन—यह आलू के वर्ग की एक वनस्पति होती है। यह सारे भारतवर्ष और मलाया में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी गठानें अपने नशीले तत्व और वमनकारक गुण के कारण मलाया में बहुत प्रसिद्ध है।

जावा में इसकी गठानों का रस औटाकर तीर का विष दूर करने के उपयोग में लिया जाता है।

मलंकारा

नाम—

मलयालम—मलक्रा, कट्टकारा। तामील—कट्टुकेराइ। कनाडी—बिक्की। लेटिन—Elaeocarpus oblongus (इलेओकार्पस आबलांगस)।

वर्णन—यह रुद्राक्ष के वर्ग का एक वृक्ष होता है। इसके पत्ते तीन से लेकर चार इच तक लबे और डेढ़, से लेकर दो इच तक चौड़े होते हैं। इसके फूल लाल रंग के होते हैं और इसके फल रुद्राक्ष की तरह होते हैं। यह वनस्पति पश्चिमी घाट और मलाया में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल एक वमनकारक पदार्थ की तरह उपयोग में लिया जाता है। यह सधिवात, निमोनिया, र वृण, बवासीर, गलितकुष्ठ और जलोदर में भी लाभदायक माना जाता है।

मधु गोड़ीआमड़ो

नामः—

उडिया—मधु गोडीआमडो। कनाडी—भूताली। इंग्लिश—Laka wood। लेटिन—Acronychia Laurifolia (एक्रोनीचिया लोरिफोलिया)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का वृक्ष होता है। इसके पत्ते गहरे हरे रंग के और फूल कुछ हरापन लिये हुए सफेद होते है। यह वनस्पति कोकण, पश्चिमी घाट और सिक्किम में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों की चेचक की बीमारी के रोगी के पास धूनी दी जाती है। इसकी छाल सुगधित और पौष्टिक होती है और वह गीली खुजली वृण और घावों पर लगाने के लिये उपयोग में ली जाती है।

मलय

नामः—

सस्कृत—मलय। वंगाल—पिरग। मराठी—तिरय। फारसी—तिरीर। उर्दू—पिरग। लेटिन—Trigonella Corniculata (ट्रिगोनेला कोर्निक्युलेटा)

वर्णन—इसका क्षुप मेथी के क्षुप की तरह होता है। बगाल और कर्नाटक में तरकारी के लिये इस वनस्पति की खेती की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका कड़वा फल संकोचक और रक्तस्रावरोधक होता है। सूजन, चोट और रगड़ पर इसको लेप करने के काम में लेते हैं।

मरुआवेल

नामः—

देहरादून—मरुआवेल। अल्मोड़ा—मरखिला। हिमालय प्रदेश—मुरकुला। शिमला—कुरग। लेटिन—Marsdenia Roylei (मार्सडेनिया रायली)।

वर्णन—यह एक पराश्रयी लता होती है। इसकी छाल पीली, भूरी, ऊबड़ खाबड़ और जगह-जगह चिरी हुई होती है। इसके पत्ते चार से लेकर सात इंच तक लम्बे और ढाई से लेकर पाँच इञ्च तक चौड़े होते हैं। इसकी डालियों में दूधिया रस भरा हुआ रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके कच्चे फलों का चूर्ण शीतल औषधि की तरह काम में लिया जाता है। इनका काढ़ा सुजाक रोग में लाभ पहुँचाता है।

मरसा

नामः—

संस्कृत—मारिश। हिन्दी—मरसा, लालनतिया। मारवाड़—लालसाग। मराठी—चौली, रानमाठ। मद्रास—किराइ। बंबई—मोटीचोली। गुजराती—अड़बाउडाँमो। उर्दू—लालसाग। लेटिन—Amaranthus Gangeticus (एमेरेन्थस गंगेटिकस)।

वर्णन—यह चौलाई के वर्ग की एक तरकारी होती है। इसके पत्तों की शाग बनाकर खाई जाती है। मारवाड़ में यह लालसाग के नाम से मशहूर है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानीमत—यूनानीमत से इसके पत्ते, मीठे, कफनिस्सारक, घावपूरक, ज्वरनाशक, ऋतुस्राव नियामक, वामक और पीब को रोकनेवाले होते हैं। ये पित्तविकार को शमन करते हैं। दंतशूल में लाभदायक हैं। शरीर की दाह को शान्त करते हैं। यकृत के विकार और सूजन में मुफीद होते हैं। इसके काढे से कुल्ले करने से मुँह के छाले और मुखशोथ मिटता है।

इस वनस्पति का पौधा संकोचक होता है। प्रवाहिका, अतिसार, आँतों से होनेवाले रक्तस्राव और अत्यधिक मासिकधर्म में इस वनस्पति को देने से लाभ होता है।

गले और मुँह के छालों में इसके काढ़े से कुल्ले करने से लाभ होता है।

मजनूं

नामः—

हिन्दी—मजनूं। पंजाब—वेद, वेसू, बिदाइ, कतीरा, लैला, मजनू, वाला इत्यादि। नेपाल—तिस्सी। इंग्लिश—Weeping willow। लेटिन—Salix Babylonica (सेलिक्स बेबीलोनिका)। काश्मीर—गिडर, विसा।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। हिमालय में और उत्तरी हिन्दुस्तान में यह बहुत पैदा होता है। इसकी खेती भी की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते और इसकी छाल पौष्टिक और संकोचक होती है। पार्यायिक ज्वर और अविराम ज्वर में इसका विशेष तौर से उपयोग होता है। इसकी छाल कृमिनाशक भी होती है।

मदनागम सुवारी

नामः—

तामील—मदनागम सुवारी। इंग्लिश—Japan Fern Palm (जापान फेर्न पाम)। लेटिन—Cycus Revoluta (सायकस रेव्होल्यूटा)।

वर्णन—इस वनस्पति की भारतवर्ष के बगीचों में खेती की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका पौधा कफ निस्सारक और पौष्टिक होता है।

मरवर

नाम—

मलाबार—मरवर। लेटिन—Dendrobium ovatum (डेन्ड्रोबियम ओव्हेटम)।

वर्णन—यह वनस्पति पश्चिमी घाट और मद्रास प्रेसिडेन्सी में विशेष रूप से पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पौधे का पंचाग सब प्रकारके उदर शूल को अच्छा करता है। यह पित्त को और आँतों को उत्तेजना देकर मृदुविरेचन का काम करता है।

मरुल

नाम—

संस्कृत-मदय। हिन्दी—मरुल। बम्बई—धनुषनाग, मोरवा, मुर्वा। बंगाल—मोरधनक, मुर्वी, मुरहरी। दक्षिण—मुरहरी। मराठी—धनुषनाग, नागफन। तामील—मरुल। तेलगू—चागा। इंग्लिश—Bow—String hemp (बोस्ट्रिंगहेंप) लेटिन—Sansevieria Roxburghiana। (सेन्सेवेरिया राक्सबर्घियाना)।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का क्षुप होता है। इसके पत्ते एक से चार फुट तक लंबे होते हैं। इनका रंग हरा होता है और बीच में सफेद धारियाँ होती हैं। इसकी जड़ बहुत मोटी होती है। ताजी जड़ में सोंठ के समान गंध आती है। इसके पत्तों से रस्सियाँ बनाई जाती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

पुरानी और हल्की खाँसी में इसकी जड़ के रस को चाय के छोटे चम्मच की मात्रा में थोड़ी शहद मिलाकर दिन में दो बार देने से बहुत लाभ होता है। बच्चों के गले में जमे हुए कफ को छुड़ाने के लिये भी इसके पत्तों का रस दिया जाता है।

मधुक

नाम—

संस्कृत—मधुक। बंगाल—शिंग। तामील—इरब्बू। लेटिन—Cynometra Mimosoides (सिनोमेट्रा मिमोसाइडस)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का झाडीनुमा वृक्ष होता है जो समुद्र के किनारों पर पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

रीड के मतानुसार इसकी जड विरेचक होती है। इसके पत्तों को गाय के दूध में उबाल कर उनका लोशन बनाकर उसमें शहद मिलाकर गीली खुजली, गलित कुष्ट और दूसरे चर्म रोगों पर लगाया जाता है। इसके बीजों से तयार किया हुआ तेल भी सब प्रकार के चर्मरोगों में लाभदायक माना जाता है।

मरुकोभुन्तु

नामः—

मलयालय—मरुकोभुन्तु। लेटिन—Exacum lawii (एक्सेकम लावी)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का झाडीनुमा क्षुप होता है। यह पश्चिमीघाट में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पौधे का चूर्ण गुर्दे की खराबी को दूर करने के लिये दिया जाता है। नेत्र रोगों में इसके पौधे को तेल में उबाल कर उस तेल को लगाने से लाभ होता है।

मरचुला (कामिनि वृक्ष)

नामः—

हिन्दी—मरचुला, बिबसार, जुती। बंगाल—कामिनी। बम्बई—चुलाजुति, मचुलाजुति, कुंती। कुमाऊँ मरचोब। मराठी—कुन्ती, मरचुलाजुति। नेपाल—सिमाली। उत्तर पश्चिमी प्रान्त—मरचुला। तामील—कोंजी, वेंगाराइ। तेलगू—नेनारेनू। उडिया—बीरीजुग्गी। लेटिन—Murraya Paniculata (मुरैया पेनीक्यूलेटा)।

वर्णन—यह एक हमेशा हरा रहने वाला झाडीनुमा पौधा होता है। इसकी छाल मुलायम, चिकनी, और कुछ पीलापन लिये हुए सफेद होती है। इसके फूल सफेद रग के अत्यन्त खुशबूदार होते हैं। यह एक सुगन्धित पुष्पों वाली वनस्पति हैं।

गुणदोष और प्रभाव—मुडा जाति के लोग इस वृक्ष की अन्तर छाल को सर्प विष को दूर करने के लिये पिलाते हैं और साँप के काटे हुए स्थान पर इसको लगाते भी हैं। शरीर के किसी भी स्थान के दर्द को दूर करने के लिये इसकी जड की छाल को खिलाते हैं और दर्द के स्थान पर इसकी मालिश

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से इसकी जड़ और इसकी छाल कफनिस्सारक, शान्तिदायक, आँतों के लिये सकोचक, आँतों के दर्द को कम करनेवाली और गीली खुजली में लाभदायक होती हैं। खुजली में इसको लगाने के काम में लेते हैं।

इसकी जड का रस उदर रोगों के ऊपर एक बहुत लाभदायक वस्तु मानी जाती है। कोकण में इसको मधुमेह और सर्प विष के ऊपर उपयोग में लेते हैं। पेचिश और प्रवाहिका रोग में भी इसकी छाल बहुत लाभदायक मानी जाती है।

बच्चों के कानों में एक प्रकार का फोडा होता है। उसमें इसकी फलियों को ठडे पानी में पीसकर लगाने से लाभ होता है। कॉलिक उदर शूल में भी इसकी फलियों का चूर्ण खिलाया जाता है। इसकी फलियाँ शातिदायक, संकोचक, आँतो के दर्द को रोकनेवाली और बच्चों के कोष्टवायु को नष्ट करनेवाली होती हैं।

उपयोग—

कान का बहना—मरोड फली के चूर्ण को अरडी के तेल के साथ मिलाकर कान में डालने से कान का बहना बद हो जाता है।

बच्चों का उदरशूल—मरोड फली का क्वाथ करके बच्चों को पिलाने से बच्चों का उदरशूल मिटता है।

पेट के कृमि—बायबिडंग के साथ इसका क्वाथ करके पिलाने से पेट के कीड़े मर जाते हैं।

आफरा—काले निमक के साथ मरोड़ फली के चूर्ण की फक्की देने से शूल और आफरा मिटता है।

अतिसार—अतीस और इन्द्रजौ के साथ मरोड फली का चूर्ण देने से अतिसार मिटता है।

ज्वर—चिरायते के साथ इसका क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वर छूटता है।

मूत्रातिसार—इसको बग भस्म के साथ देने से मूत्रातिसार मिटता है।

रक्तातिसार—१॥ तोला मरोड फली को पानी में भिगोकर मल छानकर पिलाने से कफ और खून के दस्त बद हो जाते हैं।

मात्रा—इसकी मात्रा पौने चार माशे से साढे सात माशे तक होती है जो दिन में ३ या ४ वक्त दी जाती है।

मरवा

नाम:—

संस्कृत—मरुत्तक, मरुवक, मरुत, मरु, फणी, फणिज्जक, खरपत्र, बहुवीर्य, इत्यादि। हिन्दी—मरुआ, मरवा। मराठी—मरवा। गुजराती—मरवा। बगाल—मरुया, मरू। तामील—मरु। तेलगू—रुद्रजाढ। कुमाऊँ—वनतुलसी। अंग्रेजी—Sweat marjoram। लेटिन—Origanum Majorana (ओरिजेनम मेजोरेना)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति की अत्यंत सुगन्धित वनस्पति होती है। इसकी ऊँचाई एक फुट से लेकर ढाई फुट तक होती है। इसके तुलसी के समान मजरिया निकलती हैं। इसकी खुशबू भी तुलसी के समान ही उग्र होती है। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मत से मरवे का पौधा तीक्ष्ण, कडुआ, गरम, अग्निदीपक, कृमिनाशक, भूख बढानेवाला हृदय रोग में लाभदायक, रक्त को शुद्ध करनेवाला, हलका पित्तकारक, कफ वात नाशक, सुगन्धित तथा ज्वर, विष, कुष्ठ, खुजली, दमा, सूजन, कब्जियत और त्वचा के विकारों को दूर करनेवाला होता है।

मरवा दो प्रकार का होता है। सफेद और काला, इसमें सफेद मरवा औषधि प्रयोग के काम में लिया जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से मरवा शान्तिदायक, कफ निस्सारक, यकृत को शक्ति देनेवाला, सूजन को दूर करनेवाला, मस्तिष्क और आँतों के लिये लाभदायक तथा वमन और वेदना को रोकनेवाला होता है। यह शराब की बेहोशी को दूर करता है।

इसके पत्ते और बीज सकोचक माने जाते हैं और कालिक उदर शूलमें इनका प्रयोग किया जाता है। इसके पत्तोंसे प्राप्त किया हुआ उड़न शील तेल तीव्र प्रवाहिका (Diarrhoea) रोग में सेंक करने के काम में लिया जाता है।

युरोपमें इसके ताजा पौधे से शीत निर्यास तयार किया जाता है और यह मज्जातंतुओं की खराबी से होने वाले मस्तक शूल को रोकने के लिये दिया जाता है। इस पौधे से वेदनायुक्त सूजन और सधिवात पर सेक किया जाता है। इसमें पाये जानेवाले उडनशील तेलकी मालिश से मोच और रगड में आश्चर्यजनक फायदा होता है।

उदर शूल में मरवा, तिलवन के पत्तों के साथ दिया जाता है। विरेचन के लिए इसकी फाँट बना कर देते हैं। सरदी में इसकी फाँट देने से पसीना छूटता है और शरीर में उत्तेजना पैदा होती है। सरदी की वजह से अगर मासिक धर्म बन्द हो जाय तो इसकी फाँट बना कर देने से चालू हो जाता है।

मरवेका स्वेदजनन और आर्तव प्रवर्त्तक धर्म विशेष महत्त्वपूर्ण है।

मरवे का स्वरस अथवा उसकी राख व्रण रोपक और वेदना नाशक होती है। इसलिये पुराने व्रणों पर इसका अच्छा उपयोग होता है ।

मसूर

नाम:—

संस्कृत—मसूर, मसूरक, मसूरा, मसूरिका, कल्याण बीज, मंगल्य इत्यादि । हिन्दी—मसूर । बगाल—मसूरी । गुजराती--मसूर । मराठी—मसूरी । पंजाब—चचिंग, मानहरी, मसूर, मोही, मोहरी । तामील—मिस्सूर परपर। तेलगू–मिसूरपप्पू। अरबी–अदास। लैटिन—Ervum Lens, Lens Esculenta (इरवमलेन्स, लेंस एसक्यूलेंटा)

वर्णन—मसूर की दाल प्राय' सारे भारत वर्ष में खाने के काम में ली जाती है। इसको सब कोई जानते हैं। इसलिये इसके विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदके मत से मसूर हलकी, अत्यन्त रूखी, आंतों के लिए सकोचक, मूत्रल, भूख बढानेवाली, कफ और पित्त को नष्ट करनेवाली, वात व्याधियों को पैदा करनेवाली, मलरोधक, पथरी और मूत्रकृच्छ्र को दूर करनेवाली और अर्बुद, चर्मरोग और अतिसारमें लाभ दायक होती है।

मसूर का लेप वर्ण को सुदर करनेवाला और त्वचा के रोगों को दूर करनेवाला होता है। इसके पत्तों का शाग कसेला, हलका और कड़वा होता है। मसूर रूखी, मलवर्द्धक, शीतल, वात कारक, आफरा पैदा करनेवाली, रक्त पित्त और कफ को नष्ट करनेवाली, हलकी, कसेली, मधुर और मेद नाशक होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके बीज कठिनाईसे हजम होनेवाले पौष्टिक, मृदु विरेचक, खून को बढाने वाले, छाती की बीमारियों को दूर करनेवाले, नेत्र रोगोंमें लाभदायक और ब्रोंकाइटीज तथा स्तनों की सूजन को दूर करनेवाले होते हैं।

मसूर की कब्जियत और आंतों की विकृति दूर करने की औषधि के रूप में काफी प्रशंसा है। इसके बीज लुआबदार और मृदु विरेचक होते हैं। इसके छिलके सकोचक और रक्त श्राव रोधक होते हैं। जर्मनी के बहुत से हिस्सों में इसका काढा चेचक की बीमारी में फुन्सियों को शान्त करने के लिए दिया जाता है। और इसकी दाल लेप अथवा पुल्टिसके रूपमें चेचक के व्रणोंको भरने के लिये लगाई जाती है।

रसरत्नाकरके मतानुसार नीम के पत्तों के साथ इसको पीस कर सांप के काटे हुए आदमी को पिलाया जाता है।

मसूर के अन्दर २४ प्रतिशत मांस वर्धक द्रव्य, ५६ प्रतिशत आटा, १ प्रतिशत तेल और २ प्रतिशत राख रहती है।

मलाड़ी

नाम:—

तामील—मलाड़ी, करुमुगाई, सादी। तेलगू—अपूर्व चाम पाकामु। लेटिन—Canangium Odoratum (केनेन्जियम ओडोरेटम)।

वर्णन—यह एक ऊँची जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल मुलायम होती है। इसके पत्ते ५॥ इञ्च लम्बे और २ इञ्च चौड़े होते हैं। इसके फूल पीले रंगके होते हैं। इस वनस्पति की भारत वर्ष में खेती की जाती है।

गुणदोष और प्रभाव—

इसके फूलों से एक प्रकार का खुशबूदार तेल तयार किया जाता है। इसका तेल मस्तक शूल, नेत्राभिष्यंद और संधिवात के ऊपर लगाने के काम में लिया जाता है।

महापान

नाम:—

बम्बई—महापान। गोआ—कालीपदन। लेटिन-Asplenium Parasiticum (एस्प्लेनियम पेरेसिटिकम्)।

वर्णन—यह छोटी जातिकी वनस्पति मद्रासमें बहुत पैदा होती है। इसकी जड़ कुछ कड़वी और तूरी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ ज्वरको नष्ट करनेवाली तथा पाण्डुरोग, पीलिया, तिल्लीकी वृद्धि और मूत्रकी अनियमितता में लाभदायक है। हरड़ और चिरायताके साथ इसका काढा बनाकर देनेसे विशेष लाभ होता है।

मगलिंगा

नामः—

तेलगू—मगलिंगा, गाबा। तामील—चीनान्दुरी, चिंबातइ। बरमा—किनबुन। लेटिन—Desmodium Lasiocarpum (डेसमोडियम लेसिओकारपम्)

वर्णन—यह शालपर्णीके वर्गकी एक वनस्पति होती है। इसकी छोटी झाड़ी होती है, इसके फूल बहुत छोटे छोटे होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

गोल्डकास्टमें इस वनस्पतिकी जड़को काली मिरचीके साथ मिलाकर पानीमें औटाकर पेशाबमें आनेवाले खूनको बन्द करनेके लिये नलीके द्वारा मूत्रेन्द्रियमें पहुँचाते हैं।

महागोटूकोला

नामः—

सिंहाली—महागोटूकोला। लेटिन—Hydrocotyle Javanica (हाइड्रोकोटेल जावानिका)।

वर्णन—यह ब्रम्ह मंडुकीके वर्गकी एक वनस्पति होती है। इसका क्षुपकी ब्रह्म मण्डूकीके क्षुपकी तरह ही होता है। इसके फूल बहुत छोटे छोटे ओर सफेद रगके होते हैं। यह वनस्पति हिमालयमें काश्मीरसे लेकर भूटान तक दो हजारसे लेकर आठ हजार फीटकी ऊँचाई तक होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते बलवर्धक और रक्तशोधक होते हैं। पाचन शक्तिकी खराबीमें, मज्जातन्तुओंकी विकृतिमें और अतिसार में ये उपयोगी होते हैं। ब्रह्म मण्डूकीके न मिलने की हालत में उसके प्रतिनिधिरूप में यह वनस्पति काम में ली जा सकती है।

महाबल

नामः—

मध्यप्रान्त—महाबल। बम्बई—गिदासवा, डिडेसा। नेपाल—बेल्लम्पा। पंजाब—फिशोनी, गोहीनल, कनेरा, कण्टाळु, मुस्केद, निग्गी, फिल्ल, पुदारी, तुलेन्नि। लेटिन—Hamiltonia suaveolens (हेमिलटोनिया सुवेलोन्स)

वर्णन—यह एक छोटी जातिकी झाडी होती है। इसके पत्ते ५ इञ्चसे लेकर ८ इञ्च तक लम्बे और डेढ इञ्च से लेकर साढेतीन इञ्च तक चौड़े होते हैं। इसके फूल सफेद और नीले रगके होते हैं। यह वनस्पति हिमालय, मध्य भारत और पश्चिमी घाटमें पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड का शीत निर्यास किसी अङ्ग के टेढे पड जाने पर (Courbature) दिया जाता है।

मश्नावारो

नाम:—

बलूचिस्तान—मश्नावारो । लेटिन—Statice Cabulica (स्टेटिस केब्यूलिका)।

वर्णन—यह बलूचिस्तानमें पैदा होनेवाली एक वनस्पति है।

गुण दोष और प्रभाव—

बलूचिस्तानके लोग इसको उदरशूलको रोकनेके लिये काममें लेते हैं।

महुआ

नाम —

संस्कृत—मधुक, मधुवृक्ष, डोलाफल, महाद्रुम, गुडपुष्प, इत्यादि। हिन्दी—महुआ, महुला। बगाल—महुला, महवा। बम्बई—महुआ। गुजराती—महुडा। मराठी—मोहडा, मोहो, मोहोवा। फारसी—चकाँ, दरख्ते गुल चकाँ। उर्दू—महुआ। तामील—इलुप्पाइ, मधुगम। तेलगू—मधुकामू। इंग्लिश—Mahua Tree। लेटिन—Bassia Latifolia (बेसिया लेटिफोलिया)।

वर्णन—महुए के वृक्ष बहुत बडे और ऊँचे होते हैं। इसकी छाल ऊबड़खाबड़ और लाल रग की होते हैं। इसके फूल पीलापन लिये हुए सफेद रंग के, मांसल और ठोस होते हैं। इन फूलों में बहुत मादक गध आती है। इसके बीज जिनको महुए की डोली कहते हैं करीब एक इञ्च लम्बे और आधा इञ्च चौडे होते हैं। इन बीजों में से तेल निकलता है और इसके फूलों से शराब तयार की जाती है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मतसे महुएका वृक्ष मधुर, कटु, शीतल, कफ कारक, कामोद्दीपक, कृमि नाशक और पित्त, दाह, व्रण, श्रम और वातको नाश करनेवाला होता है। इसकी छाल व्रण और जखमको

भरनेवाली, रक्तपित्त नाशक और टूटी हुई हड्डीको जोड़नेवाली होती है। इसकी छालका दुधिया रस सकोचक और कफ तथा सधिवातमें लाभ पहुँचानेवाला होता है।

इसके फूल मधुर, शीतल, कामोद्दीपक, हृदयरोगमें लाभ पहुँचानेवाले, स्निग्ध, दाह, पित्तविकार तथा कर्णरोगोंमें लाभदायक होते हैं।

इसके फल, शीतल, पचनेमें भारी, कामोद्दीपक, स्निग्ध, मधुर, पौष्टिक, हृदयको नुकसान पहुँचानेवाले तथा श्वास, खाँसी, क्षतक्षय और वातको दूर करनेवाले होते हैं। इन बीजोंका तेल मीठा और कफ, पित्त ज्वर और दाहको नाश करनेवाला होता है।

यूनानी मत—यूनानीमतसे महुएके फूल मीठे, खराब गंधवाले, कामोद्दीपक, कफनिस्सारक और शाति दायक होते हैं। इसके बीज स्तनोंमें दूध बढाते हैं और इन बीजोंका तेल चमड़ेमें स्निग्धता पैदा करता है।

इसके फूलों में ६० प्रतिशत एक जाति की शकर पाई जाती है जो गुण धर्म में द्राक्ष शर्करा अथवा ग्लूकोजसे मिल्ती जुलती होती है।

इसकी छालका काढा एक सकोचक और पौष्टिक वस्तु की तरह उपयोग में लिया जाता है। कुछ समय पहिले जोडों के दर्द और जोडों की सूजन पर भी इसका उपयोग होता था। इसके पत्तों को पानीमें उबाल करके अनेक प्रकार की बीमारियों में उपयोग में लिया जाता है। ये पत्ते मालिश या लेप के लिए बहुत उपयोगी होते हैं।

इसके फूल शीतल और पौष्टिक होते हैं और ये बहुत से शीतल और शांतिदायक मिश्रणों में मिलाये जाते हैं। इनका काढ़ा खांसीको दूर करने के उपयोग में लिया जाता है।

इसके सूखे फूलों का लेप अडकोष की जलन को शात करनेके लिए किया जाता है।

बवासीरके रोगियों को महुए के फूल घी में तल कर देने से बहुत लाभ होता है। मद्रास के ऐसे वैद्य और डाक्टर जो बवासीर को आराम करने के विशेषज्ञ होते हैं और जिनके यहाँ विशेष रूपसे बवासीर की ही चिकित्सा होती है अपने रोगियों पर इस योगका बहुत प्रयोग करते हैं।

इसके फूलों से सग्रहित किया हुआ शहद नेत्र रोगोंके अन्दर लाभदायक होता है। इसके फलोंको दबा कर निकाला हुआ गाढा तेल पहाडी लोगोंके द्वारा चर्म रोगों की चिकित्सा में बहुत काम में लिया जाता है।

महुए का फूल और किशमिश—यह एक दिलचस्प बात है कि महुए के फूलों और किशमिश के अदर बहुत से तत्वों की समानता पाई जाती है। किशमिश के गुणधर्म और महुए के गुणधर्मों में भी आयुर्वेद के अदर बड़ी समानता बतलाई गई है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार यहाँ पर महुआ शराब बनाने के काम में आता है उसी प्रकार दूसरे देशों में द्राक्ष भी शराब बनाने के काम में आती है।

महुए के फूल भी मधुर, शीतल, पचने में भारी, बृहण, बल और वीर्य को उत्पन्न करनेवाले तथा वात और पित्त को नष्ट करनेवाले माने गये हैं। द्राक्ष भी मधुर, शीतल, पचने में भारी, बृहण, बल

और वीर्य को बढानेवाली, सुस्वादिष्ट और मृदु विरेचक मानी गई है। दोनों द्रव्यों के अन्दर आयुर्वेद में बतलाई हुई समानता का जब हम आधुनिक रसायनशास्त्र की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो हमें उसकी सचाई का सहज आभास मिल जाता है।

विहार सरकार के खाद्य परिक्षक ने मुनक्का द्राक्ष और महुए के अन्दर पाये जानेवाले रासायनिक तत्वोंका तुलनात्मक अध्ययन नीचे लिखे आकडों से प्रकाशित किया था। वह इस प्रकार है:—

	मुनक्का	महुआ (सूखा)	महुआ कच्चा
जलांश	१२'५	१९'३०	७२'३२
प्रोटीन	२'००	५ ००	१ २५
चिकनाई	० २	० १९	०'२९
खनिज	२ ०	२'५३	० ७०
कार्बोज	७७ ३	७०'९५	२४ ७६
रेशे	.	२'०३	०'६२
कैलशियम	० १०	०'११७	०'०२६
फास्फोरस	० ८०	० १२७	०'०३१

उपरोक्त नक्शे को देखने से मालूम होता है कि महुए के सूखे फूलों में मुनक्का की अपेक्षा प्रोटीन, खनिज लवण और रेशे अधिक होते हैं। केलशियम की मात्रा भी इनमें मुनक्का से अधिक होती है। फास्फोरस इसमें मुनक्का की अपेक्षा कुछ कम होता है। इस सब समानता को देखते हुए आयुर्वेद में बतलाई हुई उपरोक्त समानता प्रत्यक्ष हो जाती है। ऐसी स्थिति में द्राक्ष के समान महँगी वस्तु से गुणधर्म में समानता होते हुए भी महुए के समान सुलभ वस्तु का प्रचार जन समाज में क्यों नहीं है। इसका कारण इन फूलों के अदर पाई जानेवाली अग्राह्य गध और इन फूलों का अग्राह्य स्वाद ही मालूम होता है।

उपयोग—

स्नायविक पीडा—महुए का तेल लगाने से अथवा इसका मालिश करने से मस्तक मे होनेवाली स्नायविक पीडा और त्वचा के रोगों में लाभ होता है।

फोडे-फुन्सी—इसकी खली को पानी में पीसकर लेप करने से फोडे-फुन्सी में लाभ होता है।

बादी की पीडा—इसके पत्तों को पीसकर मर्दन करने से वादी की पीडा मिटती है।

गठिया—महुए की छाल को पीसकर गरम कर लेप करने से गठिया की पीडा मिटती है।

पामा—महुए की छाल को पीसकर मालिश करने से पामा अथवा खुजली मिटती है।

नपुसकता—महुए के ढाई तोला फूलों को पाव भर दूध में औटाकर पिलाने से सारे शरीर की निर्बलता से पैदा हुई नपुसकता मिटती है।

अण्डवृद्धि—इसके सूखे फूलों को औटाकर उनका बफारा देने से अण्डवृद्धि में लाभ होता है। इसके पत्ते और टहनियों को कूटकर उनकी रोटी बनाकर अण्डकोष पर बाँधने से अण्डकोष की सूजन उतरती है।

सरदी के रोग—कोल्हू से निकाले हुए इसके बीजों के तेल की मालिश करने से बादी की पीड़ा और सरदी के रोग मिटते हैं।

वायुशूल—इसके बीजों के मगज की बत्ती बनाकर गुदा में रखने से वायुशूल मिटता है।

मिरगी—महुए के बीज की आधी मगज और ढाई तोला काली मिरच को पीसकर सुंघाने से मिरगी में चेत आ जाता है।

सर्पविष--महुए के बीज की मगज को पानी में पीसकर आँख में अंजन करने से सर्पविषजनित मूर्च्छा दूर होती है।

मदिरा

नामः—

संस्कृत—सुरा, मदिरा। हिन्दी—मदिरा, शराब। अंग्रेजी—Wine (वाईन)।

वर्णन—महुए के सूखे फूलों को तथा द्राक्ष, पुराना गुड़ इत्यादि अनेक वस्तुओं को सड़ाकर उनसे भफके के द्वारा मदिरा खींची जाती है। यह मदिरा या शराब अनेक प्रकार की होती है। फिर भी महुए के फूल, द्राक्ष, गुड़ इत्यादि वस्तुओं से तैयार की हुई मदिरा ही विशेष रूप से उपयोग में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—यह एक ध्यान में रखने की बात है कि 'मदिरा' पर हमारे प्राचीन ग्रन्थों में दो दृष्टिकोणों से विचार किया गया है। एक दृष्टिकोण आचारशास्त्र का है और दूसरा दृष्टिकोण चिकित्सा शास्त्र का।

आचार शास्त्र की दृष्टि से मदिरा अत्यन्त हानिकारक, मनुष्यके ज्ञान और चरित्र को नष्ट करनेवाली, अनेक प्रकारके दुर्गुणोंको पैदा करनेवाली, विषैली तथा सभ्य मनुष्यों के लिए एक दम त्याज्य मानी गई है। भारतवर्ष में तथा मुसलमानी धर्म में जितने भी महापुरुष हुए हैं सबने इस वस्तु के खिलाफ मनुष्य जगत् को भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाओं में सावधान किया है।

मगर चिकित्सा-शास्त्र का दृष्टि-कोण दूसरा है। वह हर एक वस्तु में बुराई और भलाई दोनों वस्तु की खोज करता है और दोनों ही दृष्टियों से उस पर विवेचन करता है। यहाँ तक कि सखिया, वच्छनाग, कुचला, अफीम तथा इसी प्रकार के भयंकर से भयंकर विषों में भी उसने अमृत-तत्व की खोज की और

सफलतापूर्वक उस तत्व को ढूँढ निकाला। इसी प्रकार मदिरा पर भी हमारे यहाँ के चिकित्सा-शास्त्र ने सूक्ष्म अन्वेषण किये और यह बतलाया कि अधिक मात्रा में और अनियमित रूप से सेवन करने पर जहाँ यह वस्तु मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों दृष्टियों से घोर पतन करती है वहाँ कम मात्रा में और नियमित रूप में ग्रहण करने पर यह मनुष्य की तीनों प्रकार की शक्तियों का विकास कर उसे उत्तम स्वास्थ्य भी प्रदान करती है।

अतएव मदिरा का विवेचन करते हुए अगर हमारे ऋषियों ने कहीं-कहीं उसका मुक्त-कंठ से समर्थन या स्तुति की है तो इससे यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि वे लोग मद्यपान के समर्थक थे या वे इसका प्रचार चाहते थे। उन्होंने तो सिर्फ चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टिसे इसकी उपयोगिताको बतलाया है, और यह ग्रन्थ भी चिकित्सा-शास्त्र से सम्बन्धित होनेके कारण हमने यहाँ उनके मतको उद्धृत किया है।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट इत्यादि प्राचीन आयुर्वेद के आचार्योंने मदिरा के गुण धर्मों पर बहुत विस्तृत रूप से विवेचन किया है। उन्होंने बतलाया है कि जो पुरुष प्रसन्न चित्त होकर विधि पूर्वक उचित मात्रा में, उचित काल में अपने बल के अनुसार और हितकर अन्नों के साथ मद्य पीता है उसके लिये वह अमृत के सदृश होती है।

और जो रूक्ष देह तथा नित्य परिश्रम का कार्य करनेवाला पुरुष जब और जैसी भी मद्य मिले उसी को बिना विचारे पी जाता है उसके लिये वह विष के सदृश होती है।

मद्य की प्रशंसा करते हुए महर्षि चरक चिकित्सा स्थान के अध्याय २४ वें में लिखते हैं :—

"देवराज इन्द्र सहित देवताओंसे जिसने पुराकाल में प्रतिष्ठा पाई थी, सौत्रामणि यज्ञ में जिसकी आहुति दी जाती है, जो यज्ञकर्मों में प्रतिष्ठित है, जिसके द्वारा सोम रस के अत्यन्त पान से निर्बल, ओज रहित, और अन्धकार से आछन्न इन्द्र का उस दुःख से उद्धार किया गया था, यज्ञ करते हुए महात्माओं की यज्ञ की सिद्धि के लिये जिसका दर्शन और स्पर्श करना अभीष्ट है, जो अनेक प्रकार के द्रव्यों से तैयार करने पर भी मदलक्षणके एक होने से एक ही प्रकार की होती है। जो अमृत रूप में देवताओं को, स्वधा रूप में पितरों को और सोम रूप में ब्राह्मणों को उत्तम कल्याणों से युक्त करती है, जो अश्विनीकुमारों का महान तेज है, जो सरस्वती का बल है, जो इन्द्र का वीर्य है, जो शोक, अतृप्ति, भय और उद्वेग को नष्ट करती है, जो महाबल देनेवाली है, जो प्रीति, मति, वाणी, पुष्टि और शान्ति है, जिस सुरा को देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और मनुष्यों ने कामदेवकी पत्नी बताया है वह सुरा विधिपूर्वक पीने से अमृत का और अविधि पूर्वक पीने से महान विष का काम करती है।'

मद्यपान की विधिः—

आगे चलकर महर्षि चरक मद्यपान विधिका उल्लेख करते हुए लिखते हैं :—

'देह का स्नान आदि द्वारा संस्कार करके, उत्तम चंदनादि गंधों का अनुलेपन कर, तीव्र सुगंधों से युक्त एवं ऋतु के अनुकूल निर्मल वस्त्र पहिनकर विचित्र विविध पुष्प-मालाओं को धारण किये हुए रत्न और

आभूषणों से भूषित होकर देवता और ब्राह्मणों की पूजा तथा मगल द्रव्यों का स्पर्श करके ऋतु के अनुकूल स्थान में जहाँ फूल बिखरे हुए अथवा बिछे हुए हों, जो धूप की गध से सुगधित हो, जहाँ कोमल गदेले और निर्मल चादर बिछाई हुई हो और ऋतु के अनुसार वस्त्र, आभूषण तथा पुष्पमालाओं को धारण किये हुए पवित्रता तथा अनुराग से युक्त प्रिय एवम् सुन्दर तरुणि स्त्रियाँ इधर उधर अंगों का संचालन कर रही हों वहाँ मसनद का सहारा लेकर आधे लेटे हुए सोने, चाँदी व मणियों के पात्र में मद्य डालकर पीवें।"

आगे चलकर महर्षि चरक भिन्न-भिन्न प्रकृति के पुरुषों के लिये मदिरा पान की भिन्न-भिन्न विधियों का वर्णन करते हुए लिखते हैं:—

"वातप्रधान पुरुष अभ्यंग, उबटन, स्नान, वस्त्र, धूपन, अनुलेपन करके स्निग्ध और ऊष्ण अन्नों को ग्रहण करके मद्य पान करे। इस प्रकार के मद्य पान से वात प्रधान मनुष्य के शरीर का सत्कार होगा।"

"पित्त प्रधान पुरुष विविध-शीतल उपचारों से तथा मधुर, स्निग्ध एवं शीतल अन्नों से संस्कृत देह-वाला होकर मद्यपान करे।"

"कफ प्रधान प्रकृतिवाला पुरुष ऊष्ण उपचारों से भावित तथा जौ और गेहूँ का भोजन करके मद्यपान करे।"

"वात प्रधान पुरुषों के लिये गुड और चाँवल के आटे से बनाई हुई मदिरा हितकर होती है। कफ प्रकृति के पुरुषों के लिये महुए के फूलों से तयार की हुई मदिरा हितकर होती है। और पित्त प्रधान पुरुषों के लिये अगूर से तयार की हुई मदिरा हितकर होती है।"

शरीर रचना पर मद्यके प्रभाव—

आगे चलकर महर्षिचरक लिखते हैं कि:—

"मद्य के अन्दर दस गुण होते हैं। (१) लघु (२) ऊष्ण (३) तीक्ष्ण (४) सूक्ष्म (५) अम्ल (६) व्यवायी (जो प्रथम देह में व्याप्त होती है और उसके पश्चात् पचती है) (७) आशुग (८) रूक्ष (९) विकासी और (१०) विशद।

उपरोक्त दस गुणों से मद्य हृदय में पहुँचकर ओज के गुरु आदि दस गुणों को विक्षुब्ध करके चित्त में विकार उत्पन्न कर देती है।

ओज के दस गुण ये हैं:—(१) गुरु (२) शीतल (३) मृदु (४) श्लक्षण (५) बहल (६) मधुर (७) स्थिर (८) प्रसन्न (९) पिच्छिल और (१०) स्निग्ध।

मद्य अपने लघु गुण से ओज की गुरुता को, ऊष्णता से शीतलता को, अम्लता से मधुरता को, तीक्ष्णता से मृदुता को, सूक्ष्मता से बहलता को, रुक्षता से स्निग्धता को, विकासिता से श्लक्षणता को और

विशदता से पिच्छिलता को पराभूतकर देती है। इस प्रकार मद्य के दस गुण ओज के दसगुणों को नष्ट कर देते हैं।

मद्य के अतिपान के कारण ओज के न्यून हो जाने से हृदय और हृदय में आश्रित रस रक्त आदि धातुएँ विकृत हो जाती हैं।

मदिरा के नशे की महर्षिचरक ने तीन श्रेणिया बतलाई हैं। प्रथम, मध्यम और अंत्य।

प्रथम मद के लक्षण—प्रथम मद में ओज का विघात न होने के कारण हर्ष और आनद प्राप्त होता है। यह प्रीति का उत्पादक होता है। इस मद में मनुष्य गाना, बजाना, हँसी-मखोल तथा कथाओं में प्रवृत्त होता है। इस मद में मनुष्य की बुद्धि और स्मृत्ति का नाश नहीं होता। यह मद पुरुषों को विषयों में असमर्थ नहीं बनाता। यह प्रथम मद सुख को देनेवाला होता है। जो कि बहुत सूक्ष्म मात्रा में मदिरा को सेवन करने से प्राप्त होता है।

मध्यम मद के लक्षण—मध्यम मद में प्रविष्ट होने पर मनुष्य को बारबार स्मृत्ति और बारबार मोह (विषय ज्ञान) होता है, वाणी कभी-कभी अव्यक्त हो जाती है, बोलते बोलते रुक जाता है, कभी युक्ति पूर्वक बोलता है, कभी बकवाद करता है, चक्कर आते हैं, स्थान, खान पान, कथा को कभी उचित प्रकार से करता है कभी विपरीत प्रकार से।

अन्तिम मद के लक्षण—अन्तिम मद में पहुँचकर मन के अत्यधिक मोह से आच्छादित हो जाने के कारण मनुष्य टूटी हुई लकडी की तरह निश्चेष्ट होकर गिर पड़ता है। वह जीता हुआ भी मुर्दे के समान होता है। वह रमणीय विषयों को नहीं जानता, अपने मित्र को भी नहीं पहिचान सकता। जिस रति, आनद व हर्ष के लिये मद्य पिया जाता है उसे भी वह प्राप्त नहीं कर सकता। उसे कार्य, अकार्य, सुख, दुख और हिताहित का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। उससे ससार के लोग नफरत करते हैं उसके साथ कोई रहना नहीं चाहता और मद्य का व्यसन हो जाने के फलस्वरूप उसे भयकर मदात्यय रोग हो जाता है।

महर्षिचरक लिखते हैं कि अविधिपूर्वक अत्यधिक मात्रा में मद्यपान करने से मन में महान क्षोभ उत्पन्न होता है। जैसे किसी नदी के तट पर स्थित वृक्ष में आँधी के वेग से क्षोभ हुआ करता है। उस महादोषयुक्त तथा महारोगरूप मद्य प्रसग को रज, मोह व तमोगुण से पराभूत मूर्ख लोग सुख समझते हैं। मद्यपान के कारण जिनका विज्ञान नष्ट हो गया है ऐसे सात्विक गुणों से रहित, मद्य से अंधे, मद की लालसावाले पुरुषों का कभी कल्याण नहीं होता।

मोह, भय, शोक, क्रोध, मृत्यु, उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार और अपतानक ये सब दोष मद्य में आश्रित हैं। जहाँ एक स्मृतिनाश ही हो वहाँ सभी कुछ असाधु और अशुभ बातें रहती हैं अर्थात् मद्यपान से स्मृति भ्रंश होने पर ऐसा कोई निंदित कार्य नहीं जो मनुष्य न कर बैठे।

निस्सन्देह ये मदिरापान के महान दोष हैं परन्तु किस मदिरापान के जो अहितकर हो, जो मात्रा से

अधिक और अविधिपूर्वक पी गई हो। मगर यदि इसी मदिरा का युक्तिपूर्वक प्रयोग किया जाय तो यही अमृत के समान प्राणधारक होती है।

महर्षिचरक लिखते हैं कि प्राणियों का प्राण अन्न है परतु यदि उस अन्न का भी युक्तिपूर्वक सेवन नहीं किया जाता तो वह भी मृत्यु का कारण हो जाता है। इसी प्रकार विष तत्काल प्राणनाशक होता है परन्तु उसका भी यदि युक्तिपूर्वक सेवन किया जाय तो वह भी रसायन हो जाता है।

मतलब यह कि ससार मे उत्पन्न प्रत्येक वस्तु में गुण और दोष दोनों रहते हैं। विधि के साथ सेवन करने से प्रत्येक वस्तु अमृत का काम कर सकती है और विपरीत प्रयोग से वही प्राणघातक हो जाती है।

इसी प्रकार यदि मद्य को देश, काल और परिस्थिति की विवेचना तथा विधि से पिया जाय तो वह हर्ष, तेज, मद, पुष्टि, आरोग्य तथा परमपौरुष को पैदा करती है। रुचि उत्पन्न करती है अग्निदीपक, हृदय के लिये हितकारी, स्वर को शुद्ध करनेवाली, कातिवर्द्धक, थकावट को दूर करनेवाली, बलकारक, भय और शोक को दूर करनेवाली, अनिद्रा में नींद लानेवाली और अतिनिद्रा युक्त पुरुषों की निद्रा को दूर करनेवाली, मूक पुरुषों की वाणी को खोल देनेवाली और क्लेश तथा सासारिक दुःखों का अनुभव न होने देनेवाली होती है। यह रतिवर्द्धक, आनन्दवर्द्धक और काम को उत्पन्न करनेवाली होती है। इसके सेवन से पुरुष को रूप, शब्द, काम, इत्यादि इन्द्रिय विषयों में अधिक सामर्थ्य और अधिक प्रीति पैदा होती है। बडी उम्रवाले अर्थात् वृद्ध पुरुषों के लिये भी मद्य उत्सव और आमोद का कारण होती है।

जवान और वृद्ध पुरुषों को प्रथम मद अर्थात् हलके नशे की हालत में रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श आदि पाँच काम्यविषयों में जो आनन्द प्राप्त होता है। उसकी उपमा इस पृथ्वी पर नहीं। अर्थात् प्रथम मद की अवस्था में सेवन करनेवाला अतुल आनन्द का अनुभव करता है।

मतलब यह कि युक्तिपूर्वक सेवन की गई मद्य बहुत दुःखों से दुःखी और शोक में डूबे हुए जीवो का एकमात्र विश्राम है।

महर्षिचरक लिखते हैं कि मदिरा सेवन के समय अन्न, पान, उम्र, रोग, बल और काल इनके छः त्रिक, तीन दोष और तीन प्रकार के सत्व इन सब पर विचार करके ही सदा मद्य पीना चाहिये। वातकर अन्न, पित्तकर अन्न और कफकर अन्न यह तीन प्रकार का अन्न है। इसी प्रकार तीन प्रकार के पेय द्रव्य होते हैं। बचपन, जवानी और बुढापा ये तीन प्रकार की वय होती है। वातज, पित्तज, कफज भेद से अथवा सौम्य, आग्नेय और वायव्य के भेद से अथवा मृदु, मध्य और तीव्र के भेद से तीन प्रकार के रोग हैं। प्रवर, अवर, और मध्य के भेद से तीन प्रकार का बल होता है। शीत, गर्मी और वर्षा ये तीन ऋतु अथवा काल होता है। वात, पित्त और कफ तीन दोष होते हैं। सत्व, रज और तम तीन प्रकार के मन होते हैं।

मद्यपान से पूर्व इन आठों त्रिकों पर विचार करके जो मनुष्य मद्यपान करता है वह धर्म और अर्थ का नाश न करता हुआ मद्य के सब गुणों का उपभोग करता है।

मतलब यह कि आयु, बल, ऋतु, रोग और मन की अवस्था को समझ बूझकर जो मनुष्य बहुत थोडी मात्रा में मद्य का सेवन करते हैं वे लोग मद्य के यथाविधि गुणों का उपभोग कर सकते हैं। इस विषय का विशेष विवेचन चरक संहिता के चिकित्सा स्थान के २४वें अध्याय में देखना चाहिये।

शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों और रोगों पर मदिरा के प्रभाव—

डॉक्टर देसाई महुए की शराब के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए लिखते हैं कि महुए की शराब हानिकारक होती है। और उसमें भी नवीन तैयार की हुई शराब तो विष के समान होती है। इससे आमाशय में दाह उत्पन्न होता है। मनुष्य बावला हो जाता है। उसकी नींद बिगड जाती है। सिर दुखने लगता है व छोटी छोटी बातों से उसको बहुत संताप होता है। थोडी थोडी रोज पीनेवाले लोगों के नाभि के नीचे पेट में दर्द होता है, अन्न की रुचि कम हो जाती है, विचारशक्ति बिगड जाती है। उनके मस्तिष्क को शांति नहीं मिलती। शराब पीनेवाले को अविचारपूर्ण कामों के करने की आदत हो जाती है। वह रोगों का सहज शिकार बन जाता है। इन्हीं सब अवगुणों की वजह से महुए की नवीन तैयार की हुई शराब सेना के सैनिकों को नहीं दी जाती।

"लेकिन पुरानी और बार बार उडाकर शुद्ध की हुई उत्तम शराब पानी में मिलाकर छोटी मात्रा में लेने से आमाशय के अन्दर उष्णता पैदा होती है। आमाशय की रक्तवाहिनियों का विकास होता है। पाचक रस अधिक पैदा होता है, भूख लगती है, अन्न की रुचि बढती है और अन्न हजम होकर जल्दी ही रक्त में मिल जाता है।"

"शराब आँतों के अन्दर पहुँच कर पाचन क्रिया को सुधारती है और मल को गाढा करती है। रक्त में यह बहुत शीघ्र मिल जाती है और रक्त के द्वारा सारे शरीर में व्याप्त हो जाती है। लेकिन खास रक्त के ऊपर इसका कोई असर नहीं होता।"

"रक्ताभिसरण क्रिया के ऊपर शराब का बहुत अनुकूल असर होता है। इससे हृदय की धडकन बढती है और त्वचा की रक्तवाहिनियों का तथा शिरा और धमनी इन दोनों का विकास होता है। साथ ही शरीर की रक्तवाहिनियों का इससे संकोचन होता है इन दोनों क्रियाओं के परिणामस्वरूप रक्त का दबाव बढता है। रक्त की गति शीघ्रगामी हो जाती है। शराब से हृदय को प्रत्यक्ष पोषण मिलता है यह एक बहुत महत्त्व की बात है। मज्जातंतुओंके ऊपर शराब की बहुत स्पष्ट क्रिया होती है। इसका पहला असर मस्तिष्क पर होता है और उसके पश्चात् पीठ की रीढ पर इसका असर होता है। इससे विचारशक्ति बढती है। मनमें आल्हाद पैदा होता है और स्त्रियों के साथ रमण करने की इच्छा होती है।"

"शराब से त्वचा के अंदर की रक्तवाहिनियों का विकास होने से शरीर में गर्मी मालूम होने लगती है। पसीना छूटता है और उसके पश्चात् शरीर की गर्मी कम होने लगती है। विनिमय क्रिया पर शराब

-का प्रत्यक्ष और अनुकूल असर होता है। लकडी जिस प्रकार चूल्हे में जलती है उसी प्रकार शराब शरीर में जलती है और इससे शरीर की गर्मी बढ़ती है और उसमें उत्तेजना होती है। शक्कर और आटेकी अपेक्षा शराब की उत्तेजना अधिक होती है। शारीरिक भट्टी के अन्दर उष्णता और उत्तेजन देने के लिये चर्बी और मास की जरूरत नहीं पडती और इसी कारण शराब पीनेवालों की चर्बी और मास का ह्रास नहीं होता और उनका शरीर मोटा ताजा दीखता है।"

"शराब मूत्रमार्ग से और श्वास मार्ग से शरीर के बाहर निकलती है। इसी कारण शराबी की साँस मे बहुत दुर्गंध आती है और उसको पेशाब बहुत अधिक होता है।"

"शराब की उपरोक्त सब उपयोगी क्रियाएँ उसको थोडी मात्रा में लेने से ही होती हैं। इसको अधिक मात्रा में लेने से ये सब क्रियाएँ बिगड जाती हैं। अधिक मात्रा में इसको लेने से पाचन क्रिया बिगडती है, दस्त पतला होता है, मानसिक और शारीरिक थकावट आती है। त्वचा की रक्त वाहिनियों का विकास हमेशा के लिये कायम हो जाता है। चर्बी बढती है और अजीर्ण रोग पैदा हो जाता है। रोज बडी मात्रा में शराब को पीने से मज्जातन्तुओ की क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है।"

"ज्वर के अन्दर अथवा दूसरे किसी नवीन और जोरदार रोग में जब रोगी की शक्तियाँ क्षीण होने लगती हैं तब छोटी मात्रा में शराब को देने से बहुत लाभ होता है। इससे शरीर का होनेवाला ह्रास रुक जाता है। रक्ताभिसरण क्रिया ठीक होने लगती है, मज्जातन्तुओं में उत्तेजना आकर उनकी थकावट दूर हो जाती है। नाडी की शीघ्रगामी गति, सूखी और ऊदी रग की जीभ, निद्रानाश, घबराहट और वायु का जोर दिखलाई देने पर तुरंत शराब देना चाहिये। ज्वर की उष्णता, नाड़ी की स्थिति, हृदय की गति, बल, अन्नग्रहण करने की शक्ति और रोगी की उम्र इन सब बातों पर विचार करके शराब को कम या अधिक मात्रा में देना चाहिये।"

"रोग बन्द हो जाने पर रोगी की शक्ति को सुरक्षित रखने के लिये हलका और शीघ्र पचनेवाला अन्न दिया जाता है। लेकिन यदि ऐसा अन्न भी रोगी को हजम न होता हो तो उस समय अन्न की जगह रोगी को उत्तम और पुरानी शराब दी जा सकती है। ज्वर में शराब एक उत्तम अन्न का काम भी करती है। बशर्ते इसको थोडी-थोडी मात्रा में बार-बार दी जावे। ज्वर के अन्दर जितनी अधिक उष्णता होती है उतनी ही अधिक शराब रोगी को सहन हो सकती है। ज्वर में नींद लाने के लिये भी शराब एक उत्तम औषधि है।"

"प्राचीन और जीर्ण रोगों मे अशक्तता, अग्निमांद्य और अस्वस्थता पैदा होने पर शराब को अन्न और औषधि इन दोनो ही चीजों की जरूरतों को पूरी करने के लिये देते हैं। कफक्षय, जीर्ण-ज्वर, प्राचीन हृदय रोग, पाडु रोग इत्यादि थकावट पैदा करनेवाले रोगों में शराब बहुत उपयोगी साबित होती है।"

"जोरदार रोगों से उठे हुए रोगियों, शहरवासियों, अधिक काम करनेवाले लोगों और उतरती हुई उम्र के मनुष्यों के अजीर्ण रोग में शराब देने से बहुत लाभ होता है। क्योंकि इसका दीपन और पाचन

धर्म बहुत महत्त्व का है। अगर इसके साथ कोई कटु पौष्टिक पदार्थ मिला दिया जाय तो विशेष लाभदायक हो जाता है। उदर शूल, अतिसार और संग्रहणी रोग में भी शराब लाभदायक होता है। क्योंकि इसमें वायुनाशक और ग्राहीधर्म भी रहता है।"

"शराब का उत्तेजक धर्म बहुत महत्त्व का होता है। इसके उत्तेजक धर्म का मुख्य उपयोग हृदय के रोगों में होता है। ज्वर के अदर होनेवाली हृदय की शिथिलता, चक्कर, मानसिक आघात अथवा रक्तस्राव की वजह से यदि हृदय एकाएक दुर्बल हो जाय तो शराब को देने से उसमें लाभ होता है। प्राचीन हृदय-रोगों में भी शराब लाभदायक होती है।"

"मज्जातन्तु समूह के रोगों में शराब नहीं देना चाहिये। क्योंकि इससे रोग में कुछ लाभ नहीं होता और रोगी को शराब की आदत हो जाती है।"

"शराब में व्रणशोधक और व्रणरोपक धर्म भी रहता है। इससे व्रणों की शुद्धि होकर व्रण जल्दी भर जाते हैं। मसूडे से रक्त बहना, मुख व्रण और दाँतों के दर्द में शराब को पानी में मिलाकर कुल्ले करने से लाभ होता है। त्वचा के ऊपर तेज शराब को लगाकर उस हिस्से को बन्द कर देने से त्वचा लाल हो जाती है और उस अंग की रक्ताभिसरण क्रिया बढ जाती है। इसलिये सन्धियों की सूजन, सन्धियों की अकडन, जीर्ण आमवात, फुफ्फुस के परदे की सूजन, श्वास नलिका की सूजन इत्यादि रोगों में तेज शराब को मालिश करके ऊपर से गरम कपडा बाँध देने से लाभ होता है।"

"शराब में अधिक पानी मिलाकर उसको त्वचा पर लगाने से और त्वचा के उस भाग को खुला छोड देने से शराब के अंश के उड जाने पर वहाँ की रक्तवाहिनियों का संकोचन होता है और वह भाग ठंडा मालूम होने लगता है। इस धर्म की वजह से व्रणशोथ में पानी के अन्दर शराब मिलाकर उसमें कपडा तर करके उस कपडे की घडी करके रखने से लाभ होता है।"

उपरोक्त सारे विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मदिरा उचित और अनुकूल मात्रा में ग्रहण करने से जहाँ अमृत का काम करती है, वहाँ यह अधिक और अमर्यादित मात्रा में एक महाभयंकर विष का काम करती है। मनुष्य जाति के इतिहास को देखने से पता चलता है कि मनुष्य ने इसको अमृत की अपेक्षा विष के रूप में ही अधिक ग्रहण किया है। प्रकृति के द्वारा प्रदत्त इस प्रभावशाली वस्तु को मनुष्य ने अपनी दूषित मनोवृत्तियों को चरितार्थ करने, अपनी काम पिपासा को तृप्त करने और अपनी पाशववृत्तियों को जाग्रत रखने के उपयोग में ही लिया है और यही कारण है कि मनुष्य समाज का उत्तम भाग इस वस्तु को हमेशा नफरत की निगाह से देखता आया है। संसार के महापुरुष हमेशा इसकी निन्दा करते आये हैं और संसार की प्रायः सभी राजसत्ताएँ इसके प्रचार पर प्रतिबन्ध करती आई है। इन सब बातों के बावजूद चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से इस वस्तु का जो महत्व है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। चिकित्साशास्त्र में इस वस्तु का महत्व हमेशा से रहा है। चिकित्सक लोग इस वस्तु से हमेशा फायदा उठाते आये हैं और जब तक चिकित्सा शास्त्र रहेगा तब तक चिकित्सा कर्म की दृष्टि से इस वस्तु का महत्व बना रहेगा।

महामेधा

नामः—

संस्कृत—महामेदा, देवमणि, वसुछिद्रा, देवगधा, सोमा, देवेष्टा, मेदोद्भवा इत्यादि। हिन्दी—महामेदा।

वर्णन—महामेदा आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध अष्टवर्ग की एक वनस्पति है। अष्टवर्ग के सम्बन्ध में बहुत से लोगों ने खोज कर करके अपने-अपने अनुमान लगाये हैं। मगर अभी तक इस विषय में कोई अन्तिम निश्चय पर नहीं पहुंच सका है। इसलिये इस वनस्पति के स्वरूप का कोई निश्चित वर्णन देना असम्भव है। निघंटुओं में यह लिखा हुआ है कि इसकी बेल चलती है। इसका कद अद्रक की आकृति का मगर पाडु रंग का होता है और यह वनस्पति मोरगादि देशों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

राजनिघटु के मतानुसार महामेदा शीतल, रुचिकारक, कफ और वीर्य को बढानेवाली तथा दाह, रक्त-पित्त, क्षय, वात और ज्वर का नाश करनेवाली होती है। यह रस और पाक में मधुर होती है।

महापारेवत

नामः—

संस्कृत—महापारेवत। हिन्दी—महापारेवत।

गुण दोष और प्रभाव—

महापारेवत बलकारक, पौष्टिक, वीर्यवर्धक, मूर्च्छानिवारक और ज्वर नाशक होता है।

महापिंडीतक

नामः—

सस्कृत—महापिंडीतक। गुजराती—लासोमिंढोल। मराठी—मोनीगेली। लेटिन—Randia Longispine रैंडिया लॉंगिसपिन)।

वर्णन—यह मेनफल के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसका वृक्ष मेनफल के वृक्ष की अपेक्षा ज्यादा बडा होता है। इसके ऊपर बहुत तेज और मोटे काटे होते हैं। इसके पत्ते लम्बगोल होते हैं। इस वृक्ष पर मेनफल के समान मगर उनसे कुछ छोटे फल लगते हैं। औषधि प्रयोग में इसकी छाल काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

महापिंडीतक की छाल शोणित स्थापक, शोथनाशक और स्तम्भक होती है। इसकी छाल को ठंडे पानी में पीसकर लेप करने से सूजन और रक्त का जमाव बिखर जाता है।

महाबरीबच

नाम:—

संस्कृत—अवन्ती, कर्पूर हरिद्रा, कुलजा। हिन्दी—महाबरीबच। बंगाल—महाबरीबच। पंजाब—कचूर। लेटिन—Yingiber Yerumbet (झिंझीबेर झेरुम्बेट)।

वर्णन—यह एक अदरक के वर्ग की वनस्पति होती है। इसकी जड़ की गठान अदरक से बड़ी होती है और उसका स्वाद अदरक की तरह चरपरा और खुशबूदार होता है मगर इसके स्वाद में कुछ कड़वापन भी होता है। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। इसके बीज काले होते हैं। इसका पौधा करीब २॥ फीट तक ऊंचा होता है। यह वनस्पति कोंकण में विशेष रूप से पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से महाबरीबच सुगंधित, कफ तथा खांसी को दूर करनेवाली, स्वर शोधक, रुचिवर्द्धक और हृदय, कंठ तथा मुख को शुद्ध करनेवाली होती है।

इसके कंद का उपयोग अदरक के समान होता है। यह खांसी और दमे में गरम औषधि की तरह दिया जाता है। कुष्ट और दूसरे चर्मरोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है। फुफ्फुस सम्बन्धी विकृति में भी इनके कन्द को उबाल कर देने से लाभ होता है।

माइमूल

नाम:—

संस्कृत—माकन्दी, माइनि, मादिनि, गंधमूलिका, श्यामला, गिरिकंदका इत्यादि। हिन्दी—माइमूल। बंगाल—मादाणी। मराठी—मायमूले। गुजराती—गरमर। लेटिन—Coleus Borbrutus (कोलस बारब्रूटस)।

वर्णन—इस वनस्पतिका पौधा अपामार्गके छोटे पौधेके समान होता है। इसके पत्ते अपामार्गके पत्तों ही की तरह होते हैं। इसकी जड़को माइमूल कहते हैं। यह वनस्पति गुजरातमें बहुत पैदा होती है। इसकी डंडी और इसकी जड़ दोनोंका शाग बनता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मतसे माइमूल तिक्त, तीक्ष्ण, मधुर, अग्निदीपक, रुचिकारक, बलवर्द्धक

तथा प्लीहा, वात, कफ, गुल्म, उदर रोग, आनाह और शीत ज्वरको नष्ट करती है। इसका कद पाकमें मधुर, विकासी, पाण्डुरोग और सूजनको दूर करनेवाला तथा कृमि, प्लीहा, पाण्डु गुल्म, संग्रहणी, उदर रोग और बवासीरको दूर करनेवाला होता है।

माकड़मारी

नामः—

हिन्दी—गुजराती—माकड़मारी, गंधारिसेदरडी। बंगाल—दो चुटी, ऊचुंटी। काठियावाड—माकड-मारी। कोकण—सहदेवी। लेटिन—Argeratum Conyzoides (अर्जेरेटम कोनीझुइडस)। मराठी-ओसाडी।

वर्णन-यह सहदेवीके वर्गकी एक वर्षजीवी क्षुद्र वनस्पति होती है। इसका पौधा सहदेवी के समान ही दिखलाई देता है। यह बरसातके अन्दर पैदा होती है और जाडेमें इसके फूल आते हैं। इसका क्षुप १ से २ फुट तक ऊँचा होता है। यह रुएँदार होता है। इसके पत्ते लम्बे, गोल, नोकदार और कटी हुई किनारों के होते हैं। इसके फूल डालियों की नोकपर झुमकों में आते हैं। ये बहुत छोटे, तारों के समान और सफेद होते हैं। इस वनस्पतिमें उग्र गध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का प्रधान गुण पसीना लानेका होता है। ज्वर में पसीना लाने के लिये इसके रस को शरीरपर मलते हैं। ज्वरकी शान्ति के लिये इसके पत्तों को तुलसी के पत्तों और काली मिरच के साथ चार चार घण्टे के अन्तर से देते हैं। जखम के ऊपर इसके पत्तों का लेप करनेसे रक्तश्राव् बद होकर जखम जल्दी भर जाता है। इसलिये कई लोग इसको घायमारी भी कहते हैं।

माखनियो भिण्डो

नामः—

गुजराती—माखणियो भिंडो। कच्छी—माखनियो भिंडो। लेटिन—Hibiscus Angulosus (हिबिस्कस एगूलोसस)।

वर्णन—यह एक भिंडीके वर्ग की वनस्पति है। इसके पौधे बरसात के दिनों में पैदा होते हैं। इसके पत्ते, फल और फूल भिंडी के ही समान होते हैं मगर सारे पौधेपर बहुत मुलायम मखमली रुएँ रहते हैं। इसका फल एक इञ्च से २ इञ्चतक लम्बा होता है। यह वनस्पति कच्छमें विशेष तौर से पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कच्छ के रहनेवाले गरीब लोग इस वनस्पतिके पत्तों और फलों की तरकारी बना कर खाते हैं। इसके साधारण गुण धर्म भिंडी के समान ही होते हैं।

माजूफल

नामः—

संस्कृत—मायाफल, माइफलम, माइका छिद्राफलम्, केशरञ्जन, शिशुभेषज। हिन्दी—माजूफल। बंगाल—माइफल, माजूफल। गुजराती—माँयाँ। मराठी—मायफल। पंजाब—माजूफल। तेलगू—माचकाया। अरबी—अफस। फारसी—माजू। अंग्रेजी—The gallnut (गॅल्नट)। लेटिन—quercus Infectoria (करकस इनफेक्टोरिया)।

वर्णन—माजूफल के वृक्ष भारतवर्ष में पैदा नहीं होते। ये ईरान से यहाँपर आते हैं। इसके वृक्ष की आकृति सरूके वृक्षके समान होती है। इस वृक्षके फलोंमें एक प्रकार की मक्खी के समान नीले रंगके कीड़े छेद करके घुस जाते हैं और उसकी गूदा को साफ करके उसमें बच्चे दे देते हैं। ये बच्चे उसी फलमें बढ़ते रहते हैं और पूर्ण होनेपर निकल जाते हैं। इसीलिये माजूफल के हर एक फल में एक छेद होता है। कुछ लोगों का कहना है कि ये फल नहीं होते बल्कि उस वृक्षपर एक जाति का कीड़ा अपने बच्चों के लिये घर बनाता है वे ही घर माजूफलके नाम से कहे जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघण्टु रत्नाकर के मतसे माजूफल गरम तीक्ष्ण, शिथिलतानाशक, प्रशस्त और वात विनाशक होता है।

राजनिघण्टु के मतानुसार माजूफल वातनाशक, चरपरा गरम, शिथिलताको संकुचित करनेवाला और केशोंको काला करनेवाला होता है।

माजूफल में स्तम्भक, कफ नाशक, विषनाशक, ज्वरनाशक, संकोचक और दीपन धर्म रहते हैं।

इसके अन्दर गैलिक एसिड और टैनिक एसिड दो प्रकार के अम्ल द्रव्य पाये जाते हैं। इन दोनों प्रकार के अम्ल द्रव्यों के धर्म समान होते हैं। मगर इसमें पाये जानेवाले गैलिक एसिड का धर्म इस औषधि को लेते ही तत्काल दृष्टिगोचर होता है और टैनिक एसिड की क्रिया शनैः शनैः होती है।

माजूफलको २ से ५ रत्ती तक की मात्रा में दालचीनी इत्यादि सुगन्धित द्रव्यों के साथ पुराने अतिसार और सग्रहणी में दिया जाता है। पुराने आमदस्तोंमें इसका क्वाथ विशेष उपयोगी होता है। आमाशय की जीर्ण मदशोथ और उससे होनेवाली विकृतियाँ माजूफल से दूर हो जाती हैं। जीर्ण ज्वर और मलेरिया ज्वर में माजूफल को १० से १५ रत्ती तक की मात्रा में दिनमें तीन बार चिरायते के काढे के साथ देते हैं। इसमें कषाय रस और स्तम्भक धर्म होने की वजह से यह ज्वरनाशक और पौष्टिक माना जाता है। यद्यपि ज्वर के ऊपर इसकी कोई प्रत्यक्ष क्रिया नहीं होती पर जीर्ण ज्वर की वजह से जब सारा शरीर शिथिल हो जाता है और मनुष्य की कमजोर शारिरिक क्रिया प्रत्यक्ष ज्वरनाशक औषधियों के धर्म को ग्रहण करनेमें असमर्थ हो जाती है उस समय माजूफल के समान स्तम्भक द्रव्यों को देने से शरीर की शिथिलता कम होकर शरीर क्रिया ज्वर नाशक-औषधियों के धर्म को ग्रहण करने के काबिल हो जाती हैं। इसीलिए आयुर्वेद में जीर्ण ज्वर की चिकित्सा में कषाय और स्तम्भक द्रव्यों को उपयोग करनेकी व्यवस्था दी गई है। जिस समय जीर्ण ज्वर में माजूफल का व्यवहार किया जाय उस समय घी का सेवन अधिक करना चाहिये।

प्राचीन सुजाक और तन्तु प्रमेह मे माजूफल को १० रत्ती की मात्रा में दिन में तीन बार देना चाहिये। इससे मूत्र नलिका-में जोम पैदा होकर पीवका बहना कम हो जाता है। जिस सुजाक में विना वेदना के पीव बहता हो उसमें भी इस औषधि को देने से लाभ होता है।

श्वेत प्रदर में इस औषधि को खिलाने से और इसके काढे की एनिमा योनि में देने से लाभ होता है।

माजूफल के अन्दर स्थावर विषों को नष्ट करने की शक्ति भी रहती है। कुचला, धतूरा, वच्छनाग, अफीम, इत्यादि के विषों में पहिले रोगी को वमन कराकर फिर विष का दोष हरने के लिये माजूफल का कड़क काढ़ा बना कर दिया जाता है, यह काढा थोड़ी २ देर में और अधिक मात्रा में दिया जाना चाहिये।

माजू फल में संकोचक धर्म होने की वजह से इसका काढ़ा बना कर अथवा इसका मरहम बना कर घाव और फोडों पर लगाने से उनका सकोचन हो कर वे जल्दी भर जाते हैं। ताजा जखम पर इसको लगानेसे सूक्ष्म रक्तवाहिनियों का सकोचन होकर रक्तका बहना बंद हो जाता है। मसूडे सूज कर उनसे रक्त बहता हो अथवा मुह में छाले हो गये हों तो माजूफल के उपयोग से दूर हो जाते हैं। इसको पीस कर गले में लगाने से गले में बढे हुए टांसिल ठीक हो जाते हैं और उनसे पैदा हुई सूखी खाँसी मिट जाती है, माजूफल को औटा कर उसके क्वाथ को बवासीर पर लगाने से बवासीर की जलन कम होती है और उनका सकोचन होकर सूजन उतर जाती है। अगर बवासीर की वेदना बहुत अधिक हो तो माजूफल को थोड़ी अफीम के साथ घिस कर उस लेप को लगाने से वेदना दूर हो जाती है।

जिस प्रकार बाह्य उपयोग में माजूफल रक्तस्राव और पीब को बन्द करता है उसी प्रकार इसका अन्तः प्रयोग करने से अर्थात् इसको खिलाने से कफ के साथ रक्त का गिरना, आमाशय और आंतों के द्वारा रक्त का बहना और मासिक धर्म में अधिक रक्त का जाना बन्द हो जाता है।

श्लेष्म त्वचा के ऊपर भी माजूफल की क्रिया अच्छी होती है। माजूफल से श्लेष्म त्वचा का आकर्षण होकर कफ का पैदा होना कम हो जाता है। खांसी, दमा, इत्यादि ऐसे कफ रोगों में जिनमें बहुत अधिक पतला कफ गिरता हो माजूफल का प्रयोग उपयोगी होता है। (देसाईकृत औषधि संग्रह)

उपयोग—

रक्तस्राव—किसी भी स्थान से होनेवाले रक्तस्राव को रोकने के लिए माजूफल और अफीम का मलहम बना कर लगाना चाहिये।

बच्चोंको कांचका निकलना—माजूफल और अनार के छिल्कों को पीस कर भुरभुराने से बच्चोंको काँच का निकलना बंद हो जाता है।

कानका बहना—इसको कूट कर, सिरके में औटा कर, छान कर कान में टपकाने से कान का बहना बंद हो जाता है।

नकसीर—माजूफल को पीस कर किसी नलीके द्वारा नाक में फूकने से नकसीर का बहना बन्द हो जाता है।

दाँतसे खून बहना—माजूफल और सुपारी को औटा कर उससे कुल्ले करने से दांतोंसे खून का बहना बन्द हो जाता है।

अण्ड वृद्धि—माजूफल और असगन्ध को पानी के साथ पीस कर गरम करके लेप करने से अंड वृद्धि मिट जाती है।

ताजा जखम—माजूफल को जला कर उसकी राख को ताजा जखम पर भुरभुराने से जखम से रुधिर का बहना बंद हो जाता है।

बच्चों का जीर्ण ज्वर—दो छोटे माजूफल रात में ठंढे पानी में भिगो देना चाहिये। सवेरे उनको तीन तोला गायके दूध में औटा कर वह दूध बच्चे को पिला देना चाहिए इस प्रकार १४ दिन देने से बच्चों का जीर्ण ज्वर मिट जाता है।

दांत का हिलना—माजूफल १ तोल, सफेद कत्था १ तोला इन दोनों चीजों को पीस कर कपड़े में छान कर दिन में दो बार मंजन करना चाहिये और मुँह से लार बहा देना चाहिये। इस प्रकार चार पाँच दिन करने से दाँतों का हिलना बंद हो जाता है।

स्थावर विष—कुचला, धतूरा, बच्छ नाग इत्यादि विषों को दूर करने के लिये किसी वामक औषधि से वमन कराकर फिर माजूफल का कड़क क्वाथ थोड़ी थोड़ी देर में पिलाना चाहिये। स्थावर विषों को नष्ट करने के लिये माजूफल एक बहुत उत्तम वस्तु है।

योनि का संकोचन—प्रसूति के पश्चात् अथवा वृद्धावस्था के कारण स्त्रियों की योनि में ढीलापन आ जाय तो माजूफल का प्रयोग करने से मिट जाता है।

बनावटें:—

दतमंजन—

त्रिफला, त्रिकुटा, तूतिया तीनों नौन पतग।
दाँत वज्र सम होत है, माजूफल के संग॥

अर्थात् माजूफल, त्रिफला (हरड, बहेड़ा और आँवला), त्रिकुटा (=सौंठ, मिर्च और पीपर), नीला थूथा, तीनों प्रकार के नमक (सेंधा, काला और साम्भर नमक) और पतग इन सब चीजों को पीस कर कपडछान कर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण से मजन करने से दात वज्र के समान दृढ होते हैं।

माझरी

नाम:—

हिन्दी—माझरी, माझारी। सिन्ध—धौरा। लेटिन—Nannorhops Ritchieana (नेनोहोप्स रिट्चिएना)।

वर्णन—यह एक जाति की झाडी होती है जो सिन्ध, बलुचिस्तान और पजाब में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

बेलों के मतानुसार इसके कोमल पत्ते अतिसार और प्रवाहिका रोग में दिये जाते हैं। ये विरेचक भी होते हैं। इनका प्रधान उपयोग पशु चिकित्सा के सम्बन्ध में होता है।

माधवी लता

नाम:—

संस्कृत—अतिमुक्ता, माधवी, सुवसन्ता, पराश्रया, कामुक, मण्डक, चन्द्रवल्ली, भ्रमरप्रिया, भ्रमरलता, वसन्तदूति इत्यादि। हिन्दी—माधवीलता, मदमाती, मधुलोटा, काँपटो, मदमालि। बंगाल—बासन्ती, माधवीलता, मधुमी। गुजराती—माधवी, रक्तपित्ती। मराठी—हलदवेल, माधवी, मधुमालती। पञ्जाब—

वेंकर, चेवुक, इन्द्रा, खुम्ब। गढवाल—अनेथा। मध्यप्रान्त—कॉंपटी। तामील—अदिगामं, अदिगन्दी, माधवी, नागरी। तेलगू—माधवीतेग, वेदेला। लेटिन—Hiptage madablota (हिप्टेजे मेडेब्लोटा) H Benghalansis (हिप्टेजे वेंघालेंसिस)।

वर्णन—यह एक बडी जाति की झाडीनुमा वेल होती है। इसकी डालियाँ कोमल, पत्ते चम्पा के समान कोमल और रुएँदार, छाल पीली, पतली और मुलायम, फूल सफेद और अत्यन्त सुगन्धित और फल तिल के समान होते हैं और गुच्छों में आते हैं। इसके सफेद फूलोंपर कुछ पीले रङ्ग के छींटे होते हैं। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से माधवीलता चरपरी, कडवी, कसैली, मादक गन्धवाली तथा पित्त, खासी, वृण, दाह और शोप को दूर करनेवाली होती है।

भावप्रकाश के मतानुसार माधवीलता मधुर, शीतल, हल्की और त्रिदोपनाशक होती है। इसके पत्ते चर्म रोग नाशक और छाल कडवी और सुगन्धित होती है। इसके पत्तोंका रस एक उत्तम कृमिनाशक पदार्थ है। इसको गीली खुजलीपर लगाने से यह खुजली के कीटाणुओं को मार कर रोग को अच्छा कर देता है। लेकिन इसको वारम्वार रोगग्रसित स्थान पर रगडना चाहिये। इसकी छाल को पुराने सन्धिवात और दमें में देने से बहुत लाभ होता है।

उपयोग—

चर्मरोग—इसके पत्तों को पीसकर लेप करने से त्वचा के रोग मिटते हैं।

पेट के कृमि—माधवी लता का अर्क पिलाने से पेट के कृमि मर जाते हैं।

गठिया—इसके पचाग को तेल में सिद्ध करके उस तेल की मालिश करने से गठिया में लाभ होता है।

दमा—इसके पत्तों को औटाकर इनका क्वाथ पिलाने से दमे में लाभ होता है।

मानकंद

नाम—

सस्कृत—मानक, महापत्र, स्थलपद्म, छत्रपत्र, विस्तीर्ण-पर्ण इत्यादि। हिन्दी—मानकन्द। वगाल—मानकचु। मराठी—कॉंसे आलू, कॉंगालु। लेटिन—Alocasia Indica (एलोकेसिया इंडिका) Arum Indicum (एरम इण्डिकम)।

वर्णन--यह वनस्पति भारतवर्ष के बगीचों में बोई जाती है। इसकी सफेद और काली दो जातियाँ होती हैं। इसका प्रकाड मोटा होता है। इसके पत्ते २४ इञ्च से लेकर ३६ इञ्च तक लम्बे होते हैं। ये हरे और चमकीले होते हैं। इसके फूल पीले रग के रहते हैं और नर फूल सफेद रग के रहते हैं। इसकी जड़ में एक कद रहता है यह औषधि के काम में आता है तथा इसकी साग बनाकर भी बगाल में खाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव--

आयुर्वेदिक मत से मानकंद सूजन को दूर करनेवाला, शीतल, चरपरा, रक्तपित्तनाशक और स्वादिष्ट होता हैं। यह सूजन, कुष्ट, तिल्ली के रोग, सर्वांगीण शोथ और उदर रोगों में लाभदायक है।

सर्वाङ्गीण शोथ को दूर करने में इस वनस्पति की बहुत कीर्ति है। इसके कद को सुखाकर उसका चूर्ण करके उसको चाँवल के आटे के साथ उबालकर कपड़े में छान कर ४ से २० औंस तक की मात्रा में सर्वाङ्गीण शोथ के रोगियों को देते हैं और दूसरा कोई खाद्यपदार्थ नहीं देते। इसके देने से पेशाब की राह से शरीर के भीतर जमे हुए नमक का बाहर निकलना प्रारम्भ होता है। नमक के शरीर से बाहर निकल जाने से सूजन की कमी होने लगती है। क्योंकि यह मानी हुई बात है कि शरीर के भीतरी भागों में अधिक मात्रा में नमक जम जाने से ही सूजन की उत्पत्ति होती है, इसीलिये सूजन में नमक का देना मना है। उपरोक्त औषधि में मासवर्धक पदार्थ १'२५ प्रतिशत, आटा २० प्रतिशत तथा पानी ७७ प्रतिशत रहता है और चर्बी का अश बहुत थोडी मात्रा में रहता है। इस औषधि के देने के समय रोगी को दूसरा कोई खाद्य पदार्थ नहीं दिया जाता है। रोगी की अशक्ति बढने पर थोडा गरम पानी दिया जा सकता है। नमक तो एकदम मना रहता है।

बच्चों के कान से पीव बहता हो तो इसके डखल का रस कान में टपकाने से फौरन बन्द हो जाता है। इसकी जड की राख को शहद में मिलाकर लगाने से मुखक्षत आराम होते हैं। बवासीर रोग और हमेशा बनी रहनेवाली कब्जियत में इसके कद की तरकारी बहुत उपयोगी होती है। यह तरकारी मृदु विरेचक और मूत्रल होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते रक्तस्रावरोधक और सकोचक होते हैं। इसका कद बवासीर, हमेशा की कब्जियत, सर्वाङ्गीण शोथ और सधिवात की एक घरेलू दवा है। डॉक्टर कन्हैयालाल दे ने इसका एक नुस्खा बतलाया है। जो कि मनमदा के नाम से मशहूर है वह इस प्रकार है:—मानकंद ३ औंस, पीसा हुआ चावल ६ औंस और दूध तथा पानी २० औंस इन सबको काँफी औटाकर १ से लगाकर २ औंस तक की मात्रा में गठिया, सधिवात और जलोदर के रोगियों को दिया जाता है।

उपयोग—

संधिवात—काले मानकद के डखल हलकी आँच में भूनकर उनका रस निकाल कर ६ माशे रस गाय के दही में मिलाकर गरम करके ७ दिन देना चाहिये। इससे सधिवात में लाभ होता है। अगर इससे कफ और लार अधिक गिरने लगे तो घी और चाँवल खिलाना चाहिये।

वदगांठ—छोटा मानकद ठण्डे पानी में पीसकर उसका दिन में तीन चार बार लेप करने से बदगांठ फूट जाती है।

उदर रोग—काले मानकंद का चूर्ण १ तोला लेकर नारियल के रस में डालकर उसमें थोडे चावल डालकर आग पर चढाकर खीर कर लेना चाहिये। उस खीर में थोडा सा गुड मिलाकर एक दो दिन देने से विरेचन के द्वारा सब दोष निकल जाता है।

भ्रम और पित्त विकार—काले मानकन्द के डखल आग में भूंजकर उनका रस निकाल लेना चाहिये और उनमें नारियल का रस मिलाकर दोनोंका वजन ५ सेर कर लेना चाहिये। फिर उसमें आधा से रमाल्कागनीके बीज पीसकर डाल देना चाहिये और सबको एकत्र करके हल्की आचपर चढा देना चाहिये। इसके ऊपर जो तेल तिरकर आ जाय उस तेल को इकट्ठा कर लेना चाहिये। इस तेल को आखों की पलकों और मस्तक के ऊपर मालिश करके रमा देना चाहिये। इससे भ्रम और पित्तविकार में लाभ होता है।

पांडु रोग—मानकन्द के ६ माशे चूर्णको दूध के साथ लेने से पाडु रोग में लाभ होता है।

जलोदर—मानकन्द का कन्द एक तोला लेकर उसको मट्ठे में पीस कर देने से जलोदर में लाभ होता है।

अनन्तवात और शिरोरोग—काले मानकन्द के छोटे-छोटे टुकडे करके उन टुकडों को एक पोटली में बांधकर उस पोटली को तवेपर गरम करके मस्तक पर सेक करना चाहिये और फिर उन्हीं टुकडों को गरम करके उनका पट्टा मस्तक पर बाध देना चाहिये।

वात विकार—मानकन्द का कन्द एक तोला लेकर उसके छोटे टुकडे करके नारियल के रस में और दूध में उनकी खीर बनाकर खाने से सब प्रकारके वातरोग और सब प्रकार के उदर रोग नष्ट होते हैं।

कृमिरोग—मानकन्द को जलाकर उसकी ४ रत्ती राख शहद में मिलाकर चाटने से पेटके कृमि नष्ट होते हैं।

माधवालू

नामः—

संस्कृत—मध्वालु। बंगाल—मनालु। मराठी गोडाकाँदा। लेटिन—Diyscorea aculeata (डिसकोरिया एक्यूलिएटा)।

वर्णन—इस वनस्पति की एक बहुत बडी बेल होती है। इसकी छाल काले रंग की होती है। इसके पत्ते नागरवेल के पत्तों की तरह होते हैं। इसका कन्द कुछ लाल रंगका होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का सेवन करने से बवासीर में लाभ होता है।

मालती

नामः—

संस्कृत—मालती, जाति, सुमना, वासन्ती, युवती। हिन्दी—मालती। बंगाल—मालती। मराठी—मालती। गुजराती—मालती। तेलगू—गुडापेलेतिगे। लेटिन—Aganosma Dichotoma (एगेनोस्मा डिकोटोमा)। A. caryophyllata (ए. केरियोफिलेटा)

वर्णन—यह एक जाति की लता होती है। यह बेल हमेशा हरी रहती है। इसकी डालियाँ रुएँदार, पत्ते जीवन्ती के समान लम्बगोल, लाल सिरेवाले और फूल सफेद रंग के होते हैं। इसके फूलों में अत्यन्त खुशबू आती है। गर्मी के दिनों में ये अत्यन्त मनमोहक रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदके मतसे यह वनस्पति वमनकारक, कृमि नाशक और कुष्ट, चर्म रोग, व्रण, सूजन, कान से पीव बहना, मुख क्षत तथा ब्रोंकाइटीज में लाभदायक है। इसके फूल नेत्र रोगों में लाभदायक होते हैं और इसके पत्ते कफ और पित्त को दूर करनेवाले होते हैं। इसके फूलों के चूर्ण में ६ माशे शक्कर मिलाकर लेनेसे मासिक धर्म में प्रमाण से अधिक रुधिर का निकलना बन्द हो जाता है। रुधिर दोष और चर्म रोगों में इसका उपयोग विशेष हितकारी होता है।

मालती (२)

नामः—

संस्कृत—मालती। तेलगू—पालामेल। लेटिन—Aganosma Calycina (एगेनोस्मा केलिसिना)

वर्णन—यह मालती ही की एक दूसरी जाति होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मतसे इसका पौधा गरम और पौष्टिक होता है। यह पित्त और रक्त की खराबी को दूर करता है।

मार्घीफल

नामः—

पजाव—मार्घीफल, पिलाक, व्हेड्डर, कवरी बूटी, कँडियारी। लेटिन–Solanum gracilipes (सोलेनम ग्रेसिलाइप्स)।

वर्णन—यह एक झाडीनुमा वनस्पति होती है। जो पजाव, सिंध और बलूचिस्तान में विशेष तौर से पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके फल और पत्तों का रस कर्णप्रदाह को दूर करने के लिये उपयोग में लिया जाता है।

माषपर्नी

नाम—

संस्कृत—माषपर्नी, कृष्णवृन्ता, पर्णिनि, काम्बोजी इत्यादि। हिंदी—माषपर्णी, मशवन, मशोनी, वन-उडद, जगली उडद। बगाल—माशानी। मराठी—रान उडिद। गुजराती—वेरियोवेलो। लेटिन—Teramnus Labialis (टेरेमनस लेबियेलिस)।

वर्णन—यह उडद की एक जगली जाति होती है। इसका पौधा, फल, फूल सब उडद के ही समान होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से माषपर्णी कामोद्दीपक, पौष्टिक, बलकारक कान्तिवर्धक, स्तनों में दूध पैदा करनेवाली, केशोंको उत्पन्न करनेवाली, स्निग्ध, वात पित्तनाशक और शीतल होती है।

माषपर्णी वीर्यवर्द्धक, कामोद्दीपक, कडवी, बलकारक, पौष्टिक, शीतल, रूखी, कफकारक, रक्त दोष-नाशक, मलरोधक तथा त्रिदोष ज्वर, पित्त, रक्तपित्त, क्षय, खाँसी, वात, शोष, दाह, वातपित्त और रुधिर विकार को हरनेवाली होती है।

इस वनस्पति में कुछ सकोचक धर्म होता है। लारियूनियन में यह जुकाम और कफ के साथ खून जाने की बीमारी में उपयोग में ली जाती है।

इसकी मात्रा दो माशे की होती है।

मारट्टूवोट्टू

नामः—

तामील—मारट्टूवोट्टू, फुल्लुरी, अडागन, कुवींचाइ, सिगारी। लेटिन—Loranthus Elasticus (लोरेंथस इलेस्टिकस)।

वर्णन—यह एक बहुशाखी झाड़ी होती है। जो पश्चिमीघाट और मद्रास में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति गर्भपात को रोकने में बहुत उपयोगी मानी जाती है। यह गुर्दे की विकृति और मूत्राशय की पथरी में लाभदायक होती है।

मारी (माड़)

नामः—

संस्कृत—घोजावृक्ष, दीर्घा, मदद्रुम, मद्यद्रुम, मोहकरी, राजू। हिन्दी—मारी, मारीका झाड। गुजराती—शकर जटा, शिवजटा। पोर बन्दर—मेरवाजटा। बबई—बिरलिमहार। तामील—अदम। लेटिन—Caryota urens (केरयोटा यूरेन्स)।

वर्णन—यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव

आयुर्वेदिक मत से इसका फल कडवा, शीतल, प्यास और थकावट को दूर करनेवाला और वात, पित्त और कफ को पैदा करनेवाला होता है।

इसकी ताजा ताडी का रस एक गिलास की मात्रा में बडे सबेरे लेने से मृदुविरेचक का काम करता है। इसके फल को घिसकर सिर पर लगाने से आधाशीशी में लाभ होता है।

मारवेल

नामः—

मराठी—मारवेल, मारवीवेल, शेंदोरी, शेंडवेल, जटी। गोआ—घरफूल। लेटिन—Cosmostigma Racemosum (कासमोस्टिग्मा रेसीमोसम)।

पश्चात् शक्ति को फिर से प्राप्त करने के लिये इसका काढा चालू रखा जाता है। ज्वर में अगर पेशाब थोड़ा और जलनयुक्त होता हो तो इसके पत्तों के रस में भुई आँवले का रस मिलाकर दिया जाता है। इसके फूलों की राख दही में मिलाकर दाह और सूखी खुजली पर लगाने के काम में ली जाती है। इससे बहुत लाभ होता है।

छोटा नागपुर की मुंडा जाति के लोग इसके बीजों को अथवा फूलों को कुचल कर करज के तेल में मिलाकर सूखी खुजली और छोटे बच्चों के सिर पर होनेवाले फोडों पर लगाते हैं। जिन स्त्रियों के स्तनों में सूजन आ जाने से दूध नहीं उतरता है उनके स्तनों पर इसकी जड को पीसकर लेप करते हैं।

मेडागास्कर में यह पौधा ऋतुश्राव नियामक, ज्वरनाशक, नींद लानेवाला, कडुआ, मृदुविरेचक और शोधक माना जाता है। वहाँ के लोग ज्वर, चर्मरोग और नष्टार्तव की बीमारी में इसको प्रयोग में लेते है।

ब्राझील में इसके पत्ते सन्धियों की सूजन को दूर करने के लिये काम में लिये जाते हैं।

मालन कुरी

नामः—

हिन्दी—मालनकुरी। बुन्देल खड—गुरचवा। मध्यप्रान्त—काकरिया, गुडागड्डी, मालघी। गुजराती, अड्वाउनागली। कुमाऊँ—माडवी। मराठी—रानचानी। राजपूताना—मडवा। तेलगू—कुरोर। लेटिन—Eleusine Indica (इल्यूजन इंडिका)।

वर्णन—यह एक मंडवे की जाति का अनाज होता है। यह सारे भारतवर्षमें पैदा होता है।

इसके सारे पौधे का काढ़ा बच्चों के आक्षेप रोग को दूर करने के लिये दिया जाता है। इसकी जड़ पसीना लानेवाली और ज्वर-नाशक होती है। यकृत के विकारों में इसका बहुत उपयोग होता है।

माणिक

नामः—

संस्कृत—माणिक, पद्मराग, लोहित, माणिक्य, शृङ्गारि, रत्ननायक, लक्ष्मीपुष्प इत्यादि। हिन्दी—माणिक, लालमाणिक। बंगाल—माणिक। मराठी—माणिक। गुजराती—माणक, चुन्नी। तेलगू—माणिक्यम्।

फ़ारसी–लाल बदख्शानि। अरबी–लाल। अंग्रेजी–Ruby (रूबी)। लेटिन—Rubinus (रूबीनस)।

वर्णन—माणिक नौ रत्नों में से एक रत्न होता है। इसका रङ्ग लाल होता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। कहा जाता है कि सिंहल देश में लाल रङ्ग का पद्मराग नामक रत्न उत्पन्न होता है वह सबसे श्रेष्ठ होता है। एक कुरुविन्द नामक माणिक होता है इसमें कुछ पीली झाई होती है यह मध्यम होता है और तुम्बरू देश में होनेवाला नीले रङ्ग का माणिक जिसको नीलगन्ध-मणि कहते हैं सबसे निकृष्ट होता है।

माणिककी परीक्षा—आयुर्वेद में लिखा हुआ है कि जो प्रातःकाल के सूर्य की किरणों के स्पर्श करते ही अपनी लाल कांति को बिखेर देता है और जो अपने धारण करनेवालों को हमेशा प्रसन्न रखता है वह पद्मराग रत्न सर्व श्रेष्ठ होता है। जो अपनेसे सौगुने दूधमें पड़ा हुआ भी चारों ओर अपनी लाल कान्ति को फैलाता है वह पद्मराग रत्न अत्यन्त उत्तम होता है। जो माणिक बिना खिले हुए कमल में रखने से तत्काल उस कमल को खिला दे वह माणिक देवताओं को भी दुर्लभ है, वह सम्पूर्ण अरिष्टों को शान्त करनेवाला और सम्पूर्ण सम्पत्तियों को देनेवाला होता है। जो माणिक पत्थर पर घिसने से अत्यन्त शोभा वाला हो और वजन में कम न हो उसी को सबसे शुद्ध माणिक समझना चाहिये।

ऐसे उत्तम माणिक को रखनेवाला शत्रुओं के बीच में रहने और प्रमाद करने पर भी इस महा गुण शाली पद्मराग मणि के प्रभाव से कभी आपत्ति को प्राप्त नहीं होता। उसके ऊपर दुष्ट ग्रहों का कोई असर नहीं पड़ता और उसके घर में हमेशा सम्पदा विराजमान रहती है।

माणिक का मूल्य उसकी कान्ति और उसके वजन पर निर्भर रहता है। यह रत्न एक माशे से लेकर ५ तोले तक का होता है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मत से माणिक लेखन, शीतल, कसेला, मधुर, सारक, नेत्रों को हित-कारी, मङ्गलकारक तथा दाह, दुष्ट ग्रह और विष प्रभाव को नष्ट करनेवाला होता है।

माणिक मधुर, स्निग्ध, वात-विनाशक, रसायन, कफ-नाशक, दीपन, वीर्यवर्धक तथा शूल और क्षय रोग को दूर करनेवाला होता है।

माणिक मधुर, स्निग्ध, वात-पित्त-नाशक, रत्न के प्रयोग में श्रेष्ठ और रसायन होता है।

माणिक, मधुर, स्निग्ध, वातनाशक, रसायन पित्तनाशक और व्रण को दूर करनेवाला होता है।

मालकंद

नामः—

संस्कृत—मालाकन्द, बलकन्द, पत्रिकन्द, त्रिशिखदला, ग्रन्थिलता, कन्दलता।

गुणदोष और प्रभाव—

मालकन्द तीक्ष्ण, गंडमाला रोग को नष्ट करनेवाला, दीपन, गुल्मनाशक तथा वात और कफ को नष्ट करनेवाला होता है।

मिचाई

नामः—

हिन्दी—मिचाई। गुजराती—गरियो। कोकण—वारीक मँवरी। लेटिन—Calonyction Muricatum (केलोनिक्शन म्यूरिकेटम)।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का वर्णन और गुणदोष वारीक भँवरी के नाम से इस ग्रन्थ के सातवें भाग में पृष्ठ १८४३ पर दिया गया है।

मिट्टी

नामः—

संस्कृत—मृत्तिका, मृदा, क्षेत्रजा इत्यादि। हिन्दी—मिट्टी। बंगाल—माटी। गुजराती—माटी, गारो। इंग्लिश—Earth, Clay। लेटिन—Hydrasis Silicate of Aluminum (हाईड्रेसिस सिलिकेट आफ एल्यूमिनियम)।

वर्णन—मिट्टी पृथ्वी में सब दूर पैदा होती है। यह पृथ्वी का एक प्रधान तत्व है। इसको सब कोई जानते हैं। यह काली, लाल, पीली, भूरी आदि कई रंगों की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

मनुष्य देह की और सारे जगत् की उत्पत्ति के अदर जो पाँच मूलभूत तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) रहते हैं, उनमें मिट्टी पार्थिव तत्व का एक प्रधान अग होता है। इसलिये मानवी शरीर की चिकित्सा में मिट्टी एक बहुमूल्य वस्तु है। संसार में ज्यों-ज्यों प्राकृतिक चिकित्सा का विकास होता जाता है त्यों त्यों मिट्टी की उपयोगिता अधिक-अधिक प्रकाश में आती जा रही है। प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रथों में मिट्टी की उपयोगिता पर निम्नलिखित अवतरण दिये गये हैं।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से काली मिट्टी घाव, दाह, रुधिर विकार, प्रदर, कफ, पित्त, क्षत और मूत्र-कृच्छ्र को दूर करती है। इसका लेप करने से भिलामें से उत्पन्न हुई सूजन दूर होती है।

कीचड़—दाह, रक्तपित्त, रुधिरविकार और सूजन को दूर करता है। यह शीतल, रूखा विषनाशक, वेदनानाशक, दाह को शान्त करनेवाला, सूजन को दूर करनेवाला, व्रणशोधक और व्रणरोपक होता है।

बालू रेत या सिका—मधुर, शीतल, लेखन, तापनाशक तथा अग्नि से जले हुए घाव, व्रण, उरक्षत, श्रम और कुष्ट का नाश करती है। इसका सेंक वातनाशक होता है।

मनुष्य शरीर जिन पाँच मूलभूत तत्वों का बना हुआ है वे तत्व जब तक नियत परिमाण में शरीर के अदर रहते हैं तब तक शरीर स्वस्थ और नीरोग रहता है। जब इन तत्वों में कमी ज्यादा हो जाती है तभी रोग का सूत्रपात होता है और प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञानवालों का विश्वास है कि उन तत्वों की कमीवेशी को दूर कर देना ही रोग की वास्तविक चिकित्सा है।

मिट्टी मानवी शरीर की इसी कमी वेशी को व्यवस्थित करने में बहुत सहायता पहुँचाती है और इसीलिये प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण वस्तु मानी गई है।

महात्मा गाधी का कथन है कि यह शरीर इसी मिट्टी का बना हुआ है और एक दिन इसी मिट्टी में यह मिल जायगा। इसीलिये मुझे इस मिट्टी की पट्टी को सिर पर और पेट पर रक्खे हुए काम करने में बड़ा अच्छा लगता है। मुझे डाक्टरी इलाज में उतना विश्वास नहीं है जितना इस मिट्टी की चिकित्सा में है। मिट्टी शरीर की सारी खराबियों को बाहर खींच लेती है। इसका गुण अद्भुत है इसमें एक ईश्वरीय चमत्कार छिपा बैठा है।

आश्रम के निवासियों का कथन है कि बापू स्वय मिट्टी का बहुत प्रयोग करते हैं। ऐसा कोई दिन खाली नहीं जाता जब वे मिट्टी की पट्टी सिर या पेट पर नहीं रखते हों। क्या गर्मी, क्या बरसात, क्या जाड़ा सभी दिनों में वे इसका प्रयोग करते हैं। उनके लिये यह रामबाण दवा है। पेट में कुछ खराबी है तो मिट्टी का प्रयोग, सिर में दर्द है तो मिट्टी का प्रयोग, चेचक है तो मिट्टी का प्रयोग, बुखार है तो मिट्टी का प्रयोग और यदि खून का दबाव बढ़ा तो भी मिट्टी का ही प्रयोग चल रहा है।

जेठ, वैशाख की जब भयकर लू चलती है और सूरज आग उगलता है तब उससे बचने के लिये बापू गीली मिट्टी की पट्टी बाँधकर बड़ी तेजी से काम करते है। कोई फोड़ा-फुन्सी और घाव हुआ तो उस पर भी मिट्टी की पट्टी बाँधते हैं। आश्रम के मरीजों की भी वे इस गीली मिट्टी की पट्टी से ही चिकित्सा करते हैं। उनका विश्वास है कि कठिन से कठिन रोग भी इस दिव्य चिकित्सा से आराम किये जा सकते हैं।

मिट्टी की पट्टी बाँधने की विधि—जमीन में से दो तीन हाथ की गहराई के नीचे की मिट्टी निकालकर उसे बारीक चलनी में चालकर गीली कर लेते हैं और एक मिट्टी की हाँडी में रख लेते हैं। आवश्यकता के अनुसार मिट्टी को हाँडी में से निकाल कर कपड़े में रखकर नीचे से मिट्टी पर कपड़ा लपेट कर सिर या पेड़ू पर बापू गीली मिट्टी की पट्टी बाँधते हैं। कपड़ा गदा न हो इसलिये कपड़े में मिट्टी बाँधते समय नीचे लकड़ी की एक मामूली सी पट्टी रख ली जाती है। इससे पट्टी बाँधने में भी सुविधा होती है।

भिन्न-भिन्न रोगों पर मिट्टी के प्रयोग—

सर्प-दंश और मिट्टी—एडल्फ-जस्ट नामक एक जर्मन विद्वान लिखता है कि केझरटा नामक शहर के नजदीक राँकेला नामक ग्राम की रहनेवाली एक २० वर्ष की जवान लडकी को केझरटा के अस्पताल में लाये परन्तु जब वह वहाँ पहुँची तब उसका पैर बहुत सूज गया था, वह बेहोश हो गई थी और उसकी नाजुक हालत को देखकर वहाँ के मेडिकल ऑफिसर ने कह दिया कि यह रोगी अब बच नहीं सकता और इसके लिये कोई उपाय सम्भव नहीं है। तब निराश होकर उसके कुटुम्बी फिर उसको गाँव में ले गये और किसी के कहने से अपनी बाड़ी में एक गड्ढा खोदकर उस लडकी को नगी करके उस गड्ढे में लिटा दिया और सिर्फ मुँह का भाग खुला रख के सारे शरीर को मिट्टी में दाब दिया। पूरे २४ घंटे तक उसको उसमें दबाये रखा और २४ घटे के बाद जब उसको निकाला तब वह बिल्कुल स्वस्थ हाल्त में थी।

उपरोक्त विद्वान लिखता है कि साँप के जहर को नष्ट करने का मिट्टी मे कितना गुण रहता है यह उपरोक्त घटना से मालूम होता है और भी इस प्रकार की कुछ घटनाएँ देखने में आई हैं और उन पर से मैं यह कह सकता हूँ कि सर्प दश के ऐसे रोगियों को जिनके जीवन से निराशा हो गई हो इस प्रकार मिट्टी के अन्दर डटकर प्रयोग करना चाहिये। यह खयाल रखना चाहिये जिस जमीन में रोगी को दबाया जाय वह सूखी अथवा गरम न होना चाहिये बल्कि ठढी और भीनी होना चाहिये और सिर हमेशा खुला रहना चाहिये। सर्प दंश के सिवाय दूसरे प्रकार के जहर खाये हुए अथवा दूसरे प्रकार के प्राणघातक जहरीले जानवरों से ग्रसित अथवा बिजली के पडने से मरणासन्न मनुष्यों को भी अथवा हैजा या टाइफाइड से हुए मरणासन्न मनुष्यों को भी इस प्रकार मिट्टी मे दबाने से बहुत लाभ हो सकता है।

बिच्छू, मधुमक्खी वगैरह कम विषवाले प्राणियों से दशित लोगों का सारा शरीर जमीन में डाटने की जरूरत नहीं होती बल्कि उनके उसी हिस्से को जमीन में दबाना चाहिये जिस हिस्से पर काटा हो।

पागल कुत्ते के विष पर भी यह प्रयोग कामयाब हो सकता है।

चर्म रोग, रक्तरोग और मिट्टी—

शरीर के ऊपर होनेवाले फोडे-फुन्सी, विद्रधि, कारबकल, अग्नि दग्ध व्रण, श्वेत कुष्ट, गलित कुष्ट, खाज-खुजली इत्यादि खून और चर्म रोगों पर भी गीली मिट्टी का प्रयोग एक प्राकृतिक उपाय है जो बहुत अधिक सफल होता है। इस प्रकार के रोग अक्सर शरीर की मिट्टी सडने से ही पैदा होते हैं और उस सडी हुई मिट्टी के स्थान पर नई मिट्टी को पूरने से ही वे दूर हो सकते हैं। रक्त के अन्दर जो अनेक प्रकार के दुर्गन्धियुक्त जहरीले तत्व सचित हो जाते हैं और जिनकी वजह से अनेक प्रकार के चर्म रोग होते हैं वे गीली मिट्टी के लेप से दूर हो जाते हैं। क्योंकि शरीर के भीतरी भाग में सचित दोषों को बाहर खींच निकालने को मिट्टी में अद्भुत शक्ति रहती है।

मिट्‌टी में जिस प्रकार दुर्गन्ध नाशक, कृमिनाशक और विषनाशक गुण रहते हैं उसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करनेवाले विजातीय द्रव्यों के सचय से पैदा हुई गर्मी को खींच लेने

का ग्राही गुण भी रहता है। इसलिये मेचक, योदरी, सूजन, मस्तिष्क और नेत्र के विकार इत्यादि शरीर में होनेवाले अनेक रोगों को दूर करने की शक्ति भी इसमें रहती है।

सुप्रसिद्ध बौद्ध-भिक्षु भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने अपने मिट्टी के अनुभव बतलाते हुए इसी प्रकार की कुछ घटनाओं का उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं कि—

(१) सन् १९२६ में मैं स्वामी सत्यदेव के साथ कलकत्ते गया हुआ था उन दिनों मेरी पिंडली में एक बड़ा घाव हो गया था जो बहुत तकलीफ दे रहा था। मैंने उस पर कई चीजें लगाईं लेकिन किसी से कोई लाभ नहीं हुआ, दिन रात उसमें से पीव बहता रहता था।

एक दिन जिन सद्गृहस्थ के यहाँ हम ठहरे थे उन्होंने मेरे से पूछा कि तुम लँगड़ाकर क्यों चलते हो, तब अपना जख्म उनको दिखाया और पूछा कि इस पर क्या लगाऊँ? उन्होंने कहा कि नीचे कमरे में जाकर देख लो। आलमारी दवाइयोंसे भरी पड़ी है उनमे से कुछ लगाना चाहो लगाओ और यदि मेरी अनुभूत दवा करना चाहो तो मैं बतला दूँ। तब मैंने वह अनुभूत दवा ही करने की इच्छा प्रगट की। इस पर उन्होंने कहा कि जीने से ऊपर चढ जाओ और वहाँ टकी में बहुत सी मिट्टी पड़ी है। उसमें हाथ डालकर दिन में जब जब इच्छा हो उस मिट्टी से अपने जखम को पोत लो। मैंने उनकी बात मानी, ऊपर एक बड़ी भारी लोहे की टकी में कई मन मिट्टी घुली हुई पड़ी थी। मैंने उसमें से थोड़ी सी लेकर अपने जखम पर पोत ली। पहिली बार लगाते ही जखम की सफाई शुरू हो गई। उसके बाद जब-जब मिट्टी सूख जाती मैं उस पर और नई मिट्टी चढा देता। यह देखकर मुझे ताज्जुब हुआ कि जिस जखम ने मेरी अकल हैरान कर रखी थी ३।४ दिन के मिट्टी के प्रयोग से वह जख्म न जाने कहाँ गया।

(२) सन् १९३३ में मैं जर्मनी गया। वहाँ के प्रसिद्ध दार्शनिक डॉक्टर ठालके के यहाँ मैं ठहरा। उनका एक १४ वर्ष का लड़का था उसकी सब ऊँगलियें पक रही थीं और उनमें से पीव बह रहा था। बालक शर्म के मारे उन ऊँगलियों को छिपाये रखता था। एक दिन मैंने उसको देख लिया और मुझे वही कलकत्ते वाली दवा मिट्टी की याद आ गई। उसी मकान में एक मिट्टी का डब्बा पड़ा हुआ था जिसमें किसी प्राकृतिक चिकित्सालय के द्वारा साफ की हुई मिट्टी भरी थी। मैंने उसमें से थोड़ी सी मिट्टी तश्तरी में घोलकर उस लड़के की ऊँगलियों पर पोत दी। पहिले ही दिन की पुताई से उसको इतना लाभ हुआ कि फिर मुझे कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ी। वह सुबह शाम अपनी ऊँगलियों पर स्वय मिट्टी पोत लेता और रोज खुशी खुशी आकर बतलाता कि उसकी ऊँगलियाँ कितनी साफ हो गई हैं। कुछ ही दिनों में उसकी सब ऊँगलियाँ साफ हो गईं।

हैजा और मिट्टी—यह बात अब करीब करीब साबित हो गई है कि हैजे का रोग, सड़ा हुआ अन्न खाने और गंदा तथा दूषित पानी पीने से होता है। क्योंकि इस रोग को पैदा करनेवाले कोमावेसिलस नामक कीटाणु इसी प्रकार के गदे भोजन और पानी के द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं। काली मिट्टी के अन्दर ऐसे जतुओं को नष्ट करने की शक्ति रहती है। इसलिये १ तोला काली मिट्टी को उबाल कर छाने हुए स्वच्छ १ तोला पानी में घोलकर दो-दो घटे के अतर पर पिलाने से हैजे के दस्त उल्टी वगैरह उपद्रव तत्काल बन्द हो जाते हैं।

(जगलनी जड़ी बूटी)

बौद्धभिक्षुक आनन्द-कौसल्यायन लिखते हैं कि मेरे एक मित्र को शाम को दस्त और उल्टी की एक साथ शिकायत हो गई, पेट में वायु भर गया, पेट को बजाने पर ढोल की तरह बजता था। डाक्टर को बुलाने की व्यवस्था हुई लेकिन रात ज्यादा होने से डाक्टर को बुलाना सभव न था। तब मैंने गरम पानी में नींबू निचोड कर उसको पिलाया और पेड़ू पर गीली मिट्टी की आधा इच मोटी रोटी रखने को कहा। रात में केवल दो बार मिट्टी की रोटी रखनी पडी। प्रातःकाल रोगी बिलकुल चंगा हो गया। डाक्टर के यहाँ जाना ही न पड़ा।

(२) एक लड़के को जो मेरे निकट रहता है मैंने रात को बेचैन पाया। वह कभी कमरे से बाहर जाता और कभी भीतर आता था। पूछने पर पता लगा कि उसे पेशाब नहीं उतर रहा है और बहुत वेदना हो रही है। मैं कुछ घबराया लेकिन फिर कुछ सोचकर पास ही के अखाड़े से अपना भिक्षापात्र भर कर मिट्टी ले आया उसे पानी से अच्छी तरह घूदकर रोटी बनाकर उसे नाभि से नीचे पेड़ू पर रख दी। थोडी ही देर में लड़के का पेशाब उतर आया और वह रात भर आराम से सोया।

मिट्टी और नेत्र रोग—एक अमेरिकन डाक्टर लिखते हैं कि एक मनुष्य कुछ समय से एक आँख से बिलकुल अंधा हो गया था। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की तमाम युक्तियाँ और चिकित्सा उसके ऊपर अजमाई लेकिन उनसे कुछ लाभ नहीं हुआ। अत में उसकी आँखो पर मिट्टी का लेप किया जाने लगा। जिससे ऐसा आश्चर्यजनक लाभ हुआ कि कुछ ही सप्ताहों में उसकी आँख बिलकुल अच्छी हो गई।

मिट्टी की गादी—(Earth Compress) प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान में हर एक प्रकार के रोगों को दूर करने के लिये मिट्टी की गादी अथवा अर्थ कॉम्प्रेस का उपयोग किया जाता है। इस कार्य के लिये शुद्ध और साफ जमीन में से दो-तीन हाथ गहराई से मिट्टी निकाली जाती है और उस मिट्टी को साफ करके छानकर थोड़े पानी में मिलाकर उसकी रोटी या गादी बनाई जाती है। इस रोटी को हाथ, पैर, शरीर, गला, पेट, पेड़ू, सिर वगैरह शरीर के जिस भाग में दर्द होता है उस भाग पर रखकर उसके ऊपर एक सन का कपड़ा जो उस मिट्टी की गादी से कुछ बडा होता है रक्खा जाता है। उसके बाद उस पर एक ऊन का कपडा रखकर फिर उस पर दूसरे कपडे की पट्टी चढा दी जाती है। इन सब कपडों को रखने का उद्देश्य मिट्टी को अपने स्थान से खिसकने न देना होता है। इस पट्टी के दोनों किनारों को सेफ्टीपिन से मजबूत कस दिया जाता है।

इस मिट्टी की पट्टी को प्रयोग करने का अनुकूल समय रात्रि का होता है। लेकिन दिन के टाइम में भी अगर रोगी बिस्तर पर सोया हुआ हो तो इसका प्रयोग किया जा सकता है।

यह मिट्टी की पट्टी कम से कम दो घटे तक रक्खी जाती है। इसको अधिक समय या सारी रात भर भी रक्खी जाय तो कोई हानि नहीं होती। मगर यदि किसी को इसकी वजह से नींद आने में हरकत पडती हो तो उसको निकाल देना चाहिये। किसी भी प्रकार की वेदना का वेग जब बहुत तीव्र हालत में हो तब इस मिट्टी की पट्टी का उपयोग बार-बार करना चाहिये अर्थात् उसको

थोड़ी थोड़ी देर में बदल देना चाहिये। ज्यों-ज्यों वेदना कम होती जाय त्यों त्यों इसका प्रयोग भी कम करना चाहिये।

यह अर्थ कॉम्प्रेस या मिट्टी की रोटी वेदनायुक्त भागों की गरमी को बाहर खींच लेती है। इस वजह से शरीर की वह वेदना चाहे बाह्य हो चाहे अतरंग बन्द हो जाती है।

शरीर के कौन से रोग पर या कौन से अंग पर मिट्टी की पट्टी बांधी जाय इस विषय को किसी प्राकृतिक चिकित्सा के ग्रन्थ में विस्तार के साथ देखा जा सकता है। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि प्रत्येक प्रकार की वेदना और रोग में इसका उपयोग किया जा सकता है। डिप्थीरिया रोग में गले के ऊपर, अधिक उत्तापवाले ज्वर में मस्तक के ऊपर, उदर और मूत्रनाली संबंध रोगों में पेडू के ऊपर, व्रण, घाव वगैरह में वेदना के स्थान पर इस मिट्टी की गादी का प्रयोग किया जा सकता है। इस अर्थ काम्प्रेस या मिट्टी की गादी के प्रयोग से कई प्रकार की स्थानीय वेदना जादू की तरह उड़ जाती है।

बालूपर डाक्टर लुइकूने के विचार—

बालू के विषय में विवेचन करते हुए जर्मनी के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉक्टर लुइकूने लिखते हैं कि:—

"एक चीज का नाम मैं यहाँ खास तौर पर लेना चाहता हूँ जो मनुष्य शरीर के लिये बहुत जरूरी है पर जिसे लोग बिलकुल बेफायदा समझते हैं। यह चीज और कुछ नहीं सिर्फ बालू है। बालू से पाचन-शक्ति में निस्सन्देह सहायता पहुँचती है।

जानवरों के बारे में खूब जाँच करने के बाद मैं इस बात के निश्चय करने में लग गया कि बालू के छोटे-छोटे कणों को खाने से मनुष्य शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस जाँच के जो नतीजे निकले हैं उनसे मुझे बड़ा सतोष हुआ है और मैं उन्हें यहाँ पर प्रकाशित कर देना चाहता हूँ। मैंने समुद्र के किनारे से बढ़िया से बढ़िया बालू चुनकर मँगवाई पर नदी के किनारेवाली बढ़िया बालू से भी काम चल सकता है। मैंने यह बालू जर्मन समुद्र के किनारे पर से मंगवाई थी। यह बालू इतनी उम्दा और महीन थी कि आसानी से निगली जा सकती थी। इस तरह की बालू में सक्रामक या छूतवाली बीमारियों के जहर को मारने की शक्ति भी रहती है। यह अजमाइश आप खुद कर सकते हैं। जिस कमरे की हवा खराब वा दुर्गन्धित हो गई हो उसमें दो-चार मुट्ठी बालू को तपे हुए तवे पर रखकर गरम कीजिये आपको यह देखकर ताज्जुब होगा कि इस उपाय से कमरे की दुर्गंध कितनी जल्दी गायब हो जाती है। जब तक यह अजमाइश जारी रहे तब तक कमरे की खिडकियों और दरवाजों को बन्द रखना चाहिये जिससे कि बालू का असर पूरी तरह से देखा जा सके।

बालूदार प्रदेशों की हवा हमेशा साफ रहती है। क्योंकि वहाँ बालू प्रकृति की ओर से छूत और जहर मारनेवाली हवा का काम करती है। अगर बालू में किसी कदर चिकनी मिट्टी मिली होगी तो उसका असर इतना अच्छा न होगा।

बालू का असर क्या होता है इसका निश्चय करने के विचारसे मैंने कई प्रयोग किये हैं और उसमें अच्छी सफलता मिली है। मैं यहाँ इस बातका एक अच्छा उदाहरण देना चाहता हूँ।

एक स्त्री को युवा अवस्था ही से कोष्ट बद्ध का रोग था। उसने कई तरह के इलाज किये पर किसी से भी कुछ फायदा न हुआ। ५० वर्ष की उम्र से उसकी यह शिकायत इतनी बढ गयी और उसे इतनी तकलीफ होने लगी कि उसकी हालत बहुत ही खतरनाक दिखलाई पडने लगी। किसी तरह के जुलाब से भी उसका पेट साफ न होता था। कभी कभी तो हफ्तों तक और एक बार तो लगातार ५ हफ्ते तक उसे दस्त न हुआ। जब वह मेरे पास आई तो मैंने उससे कहा कि दिन में ४ या ५ बार पेडू स्नान ले और दलिया तथा खट्टे फल खा। इस इलाजसे कोष्ट बद्धतामें जरूर फायदा होता है। पर इस स्त्री के सम्बन्ध में यह इलाज काफी नहीं था। इसलिये मैंने यह आजमाइश की कि अगर खाने के बाद ही उस स्त्री को १ चुटकी समुद्री बालू दिन में २।३ बार दी जाय तो उससे क्या नतीजा होगा। जैसी आशा न थी उससे कहीं अच्छा नतीजा बडी तेजी के साथ दिखलाई दिया। दूसरे ही दिन उसके पेट की आँतें ढीली पड गई। उसे पहिले तो काले रग का पाखाना सख्त और गोल हुआ पर बाद को बिलकुल ठीक ढग का होने लगा। जिस तरहका स्नान और जिस तरह का भोजन उसे पहिले बतलाया गया था वही जारी रक्खा गया।

अब आप देख सकते हैं कि बालू का कितना अच्छा असर उस स्त्री की बीमारी पर पडा। निस्सदेह बालू पाचन शक्ति को टीक हालत में रखने और उसे सुधारने का एक अच्छा कुदरती जरिया है।

अपनी पुरानी प्रणाली के अनुसार डाक्टर और दूसरे चिकित्सक इस बातको कभी न मानेंगे कि बालू खाने से कुछ फायदा हो सकता है। क्योंकि यह पाचन क्रिया प्रणाली में घुल नहीं सकती। मगर यह मेरा निजी अनुभव है और मैं यह कह सकता हू कि मानवी शरीर के लिये यह बहुत उपयोगी वस्तु है।

सुप्रसिद्ध विद्वान बेनी डिक्ट लिस्टने मिट्टी की उपयोगितापर एक लेख लिखा है जो हिन्दी के जीवन सखा नामक पत्र मे प्रकाशित हुआ है इसमें मिट्टी के सम्बन्ध में बहुत उपयोगी और कुछ भाव पूर्ण जानकारी दी है उसे हम यहां उद्धृत करते हैं।

बाइबिलमें लिखा है कि "खुदा ने धरती की धूलसे आदमी का पुतला बनाया, उसके नथनोंमें प्राण फूंके और वह सजीव प्राणी हो गया।"

तो आदमी मिट्टी का ही बना है।

घाव और हर प्रकार के चर्म रोग के लिये गीली मिट्टी असली प्राकृतिक मरहम है। मिट्टी के बने शरीर की क्षति की पूर्ति मिट्टी से ही हो जाती है।

मैंने कई बार यात्रियों से सुना है कि वहशी घावों और त्वचा के रोगपर गीली मिट्टी का प्रयोग करते है और शीघ्र रोग से मुक्ति पा लेते हैं।

पशु भी घावोंपर मिट्टी का ही प्रयोग करते हैं। हाथी के शरीरपर यदि डाली वगैरा की रगड़ से कभी घाव हो जाता है तो यह तुरन्त अपनी लार से मिट्टी गीली करता है और उसे सानकर मुलायम मुलायम हल्वे सी बनाकर घावपर थोप देता है।

पशुओं के गीली मिट्टी का प्रयोग बराबर होता है गाय—बैल के खुर पकने पर उनपर लोग गीली मिट्टी बाँधते या उन्हें कादे में खड़ा रखते हैं। हम अब फिर से जब प्रकृति के नियमों के अनुसार रहने लगेंगे, प्रकृति की आवाजपर कान देने लगेंगे, तब हमें गीली मिट्टी को अपनाना ही होगा। यदि हमने इसे अपना लिया तो समझ लीजिये हमने एक बड़ी सिद्धी प्राप्त कर ली।

मिट्टी का प्रयोग करनेवाले को किसी प्रकार के घाव उसके प्रदाह, सूजन तथा ज्वर से कभी कोई खतरा नहीं हुआ, न उसके डर से वे आतंकित ही होते हैं। यदि मिट्टी का प्रयोग किया जाय तो चीर फाड़ की जरूरत ही न रहे, न उनसे किसीको कष्ट ही उठाना पड़े। हर प्रकारके घाव और चर्मरोग मिट्टी के प्रयोग से कम-से-कम समय में बिना किसी कष्ट अथवा दर्द के अच्छे होते हैं। सर्वथा प्राकृतिक गीली मिट्टी की पुल्टिस के गुण अनन्त हैं। घाव, फोड़े-फुन्सी और चर्म रोग तो इसके प्रयोग से यों ही अच्छे हो जाते हैं। युद्ध में भी मिट्टी की पुल्टिस विशेष उपयोगी हो सकती है।

शरीरपर किसी तरह की चोट लग जाय, घाव हो जाय, कट जाय, बर्छी भाले से लग जाय, फोड़े-फुंसी, दाद, खाज, उकवत हो जाय, सूजन आ जाय, बिच्छू-बर्रे या साँप डस ले, जानवर काट खाय, रक्त में जहर फैल जाय, घाव दूषित हो जाय, नाक मुँह पर फफोले पड़ जाय, सेहुआ हो जाय, सिरमें रूसी पड़ जाय, कोढ़ हो जाय, हड्डी टूट जाय, तो रोग के स्थानपर मिट्टी को गीली करके या नदी नाले की गीली चिकनी मिट्टी बांधनी चाहिये। मिट्टी बांधते ही शीतलता आती है, आरामका अनुभव होता है और लाभ तत्काल होता है जिसे देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता है। मिट्टी की महिमा ऐसी ही है, पर कितने लोग हैं जो इस महिमा से परिचित हों?

मिट्टी की पुलटिसके लिये जिसे मिट्टी की पट्टी भी कह सकते हैं, गीलीसे गीली मिट्टी (नदी नालेका कीचड़) लेनी चाहिये और उसे सीधे घावपर (गहरा हो तो घाव के अन्दर भी) रखना चाहिये, फिर ऊपर से कपड़ा बाध देना चाहिए कि मिट्टी इधर-उधर न सरके। घावपर कपड़ा रखने के बाद उसपर मिट्टी रखकर घाव को मिट्टी के सीधे सम्पर्क से बचाने की कोशिश कभी न करनी चाहिए।

लोगों को मिट्टी का यह प्रयोग आवश्यकता से अधिक सीधा और सरल प्रतीत होता है। उनका चिंतित अस्थिर मस्तिष्क बड़े-बड़े वैज्ञानिक अनुसन्धानों के बल पर जटिल मशीनों की सहायता से भ्रमनात्मक भर बनाने की कोशिश करता है।

मिट्टी की साधारण पुलटिस आदमी को बिना किसी खतरे में डाले घाव को भर देती है, बड़ी आसानी से अच्छा कर देती है। मरहम अकसर बहुत हानि पहुँचाते हैं। मिट्टी के प्रयोग से कई लोग इसलिये डरते हैं कि कहीं मिट्टी गन्दी हुई तो खून में विष न पहुँच जाय। पर जहाँ कूड़ा करकट फेंका हो या गन्दगी गाड़ी जाती हो वहाँ की मिट्टी कोई लगावेगा ही क्यों।

शराब, माँस आदि अनेक प्राकृतिक खाद्यों द्वारा शरीर में पहुँचने वाली गन्दगी के बारे में जिसके कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और जो घावों को खतरनाक बना देती है, आज कोई नहीं सोचता। शरीर में भरे विष से कोई नहीं डरता, लोग डरते हैं, उन विषों से जो बाहर से शरीर में अनजान से पहुँच सकते हैं, गो कि इनसे डरने की जरा भी जरूरत नहीं है। मिट्टी द्वारा शरीर में विष पहुँचने की तो जरा भी आशका नहीं है।

घाव पर से मिट्टी की पट्टी जब हटाई जाती है तो अकसर उसके साथ बदबूदार तरल पदार्थ निकलता है। मिट्टी इसे घाव के चारों तरफ से खींचकर निकल लाती है। इससे यह आसानी से समझा जा सकता है कि मिट्टी घाव को और उसके चारों ओर की जगह को दूषित पदार्थ से मुक्त रखती है और इसीलिये मिट्टी के प्रयोग से घाव शीघ्र और आसानी से अच्छे होते हैं।

घाव में मिट्टी द्वारा विष पहुँचने का कोई डर नहीं है। यदि मिट्ठी द्वारा कुछ गन्दगी घाव में पहुँच जायगी तो मिट्टी उस गन्दगी को तुरन्त नष्ट कर देगी।

कुछ लोग मिट्टी में खाद गोबर मिले होने की शका करते हैं, पर यह तो सभी जानते हैं कि देहाती घाव पर सीधे गोबर रख देते हैं। उनका घाव बिना विषाक्त हुए ठीक हो जाता है, इसलिये यदि मिट्टी की पुल्टिस में गोबर हो भी तो किसी प्रकार डरने की जरूरत नहीं है।

रोगों के कीटाणु पृथ्वी पर भरे पडे हैं, आज के विज्ञान के इस कथन पर जरा भी ठडे दिल से विचार किये बगैर लोग इतने घबरा गये हैं कि गीली मिट्टी के प्रयोग की बात करना ही एक साहस का काम हो गया है। इसके प्रचार पर पुलिस रोक लगा सकती है, पर हमें इन पक्षपातपूर्ण रूढ़िवादी विचारों से डरने की जरूरत नहीं है।

यह कहने की जरूरत नहीं कि मैंने अनगिनत बार मिट्टी का प्रयोग किया है और प्रत्येक बार फल आशातीत हुआ है। नुकसान तो कभी किसी को पहुँचाती ही नहीं, न एक का भी रक्त विषाक्त हुआ।

वहशी और पशु अपनी पशु बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर अपने घावों पर मिट्टी का प्रयोग कर उन्हें अच्छा कर लेते हैं। पशु-बुद्धि किसी को कुराह नहीं ले जा सकती। हम बिना किसी सशय के इसके इशारे पर चल सकते हैं। कभी कोई हानि नहीं होगी।

यदि घाव बहुत बडा हो तो हर प्रकार से प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने की (माँस, मदिरा, बीडी सिगरेट आदि छोड़ने की) आवश्यकता होती है। यह प्रयोग द्वारा सिद्ध हो चुका है।

मिट्टी की पुलटिस और इसके अनेक प्रकार के प्रयोगों के बारे में कहना अभी थोडा बाकी रह गया है।

मैं यह पहिले ही बता चुका हूँ कि मिट्टी में घुलाने और चूसने की शक्ति है। यह विजातीय द्रव्य को घुलाकर चूस लेती है।

यह बराबर देखा गया है कि लोग बिना पहले की जानकारी के बर्रे के डक मारने पर या साँप के डस लेने पर पशु-बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर मिट्टी का प्रयोग करते हैं।

एक बार जब ईसामसीह कहीं जा रहे थे तो उन्होंने रास्ते में एक आदमी को देखा जो जन्म अन्धा था। जब उन्हें उसके बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने जमीन पर थूँककर मिट्टी सानी और अन्धे की आँखों पर लगा दी। और कहा कि 'सैलम तालाब पर जा और अपनी आँखें धो।' यह सुनकर वह गया, आँखें धोई और देखता हुआ वापस लौटा।

धरती में जो आश्चर्यकारी रोगनाशक गुण हैं उनके कारण मिट्टी के पुल्टिस को भी विशेष स्थान प्राप्त हो गया। मिट्टी के प्रयोग से कितने स्थानीय रोग इस प्रकार चले जाते हैं जैसे उन पर जादु कर दिया गया हो। यह प्रकृति की ही शक्ति है जिससे ये आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न होते हैं।

कोई किसी रोग का रोगी क्यों न हो, सामान्यतया उसके सारे शरीर की चिकित्सा जल, प्रकाश, वायु तथा प्राकृतिक भोजन द्वारा होनी अत्यन्तावश्यक है। इसी एक उपाय द्वारा स्थायी स्वास्थ्य की प्राप्ति होगी। पर स्थानीय चिकित्सा के भी बहुत से लाभ हैं। यदि तुरन्त लाभ प्राप्त करना हो तो रोग-ग्रसित स्थान-विशेष की चिकित्सा कभी-कभी अत्यन्त आवश्यक हो जाती है और इसके लिए वस्तुतः प्राकृतिक साधन मिट्टी से बढकर दूसरा ज्यादा पुरअसर उपाय नहीं है।

अब तक ऐसे अवसर पर जल का प्रयोग होता आया है। रोग-स्थित स्थान पर भीगे कपडे की पट्टी बाँधकर गर्मी लाने के लिए ऊपर से ऊनी कपडा बाँधते हैं। पर मिट्टी की पुल्टिस अधिक प्राकृतिक है और अधिक लाभदायक है। क्योंकि मिट्टी ज्यादा सोखती भी है और जल्द सूखती भी नहीं। इसके अलावा घुलाने और सोखने का मिट्टी में अपना निजी गुण भी है।

मिट्टी की पट्टी बनानेके लिए गीली मिट्टी या नदी नाले का कीचड लेकर छाती, आँख, गले के चारों ओर और गरदन, गाल पैर, पिंडली, पजे, हाथ, जननेंद्रिय, मूत्राशय, तिल्ली और जिगर के स्थान, रीढ की हड्डी आदि जहा भी रोग हो फैला देनी चाहिये और फिर उसपर कोई ऊनी या सूती मोटा कपडा रख कर बाध देना चाहिए ताकि मिट्टी अपने स्थान पर बनी रहे। ऊपरवाले कपडे के एक सिरे पर एक डोरी लगी रहे तो बाँधनेमें सहूलियत होगी।

जरा सोचने समझने वाला कोई भी आदमी आसानी से जान लेगा कि किसी विशेष स्थानपर मिट्टी की पुलटिस कैसे बाँधी जा सकती है। समझना केवल यही रहता है कि ढीली गीली मिट्टी अपने स्थानपर कैसे टिकी रखी जा सकेगी।

बाँधने की पट्टी सूती, ऊनी कोई भी हो सकती है। पानी की पट्टी या गद्दीमें ऊपर से ऊनी पट्टी बाँधने की जैसी जरूरत होती है वह मिट्टी की पट्टी में नहीं, क्योंकि मिट्टी अपने आप गरम हो जाती है। पर जो रोगी कमजोर हो, जिनके शरीर में गरमी कम हो, उनके लिए ऊनी पट्टी का प्रयोग बहुत अच्छा है।

मिट्टी की पुलटिस यह बनी बनाई दवाई है कि जिसका कोई भी रोग क्यों न हो, किसी तरह का दर्द क्यों न हो तुरंत उपयोग कर सकते हैं सदा अभीष्ट फल प्राप्त होगा। कितने ही रोगों में तत्क्षण आराम पहुचेगा। रोग कडा हो तो मिट्टी की पुलटिस देर तक रक्खे रहना चाहिए। सर्व रोगहारी मिट्टी एक ही औषधि है।

रोग शरीर के बाहर हो या भीतर, मिट्टी की पट्टी गरमी को खींचती है। यदि रोग छाती पर है तो मिट्टी की पट्टी छाती पर रखनी चाहिए। मूत्राशय और तिल्ली के रोगों में इनके स्थान में पेट के ऊपर, डिप्थिरिया के रोग में गले के चारों ओर तथा दूसरे भी रोगों में भी इसी तरह।

सभी रोग पेट की गडबड़ी के कारण पैदा होते हैं। अतः पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखना सभी रोगों में लाभदायक साबित होगा। ऐसे रोगों में जिनमें कोई खास स्थान प्रसित नहीं—जैसे स्नायु दौर्बल्य, शोकातुर होना, आदि रोग जो सारे शरीर के रोग कहे जा सकते हैं—पेडू पर मिट्टी की पट्टी रखना लाभकारी है।

पेडूपर मिट्टी की पट्टी रखने से ज्वर तुरन्त कम होता है। अतः इसका उपयोग मियादी बुखार, लाल बुखार, मोती झरा, कफज्वर, आदि नये रोगों में और किसी भी कारण से गिरे स्वास्थ्य में अवश्य करना चाहिये।

मिट्टी की पट्टी पेडू पर घण्टों तक पड़ी रह सकती है, अतः यह कटिस्नान की बनिस्बत, जो एक बार में केवल कुछ मिनटों के लिए ही किया जाता है, पेट से ज्यादा गर्मी खींचती है। लेकिन मिट्टी की पट्टी के बाद पेडू को साफ करने के लिये उसे धोना ही पडता है, अत मिट्टी की पट्टी के बाद बहुत थोड़े समय का एक कटिस्नान हमेशा ले लेना चाहिये। नहान यदि नहीं लिया जाय तो भी कोई हरज नहीं है।

मिट्टी की पट्टी उतारने के बाद उसपर हाथ रखने से मालूम हो जायगा कि मिट्टी की पट्टी पेडू या फोडे की कितनी गरमी खींचती है।

सारे बदन में धूप लेनी हो तो मिट्टी पोतने के बाद धूप में लेट कर हम अपने बदन पर अहसान करेंगे। इस प्रकार शरीर में धूप लगने से चमडी काली नहीं होगी, न जलेगी। धूप नहान लेते वक्त यदि मिट्टी मिला पानी भी शरीर पर चुपड लिया जाय तो जलने से बचेगा।

मिट्टी की पट्टी आवश्यकतानुसार घण्टों रखी रह सकती है और दिन में कई बार बदली भी जा सकती है। रोग कड़ा हो तो पट्टी शुरू में जल्दी २ बदलना चाहिये। सोते समय रात को मिट्टी की पट्टी बाँधी जा सकती है और तकलीफ न होती हो तो पट्टी रात भर बँधी रह सकती है। जब पट्टी बहुत गरम हो जाय तो उसे उतार कर दूसरी लगा देनी चाहिये।

जहाँ आदमी रहता है वहाँ की मिट्टी जैसी भी हो वह मिट्टी की पट्टी बनाने के लिये उपयोगी होती है। चिकनी मिट्टी आसानी से चिपकती है और इससे लाभ कुछ विशेष भी होता है। अगर मिले तो चिकनी मिट्टी का ही उपयोग करना चाहिए।

गरम पानी या गरम पुलटिस के प्रयोग के तुरन्त बाद ठण्डे जल के स्नान या फुहारे आदि का प्रयोग कर हम गरम प्रयोग से हुई क्षति को मिटा नहीं सकते।

इसी तरह की हानि गरम वाष्प के स्नान से भी होती है।

मिट्टी अथवा कीचड़ लगाने से त्वचा बहुत अच्छी तरह साफ होती है। शरीर पर बराबर मिट्टी लगा कर पोते रहनेसे त्वचा पूर्णतया स्वच्छ होने के साथ-साथ मुलायम और चिकनी हो जाती है।

इस विलक्षण औषधि मिट्टी से रोग जिस तरह आसानी और आराम से तथा जितने निश्चय रूप से जाते हैं उसके लिए मिट्टी के प्रयोग की लाख-लाख प्रशसा करनी चाहिये और इसका जोरदार प्रचार होना चाहिए। मिट्टी की पुलटिस बनाकर और उसका प्रयोग करने की विधि की अबतक उपेक्षा (केवल फादर नीप कभी-कभी मिट्टी की पुलटिस की राय देते थे) ही की जा रही है। मैंने बहुत पहले ही मिट्टी के प्रति अपने विश्वास की घोषणा की थी कि मिट्टी का भविष्य महान है और उसका घर घर प्रचार हो जायगा। जहाँ जब जरूरत होगी यह मिलेगी और आशातीत काम प्रदान करेगी। इसके प्रयोग से जो फल निकले उन्होंने मेरे विश्वास की पुष्टि की है।

मिट्टी की पुलटिस और मिट्टी की पट्टी के प्रयोग से आश्चर्यजनक रीति से रोगमुक्त हुए लोगो की रिपोर्टें बराबर आ रही है। सभी लोग इन प्रयोगो की जोरदार शब्दों में प्रशसा करते हैं। अनेकों ने मुझे यह भी लिखा है कि वे मेरे विचारों का हृदय से प्रचार कर रहे हैं।

इस प्राचीन तथा सीधी और सरल प्राकृतिक औषधि को इसका पूर्ण सम्मान और पुरस्कार मिले यही मेरी अभिलाषा है। तब प्रकृति की सब से बड़ी औषधि पर मनुष्य जाति का पूर्ण अधिकार हो जायगा।

उपयोग—

दंतशूल—जिस तरफ से दाँतों में शूल चलता हो उस तरफ के गाल पर बाहर की और अर्थ काम्प्रेस (मिट्टी की पट्टी) बारंबार रखने से उस दाँत में होनेवाला शूल बन्द हो जाता है। दो तीन बार इस प्रयोग को बराबर कर लेने से दंतशूल का होना हमेशा बन्द हो जाता है।

खुजली और खसरा—पीले रग की मुलतानी मिट्टी दो तोला, घोडे के नाखून दो तोला, हीरादखन डेढ तोला, सूखे आँवले दो तोले, मिरची एक तोला इन सब चीजों को लेकर पीस लेना चाहिये फिर इनको सात दिन तक गौमूत्र में खरल करना चाहिये। इस लेप को लगाने से खाज-खुजली फोडे-फुन्सी आराम होते हैं।

अंडवृद्धि—सफेद मिट्टी १ तोला (वा खड़िया मिट्टी) और गधे की लीद १ तोला इन दोनों को पीसकर अरण्डी के पत्तों के रस में डालकर खदबदा लेना चाहिये। फिर उसको सुहाती-सुहाती हालत में अडकोष पर लेप करके ऊपर से लगोट पहिन लेना चाहिये। कुछ दिनों तक इस प्रयोग को करने से पानी तथा रस के उतरने से पैदा हुई अडवृद्धि अथवा वायु उतरने से पैदा हुई अडवृद्धि नष्ट हो जाती है।

अतिसार या मरोडी के दस्त—सफेद चाकमिट्टी ११ भाग, शकर २५ भाग, इलायचीदाने १ भाग लौंग ७॥ भाग, केशर ३ भाग, जायफल ३ भाग और तज ४ भाग लेकर सब चीजों का चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को दिन में ३ बार ५ से लेकर ३० रत्ती तक की मात्रा में देने से अतिसार या मरोडी की दस्तें बन्द होती हैं।

गर्भपात—कुम्हार के चाक की मिट्टी १० तोला, सोना गेरू पाव तोला, चदन पाव तोला, माजूफल का चूर्ण पाव तोला। इन सब को पानी में घोटकर पिलाने से गर्भपात होता हुआ रुक जाता है।

प्रदर और प्रमेह—चार सौ या पाँच सौ वर्ष की जूनी इट लेकर कोयले की अग्नि में सुर्ख करके गौमूत्र में बुझाना चाहिये। इस प्रकार सौ बार गरम करके बुझाने पर उसका चूरा हो जाता है। उस चूरे को पीसकर कपडे में छान लेना चाहिये। इस चूर्ण में से ३ रत्ती चूर्ण ६ रत्ती लकडीया पाषाणभेद के चूर्ण और १२ रत्ती शकर के साथ मिलाकर आधा सेर दूध के साथ सवेरे शाम लेने से तथा खटाई, हींग, मिरच और गरम चीजों से परहेज करने से प्रदर तथा प्रमेह का असाध्य रोग भी मिट जाता है। (जगलनी जडी बूटी)

मिट्टी में और भी अनत गुण रहते हैं। मनुष्य शरीर के प्रत्येक रोग में उचित रीति से उपयोग करने से यह लाभ पहुँचाती है। इसके पूरे वर्णन में एक स्वतन्त्र पुस्तक अलग लिखी जा सकती है। इस संकीर्ण क्षेत्र में इसका पूरा वर्णन आना असम्भव है। इसलिये जो लोग इस विषय में अधिक दिलचस्पी रखते हों उनको इस विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी ग्रथ पढना चाहिये।

मिनवा

नामः—

बरमा—मिनवा। लेटिन—Wallichia Disticha (वालिचिया डिस्टिचा)।

वर्णन—यह वनस्पति आसाम, बर्मा, अवध तथा हिमालय पर्वत में दो हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल चर्मदाहक होता है।

मिरचाकंद

नाम:—

हिन्दी—मिरचाकन्द ।

वर्णन—यह एक बेल होती है । इसके बेल के पत्ते त्रिकोण में कटे हुए रहते हैं । इसके फल मिरची के समान होते हैं । इसके बेल के नीचे जड में एक कद रहता है । यह लता इदौर राज्य के जगलो मे पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इदौर राज्य के भील वगैरह जगली जाति के लोगों का विश्वास है कि इसके कंद को घिसकर पिलाने से गोहिरे का काटा हुआ व्यक्ति बच जाता है । साँप के विष पर भी यह वनस्पति लाभ पहुँचाती है ।

मिरजानजोश

नाम:—

हिन्दी—मिरजान जोश, साथरा । अरबी—मिरजानजोश । उर्दू—मिरजानजोश । इग्लिश—Common Marjoran लेटिन—Origanum Vulgare (ओरिजेनम व्हलगेर) ।

वर्णन—यह मरवे के वर्ग की एक वनस्पति होती है । इसका पौधा और इसके पत्ते मरवे के समान ही होते हैं इसके फूल छोटे और गुलाबी रंग के होते हैं । इस सारे पौधे में एक उग्र गध रहती है ।

यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से सिकिम तक सात हजार फीट से बारह हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका पौधा कडवा और उग्र गंधवाला होता है । यह सूजन, जुकाम, मस्तक शूल और लकवे में उपयोगी होता है । इसके पत्ते कर्णप्रदाह, ब्रोंकाइटीज, दमा और रक्त की खराबी में लाभ पहुँचाते हैं । इसके फूलों को पीसकर मस्तक पर लेप करने से आधशीशी में लाभ होता है । इसका तेल संधिवात में उपयोगी होता है ।

इस सारे पौधे से बाष्पीकरण क्रिया के द्वारा एक प्रकार का उडनशील तेल प्राप्त किया जाता है । सरदी की वजह से जब स्त्रियों का मासिकधर्म रुक जाता है तब इस पौधे का गरम नियाँस बनाकर देने से

वह फिर जारी हो जाता है। इसका तेल उत्तेजक और चर्मदाहक होता है और यह कॉलिक उदर शूल, प्रवाहिका और हिस्टीरिया में एक उत्तेजक और पौष्टिक वस्तु की तरह दिया जाता है। पुराने सन्धिवात, दन्तशूल और कर्णशूल में इस तेल का बाह्य प्रयोग लाभदायक होता है।

मिरचीलाल

नाम:—

संस्कृत—मिरची फला, तीव्रशक्ति, वम्हऋचा, अजड़ा, कुमऋचा इत्यादि। हिंदी—लालमिरच, लंका-मिर्चा। बगाल—लंका मुरिच, लाल मरिच। बंबई—लाल मिरची। गुजराती—मिरची। मराठी—मिरची, लाल मिरची। उर्दू—लाल मिरच। तामील—मुलागे। तेलगू—गोल्कोंदा, मीरापकैया। इंग्लिश—Chillies चिलीज। लेटिन—Capsicum Frutescens (केप्सिकम फ्रूटीसेन्स)।

वर्णन—लाल मिरची सारे भारतवर्ष में हरी हालत में तरकारी और आचार के लिये और सूखी हालत में मसाले के लिये उपयोग में ली जाती है। इसको सब कोई जानते हैं। इसलिये इसके विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं। इसकी तीन चार जातियाँ होती हैं। एक जाति बहुत पतली होती है जो बहुत तेज और चरपरी होती है। दूसरी जाति उससे मोटी होती है जो जैपुर और अजमेर के तरफ पैदा होती है। यह बहुत अधिक सुर्ख होती है। मगर इसमें चरपरापन कुछ कम होता है। एक जाति कुछ गोलाई लिये हुए बहुत मोटी होती है। यह सिर्फ शाग बनाने के काम में आती है। इसमें तेजी या चर-परापन बिल्कुल नहीं होता।

गुण दोष और *प्रभाव—*

आयुर्वेदिक मत से लाल मिरच अग्निदीपक, दाहजनक तथा अजीर्ण, विषूचिका, दारुणव्रण, तंद्रा, मोह, प्रलाप, स्वरभेद और अरुचि को दूर करती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से लाल मिरची कड़वी, चरपरी, कफ निस्सारक, मस्तिष्क की शिकायतों को दूर करनेवाली, स्नायविक वेदना में लाभदायक, पित्त को बढ़ानेवाली और गुदा स्थान में जलन करने-वाली होती है।

मिरची दीपन, पाचन और आनुलोमिक होती है। बिच्छू के डंक पर इसको पानी में पिस कर लगाने से शीघ्र फायदा होता है। यहाँ के देशी चिकित्सक टायफस ज्वर, पार्यायिक ज्वर, जलोदर, गठिया, अजीर्ण और हैजे में इसका उपयोग करते हैं। इसका बाहरी प्रयोग एक चर्मदाहक पदार्थ की तरह किया जाता है और जठराग्नि को प्रदीप्त करने के लिए इसका अन्त: प्रयोग किया जाता है।

अगर किसी को साँप ने काट खाया हो और यह जाँच करना हो कि साँप जहरीला था या नहीं अथवा जिस व्यक्ति को साँप ने काटा है उस व्यक्ति पर जहर का असर हुआ कि नहीं तो उसे लाल मिरची चबाने के लिये देना चाहिये। अगर उसको जहर का असर हुआ होगा अथवा वह साँप विषैला होगा तो वह लाल मिरची उसको बिलकुल चरपरी नहीं लगेगी। अगर चरपरी लगे तो समझना चाहिये कि जहर का असर नहीं हुआ है। मनुष्य को मौसिम में होनेवाले फोडे फुन्सियों पर लाल मिरची को तेल में पीस कर लगाने से वे फौरन भर जाते हैं।

आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथ आत्रेय संहिता में मिरची को अग्निदीपक, कफ नाशक, दाहजनक और अजीर्ण, विशूचिका, दारुण वृण, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, स्वरभङ्ग, अरुचि तथा कफनाशक बतलाया है। इसके अतिरिक्त इसी ग्रन्थ में इसके और एक आश्चर्यजनक गुण को बतलाया गया है। कहा गया है कि—

नुरं लुप्त घरं क्षीणं सन्निपात निपीडितम्। नष्टेंद्रिय गण तीक्ष्णा मृत्यौराकृष्य जीवयेत्॥

अर्थात् जिसकी देखने की, सुनने की और बोलने की शक्ति नष्ट हो गई हो, जिसकी नाडी भी डूब गई हो ऐसे सन्निपात के रोगी को मृत्यु के मुख में से छुडा कर मिरची जीवन दान देती है।

लाल मिरची और हैजा—हैजे के ऊपर भी यह वस्तु बहुत आश्चर्यजनक प्रभाव बतलाती है। हैजे में इसको देने का तरीका इस प्रकार है—

लाल मिरची के बीज निकालकर उसके छिलकों को बारीक पीसकर कपड़े में छान लेना चाहिये। इस चूर्ण को शहद के साथ घोट करके दो दो रत्ती की गोलिया बनाकर छाया में सुखा लेना चाहिये। हैजे के रोगी को बिना किसी अनुपान के एक गोली वैसी की वैसी निगला देना चाहिये। जिस रोगी का शरीर ठंढा पड़ गया हो, नाडी की गति डूबती जा रही हो और ठंडा पसीना चल रहा हो उसके शरीर में १० मिनट में ठंडा पसीना बन्द होकर गरमी पैदा होने लगती है और नाडी नियमित रूप से चलने लगती है। इस रोग में हींग और कपूर के साथ में भी लाल मिरची की गोली बनाकर दी जाती है।

हैजे के अतिरिक्त इसको सोंठ के साथ देने से उदर शूल, अजीर्ण और पेट का आफरा मिटता है। मलेरिया बुखार में इसको कुनेन या सिनकोना के साथ देने से लाभ होता है। दाँत में कोचर पडने से अगर दाढ में बहुत दर्द हो रहा हो और किसी इलाज से बन्द न होता हो तो एक अच्छी पकी हुई लाल मिरच लेकर उसके ऊपर का डखल और भीतर के बीज निकाल कर शेष रहे हुए भाग को पानी के साथ पीस कर कपड़े में दबा कर रस निकाल लेना चाहिये। इस रस को जिस तरफ की दाढ दुखती हो उस तरफ के कान में दो तीन बूँद डालने से दाढ का दर्द तुरन्त दूर हो जाता है। मिरची का रस कान में टपकाने से कुछ देर तक जलन होती है। अगर यह जलन जल्दी शान्त न हो तो थोडी सी शक्कर को पानी में डालकर उसकी २-३ बूँद कान में टपकाने से जलन शान्त हो जायगी।

लाल मिरची और प्रमेह—लाल मिरची के एक रतल बीज में ६ तोला पानी डालकर रात को भिगो रखना चाहिये। फिर पाताल यन्त्र के द्वारा उनका तेल निकाल लेना चाहिये। इस तेल की एक बूँद बतासे में लेकर दूध की लस्सी के साथ खाने से प्रमेह में बहुत लाभ होता है। (—जंगलनी जड़ी बूटी)

गॉयना में लाल मिरची का फल एक आश्चर्यजनक उत्तेजक पदार्थ माना जाता है। इसको सिनकोना के साथ मिलाने से यह प्रथम श्रेणी का एक ज्वरनाशक पदार्थ हो जाता है। गले की बीमारी में इसके पानी से कुल्ले भी किये जाते हैं।

बनावटें.—

संखिया की भस्म—शुद्ध किया हुआ संखिया १ तोला लेकर उसको हरी मिरची के रस में १ दिन भर खरल करके टिकडी बनाकर उस टिकडी को छाया में सुखा लेना चाहिये। फिर कपडमिट्टी की हुई एक हँडिया में मिरची के पौधों को जलाकर की हुई सफेद राख उस हांडी में आधे हिस्से तक दबा-दबा कर भर देना चाहिये, फिर उस पर उस संखिया की टिकडी को रखकर उसके ऊपर भी हाँडी के मुँह तक मिरची के पौधों की राख को दबा-दबाकर भर देना चाहिये। तत्पश्चात् उस हाँडी को चूल्हे पर चढाकर बेर की लकडी की आँच देना चाहिये। दोपहर तक यह आँच मंद, दोपहर तक मध्यम और दोपहर तक तीव्र रहना चाहिये। इस ६ पहर की आँच में संखिया की निर्धूम भस्म बनकर तैयार हो जाती है। इस भस्म को आधे चावल की मात्रा में उचित अनुपान के साथ देने से वायु, कफ और सरदी के अनेक रोग दूर होते हैं। (जगली जडी बूटी)

उपयोग—

सन्निपातिक ज्वर—लाल मिरची के बीजों का बारीक चूर्ण १० ग्रेन की मात्रा में १ औंस गरम पानी के साथ दिन में दो तीन बार देने से सन्निपात और मद्यपान जनित सन्निपात में आश्चर्यजनक लाभ होता है।

मिरची लाल (२)

नाम·—

संस्कृत—हिन्दी—गाचमरिच, लाल मिरच। गुजराती—लाल मिरच। दक्षिण—लाल मिरची। बंगाल—लाल मरिच। तामील—उसिमुलागें। तेलगू—सुदमिरापाकाया। लेटिन—Capsicum Annuum (केपसिकम एनम)।

वर्णन—यह लाल मिरची की ही एक दूसरी जाति होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इस मिरची का फल कडवा और चरपरा होता है। यह कफनिस्सारक, वेदनानाशक, खून बढानेवाला, और सूजन तथा दर्द को दूर करनेवाला होता है।

इस मिरची में उत्तेजक धर्म प्रधान होता। इसका बाहरी लेप चर्मदाहक होता है। गले में होनेवाले व्रण के सड़ जाने पर इसका उपयोग किया जाता है। सिंदूर ज्वर या लाल बुखार (Scarlatina) में भी यह उपयोगी होती है। साधारण गले के घाव, स्वरभग, अम्लपित्त, पित्त ज्वर, बवासीर और प्रवाहिका में भी यह लाभ पहुँचाती है।

सर्पविष के केसों में इसका ताजा फल एक उत्तेजक वस्तु की तरह दिया जाता है। मेडागास्कर में इसका फल मद्यपान से पैदा हुई बकवाद और बेहोशी को दूर करने के लिये दिया जाता है।

मिरची गाच (३)

नामः—

हिन्दी—गाचमिरच। गुजराती—लाल मिरची। दक्षिण—लाल मिरच। बगाल—लकामोरिच, धानलुंगक सुरिच। अरबी—फिलफिलेहम। इग्लिश—Birds Eyechilli। लेटिन—Capsicum Minimum केपसिकम मिनिमम।

वर्णन—यह भी लाल मिरची की एक जाति होती है। यह मलाया में बहुत पैदा होती है। भारतवर्ष में भी यह कहीं-कहीं पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल चरपरा और उत्तेजक होता है। यह अम्लपित्त, अजीर्ण और आँतों के अंदर सड़ाँध होने से पैदा हुई प्रवाहिका रोग और सतत (अविराम) ज्वर में पित्त से होनेवाली वमन को रोकने के लिये दिया जाता है। मेडागास्कर में यह वनस्पति उत्तेजक पाचक, मृदु विरेचक, कृमिनाशक और रक्तस्राव-रोधक औषधि के रूप में बहुत उपयोग में ली जाती है।

कम्बोडिया में इस वनस्पति का उपयोग पसीना लानेवाली औषधि के बतौर बहुत अधिक होता है। कामला और यकृत की ऐसी विकृति में जिसके साथ सूजन भी हो यह पाचन यन्त्र को उत्तेजना देनेवाले पदार्थ की बतौर दी जाती है।

मिश्रान

नाम—

पंजाब—मिश्रान। लेटिन—Pedicularis Pectinata (पेडिक्यूलेरिस पेक्टिनेटा)। P. Siphonantha (पी. सिफोनेंथा)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से लेकर कुमाऊँ तक ७ हजार फीट से ११ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। इसके पत्ते ३ से लेकर ५ इञ्च तक लम्बे और २ से लेकर ३ इञ्च तक चौड़े होते हैं। इसके फूल गुलाबी रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का चूर्ण देने से कफ के साथ खून जाना बंद हो जाता है। पंजाब में यह वनस्पति मूत्रल औषधि की तरह उपयोग में ली जाती है।

मिलेकोंडेइ

नामः—

तामील—मिलेकोंडेइ। इंग्लिश—Common Spleen wort। लेटिन—Asplenium Trichomanes (एस्प्लेनियम ट्रिकोमेनस)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से कुमाऊँ तक तथा नीलगिरि पहाड़ में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति मृदुविरेचक और कफनिस्सारक होती है।

मिलेल्लू

नामः—

मलयालम—मिलेल्लू, मेलिल्ला। तामील—कट्टुनोच्चि, निर्नोची। तेलगू—लोकि, नेवलेटी, जिन्नूकोइ। बरमा—इटोक्शा। लेटिन—Vitex Leucoxylon (व्हिटेक्स लेकोक्सिलोन)।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल मुलायम होती है और इसके फूल सुगन्धित होते हैं। यह मद्रास प्रेसिडेन्सी के सब जंगलों में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ और छाल संकोचक होती है और इसका फल कृमिनाशक होता है। इसकी जड़ पार्या-

यिक ज्वरों में उपयोगी होती है। इसके पत्तों का धूम्रपान करने से जुकाम और मस्तक शूल में लाभ होता है।

मीठा कंद

नामः—

संस्कृत—सर्पाख्य। बम्बई—मारपछपोली, लोखेटी। अकोला—सुतिया कंद, नागवेलि कंद। अलिराजपुर—जगालिया आलू। अमरावती—दँर्दी कद। बेतुल—बेलनी कद। भंडारा—मुरकद। नेमाड—नागलकद। सागर—मीठाकद। तामील—वेतिल वेल्लि। तेलगू—चेंचुडपा। लेटिन—Dioscorea Oppositifolia (डिवकोरिया ऑपोझिटि फोलिया)।

वर्णन—यह एक बडी जाति की बेल होती है। इसकी जड में छोटा कंद लगता है। यह वनस्पति मध्यप्रान्त में विशेष रूप से पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड को पीसकर गरम करके सूजन को कम करने के लिये लेप करते हैं। सर्प, बिच्छू के विष में भी यह लाभदायक मानी जाती है।

मीठा अकलकरा

नामः—

हिन्दी—मीठा अकलकरा, बोझिदान। लेटिन—Tanacetum Umbelliferum (टेनेसीटम अम्बेलीफेरम)।

वर्णन—यह वनस्पति ईरान के पूर्वी प्रान्तों में पैदा होती है। इसकी जडें ६ से १० इंच तक लंबी होती है। इनका रंग कुछ भूरा और कुछ पीलापन लिये हुए होता है। ये जडें असली अकलकरे के समान दिखाई देती हैं मगर स्वाद में इनके अन्दर तीखापन बिलकुल नहीं होता।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति कामोत्तेजक, पौष्टिक, कृमिनाशक और गर्भघातक होती है। इसमें पायरेथ्रिन नामक तत्व पाया जाता है।

मीनाहारमा

नामः—

हिन्दी—मीनाहारमा । लेटिन—Balsamodendron Playfairii (वालसमेडेंड्रोन प्लेफेरी) ।

वर्णन—यह गूगल के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसके गोंद का रंग कुछ पीलापन लिये सफेद होता है। इसका स्वाद कड़वा होता है और इसमें कुछ गंध नहीं होती। यह हीराबोल के साथ मिलकर बाजार में बिकने को आता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका गोंद कफ निस्सारक होता है और सधिवात के अन्दर लाभ पहुँचाता है।

नारू के ऊपर यह एक बहुत उपयोगी औषधि है। इसको ५ से १० रत्ती तक की मात्रा में लेने से नारू का कीड़ा मर जाता है और शरीर के अन्दर ढीला पड़ जाता है।

मुखजली

नामः—

हिन्दी—मुखजली। पंजाब–चित्रा। कनाड़ी–पुष्पकासीस, कृमिनाशिनी। अंग्रेजी—Peltate sundew (पल्टेटासड्यू)लेटिन—Drosera Lunata (ड्रोसेरा ल्यूनेटा) ।

वर्णन—यह एक बहुवर्षजीवी क्षुद्र वनस्पति होती है। इसका पौधा ९ इञ्च ऊँचा होता है। यह पौधा रुएँदार होता है। इसके पत्ते लंबे और फूल पीले होते हैं। यह वनस्पति हिमालय, और नीलगिरी में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के पत्तों को कुचलकर उनमें थोड़ा नमक मिलाकर छाला उठाने के लिये बांधते हैं। इस वनस्पति के योग से सोने की भस्म बहुत जल्दी और बहुत उत्तम बन जाती है। इसके पौधे की राख कुछ लाल रंग की होती है और इसमें लोहे (Ferrie) का काफी अंश रहता है।

मुचकंद

नामः—

संस्कृत—मुचकन्द, क्षत्रवृक्ष, चित्रक, प्रति विष्णुक, दीर्घपुष्प, हरिवल्लभ, इत्यादि। हिन्दी-मुचकन्द। गुजराती-मुचकन्द। बंगला-मुचकन्द। मराठी-मुचकन्द। तामील—सेम्बोलाऊ। तेलगू-लोलेबू। लेटिन—Pterospermum Suberifolium (टेरोस्परमम सुबेरिफोलियम)।

वर्णन—मुचकन्द का वृक्ष मध्यम कद का होता है। इसके पत्ते बड़े और अखरोट के समान होते हैं। इसका फूल बडा और बहुत खुशबूदार होता है। इसके फल लम्बे और गोल काष्ठ के समान होते हैं। औषधि में इसके सिर्फ फूल लिये जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मुचकन्द चरपरा, गरम, कडवा, स्वर को सुन्दर करनेवाला तथा खासी, कफ, त्वचा के विकार, सूजन, सिरकी पीडा, त्रिदोष, रक्त-पित्त, रुधिरविकार और पित्त के कोप को दूर करनेवाला होता है।

इसके फूलों में एक प्रकार का उडन शील सुगन्धित तेल रहता है इस तेल का प्रधान धर्म वेदना नाशक होता है।

इसके फूलों को चावल के मांड़ के साथ पीसकर मस्तक पर लेप करने से आधेशीशी में दर्द बन्द हो जाता है। इसके फूलों के चूर्ण का घी और शक्कर के साथ हलवा बनाकर १ तोले की मात्रा में प्रतिदिन खाने से बवासीर से खून का गिरना बन्द हो जाता है।

मुलेठी

नामः—

संस्कृत—मधुयष्टी, यष्टीमधु, जलयष्टी, स्थल यष्टी, इत्यादि। हिन्दी-मुलेठी, मीठी लकडी, जेठीमद। गुजराती-जेठीमद। मराठी—ज्येष्ठी मद। बगाल-ज्येष्ठी मधु। बाम्बे-ज्येष्ठी मधु। इग्लिश—Liquorice (लिकोराइस)। अरबी-अस्लुसुस। लेटिन-Glycyrrhiza Glabra (ग्लिसीरीझा ग्लेबरा)।

वर्णन—मुलेठी का क्षुप होता है। इसकी जड लम्बी और गोल होती है। इसके पत्ते छोटे छोटे और गोल होते हैं। इसमें छोटी और बारीक फली लगती है। इसका फूल लाल रग का होता है। इसकी जड औषधि प्रयोग में ली जाती है। यह जड पीले रग की और खरदरी होती है। इसका स्वाद मीठा,

और यह बात ध्यान देने योग्य है कि आज भी यह वनस्पति चिकित्सा जगत में अपनी महत्ता को उसी प्रकार सुरक्षित रक्खे हुए है।

इसकी सूखी जड़ भारतवर्ष के बाजारों में सब दूर पसारियों के यहाँ बिकती है।

यह वनस्पपि यद्यपि पेशावर, चिनाबनदी का पूर्वी भाग और बर्मा में भी पैदा होती है फिर भी इसकी जड़ विशेषकर परसिया, एशियामायनर, टर्की और साइबेरिया से यहाँ पर आती है।

मुलेठी से तयार कि हुई औषधियाँ पाश्चात्य चिकित्सा में एक मृदु-विरेचक पदार्थ की तरह लोकप्रिय हैं। इसका शर्बत, मीठी टिकिया और लम्बी बत्ती के रूप में खाँसी और गले की तकलीफों को दूर करने के लिए उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त कड़वी और बदजायका औषधियों जैसे सनाय, एलुवा, एमोनियन क्लोराइड इत्यादि चीजों के खाने से मुँह में जो बदजायका पैदा होता है उसको दूर करने में भी इसका उपयोग होता है।

डॉक्टर कीथ ने बतलाया है कि वेदना को कम करने में व पेट के अन्दर क्षारीय तत्व जमा होने से जो बीमारियाँ और जो लक्षण पैदा होते हैं उनको दूर करने में मुलेठी आश्चर्यजनक काम करती है। एसिड्स को लेने से पेट में जो जलन होती है उसको यह अलकेलीज की अपेक्षा भी ज्यादा अच्छी तरह दूर करती है। इस वनस्पति के सम्बन्ध में जो लोग खोज कर रहे हैं उनका कथन है कि ज्यों ज्यों इस वनस्पति के सम्बन्ध में जानकारी बढ़ती जायगी त्यों त्यों यह वनस्पति चिकित्सा के क्षेत्र में अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती जायगी। आधुनिक चिकित्सा के क्षेत्र में यह वनस्पति एक पौष्टिक और मूत्रनाली सम्बन्धी बीमारियों में शांतिदायक तथा मृदुविरेचक औषधि की बतौर काम में ली जाती है।

हॉटसन के मतानुसार इस वनस्पति की जड़ गले के व्रण के लिये बहुत उपयोगी होती है। यह दूसरी औषधियों के साथ मिलाकर रक्त की अव्यवस्था को दूर करने के काम में भी ली जाती है।

चीनी चिकित्सा शास्त्र में यह वनस्पति बहुत महत्वपूर्ण मानी गई है। वहाँ पर यह पौष्टिक, धातु परिवर्तक और कफनिस्सारक औषधि के रूप में काम में ली जाती है।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार इसकी जड़ दूसरी वनस्पतियों के साथ मिलाकर सर्पविष को दूर करने के काम में ली जाती है।

महर्षि सुश्रुत ने अपनी सुश्रुत संहिता में सर्वोपघात शमनीय नामक एक महान योग को बतलाया है। उस योग का वर्णन हम इस ग्रन्थ के सातवें भाग में पृष्ठ १८२१ पर वायविडंग के प्रकरण में विस्तार के साथ कर आये हैं। यह योग मुलेठी और वायविडंग के संयोग से बनता है और मानवीय शरीर में होनेवाले प्रायः हर एक रोग पर यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव अवश्य डालता है।

उपयोग—

दाह—लालचंदन के साथ मुलेठी को घिसकर लगाने से दाह मिटती है।

बादी का उदरशूल—मुलेठी का क्वाथ बनाकर पिलाने से बादी का उदरशूल मिटता है।

श्वासनली के रोग—मुलेठी का क्वाथ बनाकर पिलाने से श्वास नलिका साफ होती है और उससे सम्बन्धित रोग मिट जाते हैं।

मुँह के छाले—मुलेठी को मुँह में रखकर चूसने से मुँह के छाले मिटते हैं।

आँखों की लाली—मुलेठी को पानी में पीसकर उसमें रुई का फोया भिगोकर आँखों पर बाँधने से आँखों की लाली मिटती है।

हिचकी—मुलेठी के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से हिचकी बंद होती है।

वमन—मुलेठी के काढे में ३ माशा राई का चूर्ण डाल कर पिलाने से वमन हो जाती है और वमन होकर विष दोष, अजीर्ण और खाँसी में लाभ होता है।

पित्तप्रदर—१ तोला मुलेठी को पीसकर ४ तोले शक्कर के साथ मिलाकर चावल के माड के साथ देने से पित्त प्रदर में लाभ होता है।

उरक्षत—मुलेठी और गगेरन की जड की छाल का काढा करके उसमें पीपर और वंशलोचन का चूर्ण डालकर देने से क्षय और उरक्षत में लाभ होता है।

अपस्मार—कद्दू के गूदा में मुलेठी को मिलाकर खाने से अपस्मार में लाभ होता है।

त्रिदोष—अदरक और तुलसी के रस में मुलेठी को मिलाकर उसमें शहद डालकर देने से त्रिदोष में लाभ होता है।

हृदय रोग—मुलेठी और कुटकी का समान भाग चूर्ण करके गरम पानी के साथ देने से हृदय रोग में लाभ होता है।

मुर्दासिंगी

नाम—

संस्कृत—वोदार, नागसत्व, व्रणघ्न, स्वर्णवर्णक। हिंदी—मुर्दासिंग। मराठी—मुर्दाडशिंग। गुजराती—वोदार कांकरो। फारसी—मुर्दासिंग। लेटिन—Plumbi Oxidium (प्लम्बी ऑक्सिडम)।

वर्णन—यह एक जाति की उपधातु होती है। इसका रंग पीला होता है। शालिग्राम निघंटु में लिखा हुआ है कि अर्बुद पर्वत के निकट पार्श्वभाग में वेंदार नामवाला शृंग है उस शृंग पर मुर्दासिंग पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघंटु रत्नाकर के मतानुसार मुर्दासिंग वात, कफ, गर्मी के रोग और शरीर की दाह को दूर करती है। यह केशों को हितकारी, पुरुषों के अंग रोगों को दूर करनेवाली और पारे को बाँधनेवाला है।

मुर्दासिंग—सारक, भेदक, वृणरोपक, वमनकारक, मूत्रकृच्छ्र और प्रमेह को पैदा करनेवाला तथा कफ, वात, वृण, शूल, उदररोग, कृमि, सूजन, आफरा, वात, गुल्म, आनाह, शोफ ज्वर और उदावर्त्त को दूर करती है।

मुर्दासिंग में सकोचकधर्म प्रधान होता है। इसलिये इसके मेल से मलहम तैयार करके उस मलहम को फोडे फुन्सियों पर लगाने से जल्दी आराम हो जाते हैं।

मुसना

नामः—

हिन्दी—मुसना, मुस्न, साबूनी। सथाल—मुस्न। बगाल—साबूनी। अरबी—गाफिस। फारसी—गुलेगाफस। अंग्रेजी—Soapwort (सोपवर्ट)। लेटिन—Saponaria Vaccaria (सेपोनेरिया व्हेंकेरिया)

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है इसका पौधा आधे से लेकर १ फुट तक ऊँचा होता है। गेहूं के खेत में इस वनस्पति के पौधे बहुत पैदा होते हैं। इसके पत्ते लम्ब गोल, फूल गुलाबी रगके, जड़ लम्बी और गोल और जड़ की छाल मोटी और लाल रग की होती है। इस झाड का स्वाद कडवा और खारा होता है। औषधि प्रयोग में इसकी जड़ें काम में ली जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका पौधा कडवा और खट्टा होता है। इसके सेवन से बढी हुई तिल्ली दुरुस्त हो जाती है। यह कष्टप्रद मासिक धर्म, वृण तथा जखम में भी लाभ पहुँचाता है। इसके पत्ते गीली और सूखी खुजली में लाभदायक होते हैं।

इस वनस्पतिकी प्रधान क्रिया श्वासोच्छ्वास, रक्ताभिसरण और मज्जा तंतुओंपर प्रधान रूप से होती है। इसके लेने से ज्ञानवाहक और क्रियाशील दोनों ही प्रकार के मज्जा तन्तुओंमें जडता पैदा हो जाती हैं। श्वास नलिका में यह कफ को बढाती है। इसके सेवन से मूत्र और दस्त की मात्रा बढती है। यह एक जोरदार विरेचक पदार्थ होता है। पुरानी खाँसी में इसको देने से लाभ होता है। हृदय को यह उत्तेजना देती है। सूखी और गीली खुजली में इसका लेप करने से लाभ होता है।

बुरे के मतानुसार इस वनस्पति का चिकना रस ज्वर नाशक माना जाता है और लम्बे टाइम तक रहने वाले हलके बुखार में इसको पौष्टिक वस्तु की तरह देते हैं।

सूखी और गीली खुजली को दूर करने में भी इसका उपयोग किया जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

इस वनस्पतिकी जड़ों में सेपॉनिन नामक झागदार तत्व पाया जाता है। इसी प्रकार का तत्व शीकाकाई और अरीठे में भी पाया जाता है। इसी सत्व के ऊपर इस वनस्पति के गुणधर्म अवलम्बित रहते हैं। यह पानी में घुल जाता है और हिलाने से साबुन के समान फेन देता है। इसके सत्व को लेने से तीव्र शिरोविरेचन होता है, कफ छूटता है, पेशाब अधिक होता है और दस्त साफ होता है। इसको बहुत थोडी मात्रा में लेना चाहिये। अधिक मात्रा में लेने से यह अपना जहरीला प्रभाव बतलाता है।

मुखतरी (मुस्तरू)

नाम:—

हिन्दी—मुखतरी, मुस्तारू। बेंगाल—नमूती। गुजराती—झीण की मुडी, नहानी गोरखमुंडी। मराठी—माशीपत्री, माचिपत्री। तेल्गू—सेवी। तामील—माशीपत्री। उर्दू—अफसतीन। लेटिन—Grangea Maderas Patana (ग्रेंजिया मेडरास पटना) Artemisia Maderas Patana (आर्टीमिसिया मेडरास पटना)।

वर्णन—यह अफसन्तीन के वर्ग की वनस्पति होती है। इसका पौधा जमीनपर फैला हुआ रहता है। इसके बहुत डालियाँ होती हैं और हर डालीपर सफेद रंग के रुएँ रहते हैं इसके पत्ते जुडमा और फूल पीले होते हैं। यह वनस्पति भारतवर्ष में प्रायः सभी दूर पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—इसका पौधा बहुत कडवा और खराब स्वादवाला होता है। वह ज्वरनाशक होता है। आँख और कान के दर्द में यह लाभ पहुँचाता है। इसकी जड भूख बढानेवाली, आँतों के लिये संकोचक, मूत्रल, कृमिनाशक, ऋतु श्रावनियामक और उत्तेजक होती है। यह आँतोंके दर्द, छाती और फेंफडे की तकलीफ, मस्तक शूल, अर्धाङ्ग, घुटने के जोडोंका दर्द, बवासीर, मांसपेशियोंकी वेदना, तिल्ली और यकृत के रोग और कान, मुंह तथा नाककी तकलीफों में लाभ पहुँचाती है। यह पसीने को कम करती है।

इसके पत्ते एक उत्तम अग्निवर्धक औषधिका काम करते हैं। इनमें बाधानाशक और आक्षेप निवारक तत्व रहते हैं। इनका निर्यास हिस्टीरिया को दूर करने और रुके हुए मासिक धर्म को जारी करने के लिये दिया जाता है। वेदना और कृमियोंको नष्ट करनेके लिये इसके पत्तोंका सेक किया जाता है।

इण्डोचायनामें इसके पत्ते एक अद्वितीय अग्निवर्द्धक पदार्थ समझे जाते हैं। इन पत्तोंको कुचलकर

और इनका काढा बनाकर देने से खाँसी और मासिक धर्म की गडबड़ी दूर हो जाती है। इन पत्तोंका सेक कृमिनाशक माना जाता हैं।

मेडागास्कर में इसके पत्ते अग्निवर्धक और आक्षेप निवारक माने जाते हैं।

मुर्श

नामः—

पंजाब—मुर्श। लेटिन—Cyananthus sp (सिनेंथस एसपी)।

वर्णन—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह वनस्पति पंजाब में पैदा होती है। इसके फूल दमे के अन्दर उपयोग में लिये जाते हैं।

मूत्रन

नामः—

पजाब—मूत्रनसियालियन। लेटिन—Cyperus juncifolius (सायपेरस जुन्सी फोलियस)।

वर्णन—यह नागरमोथा के वर्ग की एक वनस्पति होती है यह विशेष तौर से पजाब में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

स्टेवर्टके मतानुसार यह वनस्पति अग्निवर्द्धक और हृदय को बल देनेवाली होती है।

मुरिया

नामः—

उड़िया—मुरिया। बरमा—हतोक्शा। तामील—मेलादी। तेलगू—वूसी। मल्यालम—लेबान। लेटिन—Vitex Pubescens (विटेक्स पबेसन्स)।

में ली जाती है। यह वनस्पति उत्तरी भारत, पजाब और गगा के ऊपरी मैदानों में बहुत पैदा होती है। यह दो प्रकार की होती है एक को मूँज और एक को रामशर कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—भाव प्रकाश के मत से दोनों प्रकार की मूँज मधुर, कसेली, शीतल और कामोद्दीपक होती है। यह दाह, तृषा, रुधिर विकार, विसर्प, मूत्र रोग, नेत्र रोग और त्रिदोष को नष्ट करती है।

मूँज—मधुर शीतल, कफ पित्त के दोषों को नष्ट करनेवाली तथा भूत बाधा नाशक होती है।

स्टेवर्ट के मतानुसार इसकी जड़ प्रसूति के पश्चात् प्रसूता स्त्रियों के समीप जलाई जाती है। इसकी भाफ और इसका धूम्रपान भी लाभदायक माना जाता है।

मूसाकानी

नाम:—

सस्कृत—मूषाकर्नी, आखूपर्णी, माता, भूमिचरी, चडा, शतपत्रिका, द्रवती, मूसाकानी। बगाल—उन्दीरकानीपान। बम्बई—उन्दिरकानी। गुजराती—उन्दरकानी। मराठी, ऊदीरकानी। फ़ारसी—सतारा। उर्दू—चूहाकानी। लेटिन—Ipomoea Reniformis (इपोमिया रेनिफार्मिस)।

वर्णन—यह छोटी जाति की वनस्पति छत्ते की तरह पृथ्वी पर फैली हुई होती है। इसके पत्ते चूहे के कान के समान होते हैं। इसके दो दो पत्ते डालियों पर चूहे के दोनों कानो की तरह लगते हैं। इसकी डालिया बहुत पतली और लाल होती हैं। इस बेल की जडों में छोटे छोटे कन्द रहते हैं। इसकी छोटी और बड़ी दो जातियां होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघण्टु रत्नाकर के मतानुसार बडी मूसाकानी शीतल, मधुर, पारे को बाधनेवाली, नेत्रों को हितकारी, रसायन, तथा शूल, ज्वर, कृमि, व्रण, और चूहे के विष को हरनेवाली होती है।

भावप्रकाश के मतानुसार मूसाकानी चरपरी, कड़वी, कसेली, शीतल, हलकी, पचनेमें चरपरी तथा मूत्र रोग, कफ रोग और कृमि रोग को दूर करनेवाली होती है।

इस वनस्पति का पौधा कड़वा, कसैला, चरपरा, शीतल, कृमिनाशक, मृदु विरेचक, शांतिदायक होता है। यह गुर्दे के रोग, मूत्राशय के रोग और फेफड़े के रोगों में हितकारी है। ज्वर, पथरी, अनैच्छिक वीर्यश्राव, पाडुरोग, भगदर, श्वेतकुष्ठ, हृदय रोग और उदर रोगों में यह लाभदायक होती है।

मूसाकानी का धर्म मंडूरपर्णी के समान होता है। यह चर्मरोगनाशक, मूत्रल और बडी मात्रा में मृदुविरेचक होती है।

गोवा में इस वनस्पति का बहुत उपयोग किया जाता है। वहाँ पर इसको अनतमूल की जगह दिया जाता है। इसके लेने से दस्त साफ होता है, शरीर की शिथिलता दूर होती है और चमडे के रोग मिट जाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी लाल फूलवाली और पीले फूलवाली दो जातियाँ होती हैं। इसकी लाल फूलवाली जाति कडवी और खराब स्वादवाली होती है। यह मस्तिष्क सम्बन्धी रोग, नाक के रोग, दुर्बलता, अर्द्धांग वायु, जखम, सूजन और सिर दर्द में लाभदायक है। इसकी पीले फूल वाली जाति की जड मूत्रल और मृदुविरेचक होती है। नेत्ररोग और मसूडे के रोगों में इसको लगाने से लाभ होता है। इसका पौधा ज्वर नाशक और सिर दर्द, ब्रोंकाइटीज, लकवा, सूजन, नाक के रोग और यकृत की वृद्धि से होनेवाले ज्वर को दूर करता है।

डायमॉक के मतानुसार हिन्दू चिकित्सक इस वनस्पति के रस को चूहे के विष को दूर करने के काम में लेते हैं। कान में होनेवाले व्रण को दूर करने के लिये इसके रस को कान में टपकाया जाता है। इसके तत्वों के बारे में भी दूसरी बनस्पतियों की तरह आयुर्वेद में अतिरंजित वर्णन किया गया है। इसको अधिक मात्रा में लेने से यह विरेचक वस्तु का काम करती है।

उपयोग

चूहेका विष—चूहे की काटी हुई जगह पर इसके स्वरसको लगाने से विषका असर बहुत कम होता है।

कान के व्रण—मूसाकानी के स्वरस को कान में टपकाने से कान के व्रण मिट जाते हैं।

मूत्र विरेचन—मूसाकानी को काली मिरचों के साथ घोट कर छान कर पिलाने से मूत्र का विरेचन होता है।

बच्चों की खाँसी—इसके पंचांग को पानी में औटा कर उस पानी को पिलाने से बच्चों का श्वास, खाँसी और पेट के रोग मिट जाते हैं।

कृमि रोग—मूसाकानी का रस पिलाने से बालकों के पेट में पडनेवाले कीडे मर जाते हैं।

कामोत्तेजन—इसके रस को अथवा इसके पत्तों को पानी में पीस कर पेडू पर लेप करने से कामेंद्रिय की शिथिलता नष्ट होकर उसमें तेजी पैदा होती है।

२—इसके सूखे हुए पत्तों के चूर्ण को गेहू के आटे में मिला कर उस आटे की रोटी बना कर २१ दिन तक खाने से और पथ्य में सिर्फ दूध और गेहू की रोटी खाने से मनुष्य की शिथिल काम शक्ति जाग्रत होती है।

पेट का आफरा—इसकी जडों को पानी में पीस कर पेट पर लेप करने से पेट का आफरा दूर होता है।

काटा लगना या चुभना—शरीर के किसी भी अग में काँटा चुभ गया हो या तीर की नोक चुभ गई हो तो उस जगह इसके पत्तों को पीस कर लेप करने से वह अपने आप निकल जाती है।

सूजन—इसकी जड़के चूर्ण को जौ के आटे में मिला कर उसको गरम करके लेप करने से सूजन उतर जाती है।

मात्रा—इसकी मात्रा ५ रत्ती से १० रत्ती तक की होती है।

मूली

नाम:—

संस्कृत—चाणक्य मूलक, भूमिकक्षार, दीर्घकंद, मूलक, क्षार मूला, कुंजर, नीलकठ, राजुक, रुचिर, इत्यादि। हिन्दी मूला, मूली,। गुजराती—मूला। बगाल—मूला। मराठी—मुडा। उर्दू—मूले के बीज। पजाब—मूली। इङ्गलिश—Garden Redish (गार्डन रेडिश) अरबी—बज्रुल किजल। लेटिन—Raphanus Sativus (रेफेनस सेटिव्हस)।

वर्णन—मूली की तरकारी प्रायः सारे भारतवर्ष में खाई जाती है। इसका पौधा १ फीट से १॥ फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्तों पर बारीक २ रुएँ होते हैं। इसकी जड जमीन में सीधी जाती है यह सफेद रङ्ग की होती है। इसकी जड और पत्तों की तरकारी बना कर सब दूर खाई जाती है।

इसकी जड और बीजों मे से एक प्रकार का सफेद रग का तेल निकाला जाता है। इसकी गध अच्छी नहीं होती है। इसके बीजों का तेल सफेद रङ्ग का और पानी से भारी होता है। इस तेल में मूली के समान ही स्वाद होता है। मूली के बीजोंके तेल में गधक का काफी अंश रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मूली गरम, तीक्ष्ण, कुछ कडवी, अग्निवर्धक, कृमिनाशक, वात को दूर करनेवाली तथा अर्बुद, बवासीर और सब प्रकार की सूजन में उपयोगी होती है। हृदयरोग, हिचकी, कुष्ट, हैजा, और नष्टार्तव की बीमारी में यह लाभदायक होती है।

कच्ची मूली, कडवी, चरपरी, गरम, रुचिकारक, हलकी, अग्निदीपक, हृदय को हितकारी, तीक्ष्ण, पाचक, सारक, मधुर, ग्राही, बलकारक तथा मूत्रदोष, बवासीर, गुल्म, क्षय, श्वास, खाँस, नेत्र रोग, नाभिशूल, कफ, वात, कंठरोग, त्रिदोष, दाद, शूल, उदावर्त, पीनस और व्रण का नाश करती है। पुरानी मूली, उष्णवीर्य तथा शोष, दाह, पित्त और रुधिर के विकारों को उत्पन्न करती है। पकी हुई मूली चरपरी, गरम और अग्नि वर्धक होती है। भोजन से पहिले खाने से यह पित्त को कुपित करती है और दाह पैदा करती है। हलदी के साथ खाई हुई मूली बवासीर, शूल और हृदय रोग का नाश करती है। मूली की फली किंचित गरम और कफ-वात नाशक होती है। (मोगरी)

मूली ऊष्ण वीर्य और तिक्तरस वाली होती है। इसके ताजे पत्तों का रस और इसके बीज मूत्रल, आनुलोमिक और पथरी को नष्ट करनेवाले होते हैं। इसके ताजे पत्ते रक्त-पित्त को शमन करनेवाले होते हैं। मूत्रेन्द्रिय पर भी इनकी थोड़ी बहुत क्रिया होती है। जिन लोगों को हमेशा आदतन कब्जियत की शिकायत रहती है उनको प्रतिदिन मूली की तरकारी खाने से लाभ होता है। इसके पत्तों का रस उदरशूल, आफरा और अर्श रोग में लाभ पहुँचाता है। आनाह रोग में यह एक उत्तम औषधि है। अनार्तव रोग में इसके बीजों को ३ माशे की मात्रा में देने से लाभ होता है। पुराने सुजाक में इसके बीज ६ माशे की मात्रा में दिये जाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ बवासीर और मूत्र-सम्बन्धी शिकायतों में लाभ पहुँचाती है। इसके बीज चरपरे और कड़वे होते हैं। ये मृदुविरेचक, पौष्टिक, ऋतुश्रावनियामक और पेट के आफरे को दूर करनेवाले होते है। तिल्ली के रोग और लकवे में भी ये लाभ पहुँचाते हैं। इनके लगातार सेवन से सिर के बाल उड़ जाते हैं। इनको शराब के साथ मिलाकर देने से साप और दूसरे जहरीले जानवरों के विष में लाभ होता है।

स्टेवर्ट के मतानुसार मूली के बीज कफ-निस्सारक, मूत्रल, मृदुविरेचक, शोषक और पेट के आफरे को दूर करनेवाले होते हैं। पजाब में ये ऋतुश्राव नियामक माने जाते हैं।

मूली की जड पेशाब सम्बन्धी शिकायतों और उपदंश जनित विष को दूर करने के काम में ली जाती है। बवासीर और जठर शूल को दूर करने के लिये यह एक मशहूर औषधि है। इसके ताजे पत्तों का रस मूत्रल और मृदुविरेचक होता है।

केस और महस्कर के मतानुसार इसके बीज सर्प-विष में निरुपयोगी होते हैं।

इसके बीजों की मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक होती है और इसके रस की मात्रा १ औंस से २ औंस तक होती है।

उपयोग—

मासिक धर्म की रुकावट—इसके बीजों के चूर्ण को ३ माशे की मात्रा में देने से मासिक धर्म की रुकावट मिटकर रजोधर्म साफ होता है।

पथरी—मूली के बीजों को उचित मात्रा में कुछ दिनों तक लेने से मूत्राशय की पथरी गल जाती है।

मूत्र कष्ट—मूली का स्वरस पिलाने से पेशाब होने के समय की जलन और वेदना मिट जाती है।

मूत्रावरोध—गुर्दे की खराबी से यदि पेशाब का बनना बद हो जाय तो मूली का रस पीने से वह फिर से बनने लगता है।

मूत्रकृच्छ्र—इसके बीजों को पौने चार माशे की मात्रा में देने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

खूनी बवासीर—कच्ची मूली को खाने से बवासीर से गिरनेवाला खून बन्द हो जाता है।

आमाशय की शूल—मूली के स्वरस में नमक और मिर्ची डालकर पिलाने से आमाशय की शूल मिटती है।

श्वास और हिचकी—सूखी मूली के टुकडों को पानी में औटाकर पिलाने से श्वास और हिचकी में लाभ होता है।

श्वेत कुष्ट—इसके बीजों को अपामार्ग के क्षार के साथ पानी में पीसकर लेप करने से श्वेत कुष्ट में लाभ होता है।

स्वर भंग—मूली के बीजों को पीसकर गरम जल के साथ लेने से गला साफ होता है।

बवासीर—मूली के पत्तों को छाया में सुखाकर उनको पीसकर समान भाग शक्कर मिलाकर ४० दिन तक लगातार लेने से बवासीर मिटता है।

कामेंद्रियकी शिथिलता—मूली के बीजों को तेल में औटाकर उस तेल की कामेंद्रिय पर मालिश करने से कामेंद्रिय की शिथिलता दूर होकर उससे उत्तेजना पैदा होती है।

कान की पीडा—मूली के पत्तों के ३ तोले रस में १ तोला तेल सिद्ध करके उसको कान में टपकाने से कान की पीडा मिटती है।

कण्ठमाला—मूली के बीजों को बकरी के दूध के साथ पीसकर लेप करने से कंठमाला में लाभ होता है।

बिच्छू का विष—मूली के टुकडे पर नमक लगाकर बिच्छू के डंक पर रखने से वेदना शांत होती है। जो लोग हमेशा मूली खाया करते हैं उनपर बिच्छू का विष कम असर करता है।

पथरी—इसके पत्तों का ४ तोला रस ३ माशे अजमोद के चूर्ण के साथ दिन में २ बार लेने से पथरी गल जाती है।

दाद—इसके बीजों को नीबू के रस में पीसकर लगाने से दाद में लाभ होता है।

बवासीर—मूली की जड के बारीक-बारीक टुकडे कर उसका २ तोले रस निकालकर उसमें ५ तोला गाय का घी मिलाकर प्रतिदिन लेने से कुछ दिनों में बवासीर अच्छा हो जाता है।

मूसली

नाम:—

संस्कृत—मूसली, तालमूली, तालमूलका, महावृष्या, वृष्यकंदा, हेमपुष्पी, भूतालि, दीर्घकंदिका, कांचन पुष्पिका इत्यादि। हिंदी—काली मूसली, मूसली, सफेद मूसली। बंगाल—तालमूली। मराठी—काली मूसली, पाढरी मूसली। गुजराती—काली मूसली, धोली मूसली। फारसी—मूसली। उर्दू—मूसली। तेलगू—निलयतली गुड्डलू, नेलतारू। लेटिन—Curculigo orchioides (करक्यूलिगो आर्चि-आइडस)।

वर्णन—इस वनस्पति का पौधा ९ इंच से लेकर १॥ फुट तक लम्बा होता है। इसके पत्ते कोली कंदे के पत्तों की तरह होते हैं। पौधे के नीचे जमीन में इसकी जड़ें रहती हैं। यही जड़ें मूसली के नाम से बाजार में बिकती हैं। इसकी सफेद और काली दो जातियाँ होती हैं। आयुर्वेद में जिस मूसली का वर्णन दिया गया है वह मूसली यही है। इसके फूल पीले रंग के होते हैं और इसके फल में १ से लेकर ४ तक बीज होते हैं। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मूसली मधुर, वीर्यवर्धक, भारी, कड़वी, कामोद्दीपक, कफ-नाशक, रसायन, पेट के आफरे को दूर करनेवाली और ज्वर निवारक होती है। यह क्षुधावर्धक और मज्जावर्धक होती है। बवासीर, वात की शिकायतें, पित्त, थकान और रक्त रोगों में यह लाभदायक होती है।

आयुर्वेद के कुछ निघण्टुकारों ने इसको शीतवीर्य और कुछ निघण्टुकारों ने उष्णवीर्य लिखा है।

मूसली में चावल में पाया जानेवाला पिष्टमय द्रव्य नहीं होने की वजह से यह मधुमेह के रोगियों को पथ्य के रूप में दी जा सकती है। हर प्रकार की कमजोरी और विशेषकर स्त्री सहवास सम्बन्धी कमजोरी को दूर करने के लिये इसका चूर्ण १ तोले की मात्रा में १ तोला मिश्री के साथ मिलाकर गरम दूध के साथ दिया जाता है।

आयुर्वेद के अंदर जितनी वीर्यवर्द्धक और कामोद्दीपक औषधियाँ बतलाई गई हैं उनमें मूसली एक प्रधान औषधि है। मनुष्य की कामशक्ति को अक्षुण्ण रखने और उसके यौवन को स्थायी रखने के लिये जितने वाजिकरण पाक और चूर्ण बनते हैं उन सब में प्रायः मूसली पड़ती है। यह एक दिव्य रसायन वस्तु है।

यूनानी मत—यूनानी मत से मूसली कड़वी, मीठी, पेट के आफरे को दूर करनेवाली, पौष्टिक, कामोद्दीपक और ज्वर-निवारक होती है। वायु नलियों की सूजन, नेत्र रोग, मंदाग्नि, वमन, अतिसार, कटिवात, सुजाक, पुरातन प्रमेह, जोड़ों के दर्द और पागल कुत्ते के विष में यह लाभदायक होती है।

इसकी जड़ें श्वास, बवासीर, पीलिया, रक्तातिसार, उदरशूल और सुजाक में लाभदायक होती हैं। ये शांतिदायक, मूत्रल, पौष्टिक और कामोद्दीपक होती है।

कार्टर के मतानुसार इसकी जड़ों के बारीक चूर्ण को जखम पर भुरभुराने से जखम से बहनेवाला खून बंद होता है और जखम जल्दी सूख जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार मूसली बवासीर, पीलिया, श्वास, रक्तातिसार और सूजन में लाभ-दायक होती है।

उपयोगः—

मूत्रकृच्छ्र—मूसली के एक तोले चूर्ण में एक तोला मिश्री मिलाकर उसमें चन्दन के तेल की ३ बूँद डालकर कच्चे दूध के साथ दिन में दो बार लेनेसे मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

कर्णरोग—मूसली के स्वरस या उसके क्वाथ में चौथाई तिल्ली के तेल को सिद्ध करके उसके तेल को कान में डालने से कर्ण रोग मिटते हैं।

तिजारी—काली मूसली के चूर्ण को काजी के साथ लेने से तिजारी छूटती है।

शीघ्रपतन—स्त्री का स्मरण करते ही जिन लोगों का वीर्य पात हो जाता है उनको काली मूसली का चूर्ण बग भस्म के साथ देने से लाभ होता है।

दमा—काली मूसली की जड की छाल को छाया में सुखा कर पान में रख कर खाने से दमें में लाभ होता है।

गुर्देका शूल—काली मूसली के चूर्ण को तुलसी के रस के साथ लेनेसे गुर्दे का शूल मिटता है।

उदरशूल—दाल चीनी और काली मूसली का समान भाग चूर्ण बनाकर उसकी फकी लेने से उदर शूल मिटता है।

मूत्रातिसार—जायफल के चूर्ण के साथ काली मूसली के चूर्ण की फक्की लेने से मूत्रातिसार मिटता है।

पागल कुत्तेका विष—काली मूसली को पीपल के साथ लेने से और पीपल के साथ इसको पीस कर पागल कुत्ते की काटी हुई जगह पर लगाने से पागल कुत्ते के विष में लाभ होता है।

बनावटें—

मूसली पाक—गोखरू, कौंच के बीज, तालमखाना, बलबीज, शतावर, गगेरन की छाल, चोबचीनी, बिदारीकन्द, ये सब चीजें पाँच-पाँच तोला और मूसली आधा सेर इन सबका बारीक कपडछन चूर्ण करके उस चूर्ण को आठ सेर गाय के विशुद्ध दूध में मिलाकर उस दूध का मावा (खोआ) कर लेना चाहिये। फिर उस मावे को १॥ सेर गाय के घी में अच्छी तरह भून लेना चाहिये। उसके पश्चात् बशलोचन एक छटाँक, पीपर छोटी आधी छटाँक, पीपलामूल आधी छटाँक, अकरकरा आधी छटाँक, जायफल आधी छटाँक, जायपत्री आधी छटाँक, दालचीनी आधी छटाँक, गिलोयसत्व १ छटाँक, प्रवाल भस्म आधी छटाँक, बग भस्म दो तोला, केशर १ तोला, कस्तूरी ३ माशे और कान्तिसार ६ माशे। इन सब चीजों को कूट पीस कर कपडे में छानकर उस खोए में अच्छी तरह मिला देना चाहिये। फिर ६ सेर शक्कर की चाशनी करके उस चाशनी में उस खोए को और उसके साथ आधा सेर बादाम की मगज, आधा पाव पिश्ता, पाव भर खोपरा, पाव भर घी में तलाहुआ गोंद और ५ तोला इलायची इन सब चीजों को अच्छी तरह मिला कर एक जीव करके छटाँक छटाँक भरके लड्डू बना लेना चाहिये। अगर किसी को भाँग का शौक हो तो इसमें ३ तोला धुली हुई भाँग भी मिलाई जा सकती है। हर किसी को मिलाना लाजमी नहीं है।

इन लड्डुओं में से प्रतिदिन सबेरे और शाम एक एक लड्डू खाकर ऊपर से मिश्री मिला हुआ गाय का दूध पीना चाहिये और पथ्य में घी, दूध और पौष्टिक वस्तुओं का सेवन करना चाहिये। खटाई, लाल मिरच, गरम मसाला, इत्यादि अपथ्यकारक चीजों से और स्त्री-सग से बचना चाहिये।

इस प्रकार इस पाक का लगातार दो महीने तक प्रतिवर्ष सेवन करने से मनुष्य का बल, ओज और कांति बढ़ती है। उसकी जीवनी शक्ति और रोग निवारक शक्ति सजीदा रहती है। किसी भी रोग के कीटाणु उसपर हमला करने में सफल नहीं हो सकते। उसकी कामशक्ति, उसकी स्मरण शक्ति और उसकी इच्छा शक्ति हमेशा बलवान रहती है।

मूसली स्याह

नामः—

हिन्दी—मूसली स्याह। फारसी—मूसली स्याह। बंगाल—कुरेली। गुजराती—सिसमूलिया। लेटिन—Aneilema Scapiflorum (एनिलेमा स्केपिफ्लोरम)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय, भूटान, पश्चिमीघाट और सीलोन में पैदा होती है। इसकी जड़ें भी काली मूसली के समान होती है। मगर आयुर्वेद में वर्णित कालीमूसली यह नहीं है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड में संकोचक और पौष्टिक तत्व रहते हैं। यह मस्तक शूल, ज्वर, कामला, बहरापन और सिर के चक्कर को दूर करती है। जहर के उपद्रवों को दूर करने की शक्ति भी इसमें रहती है और ऐसा विश्वास किया जाता है कि साँप के विष पर भी यह लाभ पहुँचाती है।

इसकी जड की छाल को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण करके देने से दमें में बहुत लाभ होता है। कॉलिक उदर शूल, बवासीर और बच्चों के आक्षेप रोग में भी इसका उपयोग किया जाता है। मूत्र संबंधी अव्यवस्था और व्यभिचारजनित रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है। इसकी सूखी जड़ों का चूर्ण शक्कर के साथ मिलाकर देने से मनुष्य की कामशक्ति बढती है तथा इस चूर्ण को तुलसी के पत्तों के रस के साथ मिलाकर देने से गुर्दे का शूल बंद होता है। हकीम लोग अनैच्छिक वीर्यस्राव को रोकने के लिये इसका बहुत अधिक उपयोग करते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार इस वनस्पति की जड सर्पविष में निरुपयोगी होती है।

मूसली सफेद

नामः—

हिन्दी—सफेद मूसली, हजारमूली। बबई—धोली मूसली। मराठी—सफेद मूसली। गुजराती—सफेद मूसली। गढवाल—झिरना। सीमाप्रान्त—खेरुआ। लेटिन—Asparagus Adscendens (एस्पेरेगस एडसकेन्डन्स)।

वर्णन—इस वनस्पति का पौधा झाडीनुमा होता है। यह गुजरात, रतलाम, रुहेलखंड, मध्यभारत और पश्चिमी हिमालय में पजाब से कुमाऊँ तक पैदा होता है।

गुणदोष और प्रभाव—

इसकी जड़ें शांतिदायक और पौष्टिक होती है। अतिसार, प्रवाहिका और शरीर की साधारण कमजोरी में ये लाभदायक मानी जाती है।

मूसली सफेद

नामः—

हिन्दी—मूसली सफेद। मुडारी—पीरा जादू। गोंड—गजागाता। लेटिन—Chlorophylium Arundinaceum (क्लोरोफिटम अरुडिनेसियम)।

वर्णन—यह एक सुन्दर वनस्पति होती है। इसके पत्ते बहुत घने होते हैं। इसके फूल छोटे-छोटे और तारों के समान चमकदार होते हैं। इसके पुष्पव्रत पीले और हरे होते हैं। यह वनस्पति पूर्वी हिमालय, आसाम, बरमा और बिहार में पैदा होती है। यह मूसली से भिन्न वर्ग की वनस्पति है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति की जड पौष्टिक और कामोद्दीपक मानी जाती है।

मूरवा

नामः—

सस्कृत—मूरवा, देवश्रेणी, मधुरसा, लघुपर्णिका, दृढसूत्रिका इत्यादि। हिन्दी—चुरनहार, मुरहरी, मूरवा, घनशाली। गुजराती—मोरवेल। मराठी—मोरवेल, रानजाइ। काठियावाड—ट्रेखडोवेलो। सिंध—मूरवा। लेटिन—Clematis Triloba (क्लिमेटिस ट्रिलोबा)।

वर्णन—यह एक लता होती है। इसके पत्ते नागरबेल के पत्तों के समान पतले होते हैं। ये पत्ते ७ अगुल लबे और २ अगुल चौड़े होते हैं। प्रत्येक पान के ३ सिरे होते हैं। इन पत्तों का आकार पीलू के पत्तों के समान होता है। इसके फूल जुही के फूलों के समान सफेद होते हैं। यह वनस्पति वाम्बे प्रेसिडेंसी, कोकण, पश्चिमीघाट और हिमालय में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मूरवा मीठी, कड़वी, सकोचक, गरम, उत्तेजक और मृदु-विरेचक होती है। यह पित्त के श्राव को उत्तेजित करती है। कुष्ठ, रक्त रोग और ज्वर में यह लाभ पहुँचाती है। इसको पेट में लेने से यह प्यास, हृदय रोग और पित्तकी वमन को दूर करती है। इसका वाहरी लेप करने से यह खुजली और फोड़े-फुन्सियों में लाभ पहुचाती है और परोपजीवी कीटाणुओं को नष्ट कर देती है।

मूरवा में शामकधर्म विशेष महत्वपूर्ण होता है। इसके अतिरिक्त इसमें कुष्टनाशक और रक्तशोधक धर्म भी रहते हैं। यह पेट में जाकर त्वचा के मार्ग से पसीने के द्वारा बाहर निकलती है। त्वचा से बाहर निकलते समय यह त्वचा और त्वचा की रसग्रन्थियों को उत्तेजना देती है। जिससे पसीना छूटता है और त्वचा की विनिमय क्रिया में सुधार होकर चर्मरोगों में लाभ होता है। त्वचा के ऊपर इसकी क्रिया अनन्त मूल की तरह होती है। इससे दस्त साफ और पीले रग का होता है।

गर्मी, कठमाला, रक्तपित्त, कुष्ठ तथा खुजली में इसके पचाग की फाट बनाकर दी जाती है। ज्वरों और नवीन सधिवात में भी इसका उपयोग किया जाता है। इससे पसीना होता है और घबराहट की कमी होती है।

उपयोग—

क्षयरोग—मूरवा की जड़ का पाक बनाकर खिलाने से क्षय रोग में लाभ होता है।

खाँसी—इसकी जड़ के चूर्ण को ४ माशे की मात्रा में शहद के साथ चटाने से पुरानी खाँसी मिटती है।

सर्पविष—इसकी जड़ और पत्तों का रस पिलाने से साँप के विष में लाभ होता है।

गर्मी के चट्ठे—मूरवा के पत्तों को पीसकर लेप करने से गरमी के चट्टे तथा सूखी और गीली खुजली में लाभ होता है।

वायुगोला—मूरवा के पत्तों के रस में मिरच और लहसन डालकर देने से वायगोला मिटता है।

मूंग

नामः—

संस्कृत—मुग्द, सूपश्रेष्ठ, भुक्तिप्रद, हयानंद, सुफल इत्यादि। हिन्दी—मूंग। बंगला—मुग, बुलट, खेरूया। मराठी—मूंग। गुजराती—मग। पंजाब—मूंग। तेलगू—पाटचा। तामील–पाटचाई। इंग्लिश–Green Gram (ग्रीनग्राम) लेटिन—Phaseolus Mungo (फेसिओलस मुंगो)।

वर्णन—मूंग की दाल सारे भारतवर्ष में आमतौर से खाई जाती है। इसको सब कोई जानते हैं। इसका पौधा शुरू में क्षुप के रूप में पैदा होता है और बड़ा होने पर लता के रूप में बदल जाता है। इसके पत्ते उडद के पत्तों के समान मगर उनसे कुछ बडे होते हैं। इसके पौधे के तीन-तीन इञ्च लंबी फलियां लगती हैं। हर एक फली में सात-आठ दाने मूंग के रहते हैं। रंग के भेद से मूंग की कई जातियाँ होती हैं। जैसे काले, हरे, पीले इत्यादि।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—भाव प्रकाश के मतानुसार मूंग रूखा, हलका, मलरोधक, कफपित्त नाशक, शीतल स्वादिष्ट, किंचित वातकारक, नेत्रों को हितकारी और ज्वर को दूर करनेवाला होता है। सब प्रकार के मूंगों में हरा मूंग उत्तम होता है। क्योंकि यह पचने में बहुत हलका होता है।

मूंग पित्तकफ नाशक, वृण विनाशक, कंठरोग निवारक, हलका तथा वातरक्त, कृमिरोग और नेत्ररोग में हितकारी होता है। यह मंदाग्नि को दूर करता है, स्वर को सुधारता है और मूत्ररोगों में लाभ पहुँचाता है। यह एक उत्तम पथ्य है।

काला मूंग—त्रिदोष नाशक, मधुर, वातनाशक, हलका, दीपन, पथ्य तथा बल वीर्य और शरीर को ताकत देनेवाला होता है।

हरा मूंग—कसेला, मधुर, कफपित्त-नाशक तथा रुधिर-विकार और मूत्ररोग को दूर करता है और शीतल, हलका तथा दीपन होता है।

धूसर रंग की मूंग कसेली, मधुर, रुचिकारक तथा पित्त, वात और मलबंधकारक होती है। रस-वीर्यादिक में यह हरे मूंग के समान ही होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से मूंग स्वादिष्ट, पौष्टिक, आंतों का संकोचन करनेवाला, खून को बढ़ाने वाला तथा ज्वर में लाभदायक होता है। आँख के रोग, नाक के रोग, मस्तकशूल, गले की सूजन, ब्रोंकाइटीज, गुर्दे के रोग, पित्तविकार और रक्त-सम्बन्धी रोगों में यह लाभ पहुँचाता है।

मूंग की दाल ठंडी, हलकी और संकोचक मानी जाती है। आंखों की ज्योति बढ़ाने और ज्वर के अन्दर उत्तम पथ्य के रूप में इसका व्यवहार होता है।

मूंग या मूंग की दाल औषधि की अपेक्षा पथ्य के रूप में ही विशेष उपयोग में लिये जाते हैं। ज्वर के अन्दर एक उत्तम पथ्य के रूप में इसका यूष बनाकर दिया जाता है।

मूंग में मांसवर्द्धक द्रव्य २३ प्रतिशत, आटा ५४ प्रतिशत, तेल २ प्रतिशत और राख ४ प्रतिशत रहती है। इसमें फास्फोरिक एसिड भी पाया जाता है। पौने दो छटांक मूंग में १५८ यूनिट विटामिन (ए), १५५ यूनिट विटामिन (बी), ८-४ मिलिग्राम लोहा, १४ ग्राम केलशियम, २६ ग्राम फास्फो-रस आदि पदार्थ पाये जाते हैं। इससे पता चलता है कि जीवन रक्षा के लिये उपयोगी विटामिन (ए) विटामिन (बी), लोहा, केलसियम और फ़ास्फ़ोरस मूंग के अन्दर बहुत काफी मात्रा में पाये जाते हैं। इसलिये पथ्य के रूप में यह एक बहुत उत्तम वस्तु है। लेकिन यह खयाल रखना चाहिये कि ये सब तत्व इसकी छिलके वाली दाल में ही पाये जाते हैं। छिलका निकाल डालने पर इसके बहुत से तत्व नष्ट हो जाते हैं।

उपयोगः—

नासूर—हरे मूंग को मुँह में चबाकर नासूर पर लगाने से नासूर मिट जाता है।

दूध का जमाव—मूग और साठी चावलों को पीसकर गरम करके स्तनों पर लेप करने से दूध का जमाव बिखरता है।

पित्त ज्वर—मूंग और मुलेठी का यूष बनाकर पिलाने से पित्तज्वर शान्त होता है।

अतिसार—सिके हुए मूंग और चावलों की कीलों का क्वाथ बनाकर उसमें शहद और शक्कर डालकर पीने से अतिसार मिटता है।

विसर्प रोग—मूंगों को घी के साथ पीसकर लेप करने से विसर्प रोग में लाभ होता है।

बनावटें :—

मूंगपाक—मूंग की दाल को पानी में गलाकर उसका छिलका निकालकर उसको सिलपर बारीक पीस लेना चाहिये। फिर उसको समान भाग गाय के शुद्ध घी में डालकर हल्की आंच पर सेकना चाहिये। जब उसमे खुशबू आने लगे तब उसको उतारकर उससे दुगुनी शक्कर की चासनी बनाकर उसमें मिला देना चाहिये और साथ ही बदाम, पिस्ते, इलायची, केशर, खोपरा और बंशलोचन भी उसमें मिलाकर लड्डू बांध लेना चाहिये। इन लड्डुओं को पाचन शक्ति के अनुसार उचित मात्रा में गरम दूध के साथ खाने से वीर्य बढता है और काम-शक्ति, स्मरण शक्ति तथा मनुष्य की जीवनी शक्ति सतेज हो जाती है।

मूंगफली

नामः—

संस्कृत—भूशिंबिका, रक्तबीज, मण्डपी, भूमिजा, इत्यादि। हिंदी-मूंगफली, चीनाबादाम। मराठी—भुइ-मूग, भुइमुगाची शेंग। गुजराती—मांडवी, भुइचना, चीनीमूग। बंगाल—विलायती मूग, चीनाबदाम।

तामील—नीलाकदलाइ, वेरकड्लाइ । तेलगू-वेरूषना गल्ल । इंग्लिश—Chinese Almond चायनीज एलमंड । लेटिन—Arachis Hypogaea (आर्चिस हायपोजिया) ।

वर्णन—मूंगफली या चीनाबादाम भारतवर्ष में सब दूर खाने के काम में ली जाती है। इसका तेल भी सब दूर खाने के काम में आता है। इसका पौधा जमीन पर छत्ते की तरह फैलता है। इसके पत्ते मेथी के पत्तों की तरह मगर उनसे कुछ बड़े होते हैं। इसके पौधे में से बारीक बारीक ततु छूटकर जमीन के अन्दर घुसते हैं और जमीन में इन्हीं ततुओं के ऊपर मूगफली तयार होती है। जिसको पकने के बाद खोद कर निकाली जाती है। मूगफली की भी देश के भेद से कई जातिया होती हैं। जैसे मालवी, बराड़ी, विदेशी इत्यादि।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मूगफली का तेल मीठा, आतों के लिये सकोचक, वात और कफ को पैदा करनेवाला और खासी को पैदा करनेवाला होता है।

मूगफली के तेल का धर्म जैतून के तेल के समान होता है। यह आनुलोमिक, व्रणरोपक, कातिवर्द्धक और पौष्टिक होता है। भोजन के अन्दर इसका उपयोग करने से दस्त साफ होता है।

इसकी कच्ची फलिया दुग्धवर्द्धक होती है। जिन माताओं के अपने बच्चों के लिये पर्याप्त मात्रा में दूध नहीं उतरता है उनको इसकी कच्ची फलिया खिलाने से पर्याप्त मात्रा में दूध उतरने लगता है।

फ्रेंचगायना में इसके बीजों का तेल तीव्र उदरशूल को रोकने के लिये काम में लिया जाता है।

मेंहदी

नामः—

संस्कृत—रक्तरंगा, रागगर्भा, रंजका, नखरंजनी। हिन्दी—मेंहदी, हीना। बगाल—मेंदी, शुदी। गुजराती—मेंदी। मराठी—मेंदी। पजाब—हिना, मेंहदी, पनवार। तामील—कुरिजी, पिदाई। तेलगू—गोराता। उर्दू—मेंहदी। अरबी—हीना, अलहीना। इंग्लिश—Henna Platn (हीनाप्लेंट)। लेटिन—Lawsonia Inermis, L. Alba (लासोनिया इनरमिस और लासोनिया एल्बा)।

वर्णन—मेंहदी एक मगल द्रव्य के रूप में तथा स्त्रियों की उङ्गलियों और नाखूनों के शृंगार के निमित्त सारे भारत में आर्यजाति के अदर बहुत प्राचीनकाल से काम में ली जाती है। इसका पौधा ३ फीट से लेकर ६ फीट तक ऊँचा होता है। यह झाड़ीनुमा होता है और हमेशा हरा बना रहता है। इसके पत्ते छोटे-छोटे और गोल होते हैं। इसके फूल खुशबूदार, छोटे और आम के मोर की शकल के होते हैं। इसके फल गोल और छोटे छोटे करोंदे के समान रहते हैं। वे कच्ची हालत में हरे और पकने पर

लाल पड जाते हैं। इसके पत्तों को छायाँ में सुखाकर उनका चूर्ण बनाया जाता है। वही चूर्ण बाजार में मेंहदी के नाम से बिकता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसके पत्ते वमनकारक, कफनिस्सारक, शरीर की दाह को शान्त करनेवाले और श्वेतकुष्ठ में लाभदायक होते हैं। इसके फूल उत्तेजक और हृदय तथा मज्जातन्तुओं को बल देनेवाले होते हैं। इसके बीज मलरोधक, ज्वरनाशक और उन्माद में लाभ पहुँचानेवाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके पत्ते कडवे और बदजायका होते हैं। ये घावको भरनेवाले और मुत्रल होते हैं। मस्तक शूल, कटिवात, खाँसी, वृण, जखम, नेत्ररोग, गर्मी के चट्टे, गीली खुजली, तिल्ली के रोग और मासिकधर्म सम्बन्धी रोगों में ये उपयोगी होते हैं। ये रक्त को शुद्ध करते हैं, बालों को बढाते हैं और मुलायम करते है। इसके फूल घाव को पूरनेवाले होते हैं। इन फूलों का शीत निर्यास सिर दर्द को दूर करता है। इसके बीज मज्जातन्तुओं को बल देनेवाले होते हैं।

इसकी छाल पीलिया, तिल्ली की वृद्धि और पथरी रोग में दी जाती है। गलितकुष्ठ और दुसाध्य चर्म रोगों में इसको एक धातु परिवर्तक औषधि की तरह देते हैं। अग्नि से जले हुए स्थान पर इसका काढा लेप करने से शांति मिलती है।

इसके फूलों की फांट ज्वर के अदर दाह को शान्त करने, सिर दर्द को कम करने, हृदय का संरक्षण करने और नींद आने के लिये दी जाती है। चेचक की बीमारी में आँखों को खराब न होने देने के लिये, इसके पत्तों का लेप पैर के तलवों पर किया जाता है। सधिवात में इसके पत्तों का लेप करने से लाभ होता है। यकृत की वृद्धि में इसकी छाल का प्रयोग किया जाता है।

गरमी अथवा पित्त की वजह से सिर दर्द होता हो तो इसके पत्तों को तेल में उबाल कर उस तेल को सिर पर लगाया जाता है और इसके फूलों की फाट पीने को दी जाती है। चर्मरोगों में मेंहदी एक बहुत उपयोगी वस्तु है। कुष्ठ वगैरह प्राचीन चर्मरोगों में इसके पत्ते और फूलों का अवलेह बनाकर दिया जाता है। मुखवृण और गले की सूजन में इसके पत्तों के क्वाथ से कुल्ले करने से लाभ होता है। जिनके पैर के तलवों में हमेशा जलन होती है ऐसे लोगों को इसके ताजा पत्तों को पीसकर पैर के तलवों पर कुछ दिनों तक लेप करने से लाभ होता है।

इसके पत्तों का लेप एक शांतिदायक पुल्टिस की तरह किया जाता है। इसके फूल तृषाशामक और ज्वर में लाभदायक माने जाते हैं। तकिये में रुई की जगह मेंहदी के फूलों को भरकर जिन रोगियों को नींद न आती हो उनके सिरहाने रख देने से उन्हें नींद आ जाती है।

तामील प्रान्त के वैद्य इसके पत्तों और फूलों से एक तरल सत्व तयार करते हैं जो कि गलितकुष्ठ के रोग में बहुत लाभदायक माना जाता है।

कोकण में इसके पत्तों के रस में पानी और शक्कर मिलाकर अनैच्छिक वीर्यस्राव को रोकने के लिये हैं। गर्मी और सर्दी की मूर्च्छा को रोकने के लिये इन पत्तों का रस दूध के साथ दिया जाता है।

कम्बोडिया में इसकी जड़ मूत्रल और छाती के रोगों को दूर करनेवाली मानी जाती है। वहाँ के लोग सुजाक और ब्रोंकाइटीज में इसका इस्तेमाल करते हैं।

अनाम में इसके पत्ते गलितकुष्ट और कामला की चिकित्सा में उपयोगी समझे जाते हैं। दाद और विसर्पिका रोग में भी इनका विशेष उपयोग होता है।

मुसलमान हकीम चेचक की बीमारी में मेंहदी के पत्तों को पीसकर रोगी के पैरों के तलवों पर लगाते हैं। उन लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से चेचक के रोगी की आँखों में फूला नहीं पड़ता और उसकी आँखें सुरक्षित रहती हैं। मेंहदी के फूलों का तकिया बनाकर वे चेचक के रोगी के सिरहाने पर रखते हैं। जिससे रोगी को नींद आ जाती है।

गायना में इसकी छाल का काढ़ा ऋतुश्राव नियामक माना जाता है और इसके पत्ते घावपूरक समझे जाते हैं। वहाँ के लोग गलितकुष्ट और चर्मरोगों में इसका उपयोग करते हैं।

श्वेतकुष्ट और मेंहदी—रसयोग सागर नामक प्रसिद्ध ग्रंथ के रचयिता बम्बई के सुप्रसिद्ध वैद्यराज स्व० पंडित हरिप्रपन्नाचार्य ने सन् १९२७ में सूरत के अन्दर प्रांतीय वैद्य सम्मेलन में श्वेतकुष्ठ के सम्बन्ध में एक अनुभूत योग बतलाया था, वह इस प्रकार है।

बिना शुद्ध की हुई सुहागी और बिना शुद्ध किया हुआ आँवलासार गंधक इन दोनों को समान भाग लेकर १ दिन खरल में घोटना चाहिये। उसके पश्चात् तीन-चार कपड़मिट्टी की हुई एक इतनी बड़ी आतशी शीशी लेना चाहिये जिसके चौथाई हिस्से में यह सारा चूर्ण आ जाय और उसके तीन हिस्से खाली रहें। ऐसी शीशी में इस चूर्ण को भरकर बालुका यंत्र में उस शीशी को इस प्रकार दबाना चाहिये जिससे शीशी का गले से ऊपर का भाग बालू से बाहर खुला रहे। फिर इस यंत्र को चूल्हे पर चढ़ाकर उसके नीचे हलकी आँच जलाना चाहिये। यह आँच उतनी ही देर तक देना चाहिये जितनी देर में शीशी के अन्दर की दवा पिघल कर एक रस हो जाय। इस बात की जाँच के लिये शीशी के मुँह में लोहे की सलाई डालकर देखते रहना चाहिये। औषधियों के तरल होते ही उस यंत्र को आँच से नीचे उतार लेना चाहिये। ठण्डा होने पर उसमें से शीशी को बाहर निकाल कर उस शीशी के बीच में से दो टुकड़े कर डालना चाहिये। शीशी को तोड़ते समय इस बात का खयाल रखना चाहिये कि कोई काँच का टुकड़ा उस दवा के अन्दर न पड़ जाय। इसके लिये शीशी को तोड़ने की एक सरल रीति यह है कि एक कपड़े की डोरी को मिट्टी के तेल में तर करके जिस जगह से शीशी को तोड़ना हो ठीक उसी जगह शीशी के चारों ओर लपेटकर दियासलाई से उसे जला दें। जब शीशी का वह भाग खूब गरम हो जाय तब कपड़े के एक दूसरे टुकड़े को ठण्डे पानी में गीला करके उसी जगह पर लपेट दें। उसके लपेटते ही शीशी के उस जगह से दो भाग हो जायँगे। इस प्रकार जब शीशी टूट जाय तब उसमें से भीतर की औषधि को निकाल कर, जितना उसका वजन हो उससे आठ गुने मेंहदी के ताजे फूल लेकर उस औषधि को तथा फूलों को एक साथ खरल में डालकर खूब घोटना चाहिये। घोटते-घोटते जब सब औषधि चूर्ण के समान हो जाय तब उसे एक बोतल में भर लेना चाहिये।

श्वेतकुष्ठ के रोगियों को यह औषधि सबेरे शाम तीन तीन माशे की मात्रा में देकर ऊपर से शास्त्रोक्त महामन्जिष्ठादि क्वाथ पिलाना चाहिये। इस महामन्जिष्ठादि क्वाथ में वायविडंग की जगह डीकामारी डालना चाहिये।

अगर रोगी को दस्त साफ न होता हो तो सनाय के पत्ते, बीज निकाली हुई कालीदाख और गुलाब के फूलों को समान भाग लेकर, चूर्ण करके उस चूर्ण में से दो तोला चूर्ण प्रतिदिन रात को सोते समय जल के साथ देना चाहिये, जिससे मल की गठानें दस्त की राह बाहर निकल जायँगी। सनाय के पत्तों से अगर पेट में कटता हो तो मीठी बादाम का तेल एक तोले की मात्रा में पिलाना चाहिये पर यह चूर्ण अवश्य देना चाहिये।

पथ्य में रोगी को सिर्फ दूध अथवा दूध भात ही देना चाहिये। किसी भी प्रकार का मसाला, तेल, क्षार अथवा नमक बिलकुल बंद कर देना चाहिये। नहाने में साबुन का प्रयोग नहीं करना चाहिये। बाहरी उपचारों में नीम के बीज और सत्यानाशी के बीजों का तेल मिलाकर रोग की जगह पर मालिश करना चाहिये और दो, तीन घंटे के पश्चात् गरम पानी से स्नान करना चाहिये।

इस प्रकार चालीस दिन तक इस औषधि का सेवन करने से श्वेत कुष्ठ का रोग चाहे वह कितना ही पुराना क्यों न हो नष्ट हो जाता है और दो चार महीने तक लगातार सेवन करने से गलित कुष्ट में भी बहुत लाभ होता है।

उपयोग—

जोड़ों की पीडा—मेंहदी के आधा सेर पत्तों को सेर भर पानी में औटाकर जब आधा पानी रह जाय तब उसमें आधा सेर तिल्ली का तेल डालकर उस तेल को सिद्ध कर लें। इस तेल की मालिश करने से जोड़ों का दर्द मिटता है।

आधा शीशी—मेंहदी के पत्तों को पीसकर मस्तक पर लेप करने से आधाशीशी मिटती है।

कुष्ठ—मेंहदी के ७॥ तोले पत्तों को रात भर पानी में भिगोकर सबेरे मल छानकर पीने से चालीस दिन में कुष्ठ मिटता है।

मुँह के छाले—मेंहदी को पानी में भिगोकर उस पानी से कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं अथवा इसके पत्तों को मुँह में रख कर चबाने से भी मुँह के छाले मिटते हैं।

कामला—इसके पत्तों को जौ कुट करके रात भर पानी में भिगोकर उनका नितरा हुआ जल प्रातः काल सात दिन तक पिलाने से कामला रोग मिटता है।

फोडे *फुन्सी*—मेंहदी के क्वाथ से सब प्रकार के फोडे फुन्सियों को धोने से बडा लाभ होता है।

मसूडे के रोग—मसूडे के ऐसे असाध्य रोग जो दूसरी औषधियों से न मिटते हों मेंहदी के पत्तों के क्वाथ से कुल्ले करने से मिट जाते हैं।

सूजन—इसके ताजे पत्तों को पीसकर उनका पुलटिस बाँधने से सूजन और पीड़ा मिटती है।

गठिया—गठिया के तीव्र वेग में मेंहदी के ताजे पत्तों को पीसकर रात्रि को सोते समय गाढ़ा लेप करना चाहिये। जब तक गठिया नहीं मिटे तब तक लगातार लेप करते रहना चाहिये।

पैरों की जलन—गरमी के दिनों में जिन लोगों के पैरों में निरतर जलन होती है उनके पैरों पर मेंहदी के पत्तों का लेप करने से बहुत लाभ होता है।

प्रमेह—मेंहदी के पत्तों के स्वरस में थोड़ा पानी मिलाकर पिलाने से प्रमेह वालों को लाभ होता है।

तिल्ली के रोग—मेंहदी की छाल के चूर्ण की फक्की देने से कामला और तिल्ली के रोगों में बहुत फायदा होता है।

पथरी—मेंहदी की छाल का हिम बनाकर पिलाने से पथरी गल जाती है।

असाध्य चर्मरोग—कुष्ठ और दूसरे असाध्य चर्मरोगों में इसकी छाल का क्वाथ बनाकर पिलाने से बहुत लाभ होता है।

मस्तक के रोग—मस्तक के रोगों में मेंहदी के बीजों को शहद के साथ चाटने से अथवा इसके फूलों का क्वाथ पिलाने से अच्छा लाभ होता है।

रक्तातिसार—मेंहदी के बीजों को कूटकर घी में भिगोकर सुपारी के समान गोलियाँ बना लेना चाहिये। इनमें से सवेरे शाम एक-एक गोली लेने से रक्तातिसार में तत्काल लाभ होता है।

प्रमेह—मेंहदी के पत्तों का रस चार औंस, चार औंस गाय के दूध में मिलाकर पीने से प्रमेह में लाभ होता है।

गठान—मेंहदी के पत्तों को बारीक पीसकर उनका पुल्टिस गठान पर बाँधने से गठान बैठ जाती है।

मेनफल

नामः—

संस्कृत—वस्ति शोधन, छर्दन, घाराफल, गेला, ग्रंथिफला, मदन, मरुवक, इत्यादि। हिन्दी—मदन, मेनफल, मेनहुरी। बगाल—मदन, मेनफल। बम्बई—गेलफल, घेला। गुजराती—मिंढल, मिंढोल। मराठी—गेलफल। पंजाब—मिंढल, मदकोला, आरार। तेलगू—मदनमू। तामील—मुसक्काइ। उर्दू—मेनफल। अरबी—जोझुलकोसुल। अंग्रेजी—Common Emetic Nut। लेटिन—Randia Dumetorum (रेंडिया ड्यूमेटोरम)।

वर्णन—मेनफल का वृक्ष छोटा और झाडीनुमा होता है। इसकी डालियों पर बहुत मजबूत और तीक्ष्ण काटे होते हैं। इसके पत्ते अपामार्ग अथवा चिरचिरे के पत्तों के समान होते हैं। इसके फूल सफेद, सुगन्धित और ५ पंखडी के होते हैं। इस झाड का आकार प्रकार और रग रूप भिन्न भिन्न आवहवा के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। इसका फल १ से लेकर १॥ इञ्च तक लम्बा, गोल और अखरोट के आकार का होता है। इस फल के भीतर दो खाने होते हैं। उनमें बीज रहते हैं। इसकी छाल आध इञ्च मोटी, कुछ भूरे और सफेद रग की, खरदरी और सफेद छींटे वाली होती है। यह वनस्पति सारे भारतवर्ष के पहाडी प्रान्तों में पैदा होती है। इसके फल हिन्दू लोगों में शादी के अवसर पर वर-कन्या के हाथ में बाँधे जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मेनफल का फल कडवा, मीठा, गरम, लेखन, हलका, वमन-कारक, विद्रधि को दूर करने वाला, घृण विनाशक और जुकाम को मिटानेवाला होता है। यह रूखा और कफ, आनाह, सूजन, गुल्म और घाव को दूर करता है।

निघटु-रत्नाकर के मतानुसार काले और सफेद दोनों प्रकार के मेनफल शीतल, मधुर, कटु, तिक्त, कसेले वमनकारक, कफनाशक, पाकाशय और आमाशय का शोधन करने वाले तथा पित्त और हृदय रोग का नाश करनेवाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से मेनफल कडवा और खराब स्वाद वाला होता है। यह वमन को लाने-वाला, विरेचक और पेट के आफरे को दूर करनेवाला होता है। पुरानी खांसी, मांस पेशियों का दर्द, लकवा, सूजन, कुष्ठ, घृण, फोडे-फुन्सी, मस्तिष्क सम्बन्धी रोग, दमा, खांसी और श्वेत कुष्ठ में यह उपयोग में लिया जाता है।

मेनफल एक उत्तम वामक औषधि है। देशी चिकित्सा विज्ञान में जितनी वामक औषधियों का उल्लेख है उनमें यह सर्वोत्कृष्ट है। बिना किसी प्रकार की हानि के और बिना किसी प्रकार के उपद्रव के इसके फलों को देने से मनुष्य को वमन होता है। वामक धर्म के अतिरिक्त इसमें कफनाशक और संकोचक धर्म भी रहते हैं। इन गुणों की वजह से यह खांसी, जुकाम, विद्रधि, सूजन इत्यादि रोगों में भी काम में लिया जाता है।

चरक, सुश्रुत इत्यादि प्राचीन आचार्यों ने वमन कराने के लिये मेनफल के बीजों का उपयोग करने की व्यवस्था दी है। उनका कथन है कि वमन लानेवाली औषधियों में मेनफल सबसे श्रेष्ठ औषधि है। ये फल वसन्त और ग्रीष्म ऋतु के मध्य में, शुभ दिन में, प्रातःकाल वृक्ष के ऊपर से ग्रहण करना चाहिये। जो फल कच्चे, छोटे और कीडों के खाये हुए हों उनको अलग करके, उत्तम पके हुए पीले रग के फलों को लेकर उनके ऊपर डाव लपेटकर मट्ठे का लेप करके धूप में सुखाना चाहिये। जब उनका लेप सूख जाय तब उनको आठ दिन तक किसी अनाज के ढेर में गाड देना चाहिये। फिर उन कोमल और मधु के समान गधवाले फलों पर से ऊपर लपेटी हुई डाव को निकाल कर धूप में सुखाना चाहिये। जब ये सूख

जायँ तब उन फलों के बीजों को निकालकर इन बीजों को घी, दही, शहद और तिल के आटे के साथ अच्छी तरह खरल करके फिर से धूप में सुखा लेना चाहिये। फिर मिट्टी के नये बरतन को धोकर साफ करके उसमें इनको भरके उस वर्तन का मुँह अच्छी तरह बन्द करके छींके पर रख देना चाहिये। जब किसी को वमन लाने की जरूरत हो तब इनका उपयोग करना चाहिये।

लेकिन आजकल के नवीन चिकित्सा विज्ञान में इस प्राचीन परिपाटी का समर्थन नहीं किया गया है। आजकल के अनुभव में जो बातें आई हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि इस फल के बीज नहीं प्रत्युत इसके भीतर का गर्भ ही असली वामक पदार्थ होता है। इसके बीज तो कृमिनाशक और दस्त लाने वाले होते हैं और पित्त की बीमारी तथा बच्चों के कृमियों को नष्ट करने के लिये दिये जाते हैं। वमन के लिए तो इसके फल का गर्भ ही उपयोगी होता है।

डॉक्टर नॉडकरनी लिखते हैं कि एक पके हुए फल का गर्भ वमन लाने के लिये कॉफी होता है। फल में से गर्भ को निकाल कर, उसे सुखा कर, बारीक पीस कर वमन लाने के लिये १० से २० रत्ती तक की मात्रा में और पसीना लाने के लिये अथवा कफ निकालने के लिये ढाई से ५ रत्ती तक की मात्रा में देना चाहिये। अगर दो फलों का गर्भ एक साथ दिया जाय तो तत्काल अर्थात् १० मिनिट में उल्टी हो जाती है। एक बार उल्टी होने पर अगर फिर गरम पानी पिलाया जाय तो फिर से उल्टी होती है। इस प्रकार ज्यों-ज्यों गरम पानी पिलाते जायँगे त्यों त्यों उलटियों की सख्या बढ़ती जायगी।

डॉक्टर मुडीन शरीफ के मतानुसार रक्तातिसार को रोकने के लिये यह वनस्पति इपिकेकोना की उत्तम प्रतिनिधि है। इसके गर्भ का चूर्ण इस काम के लिये बहुत उत्तम होता है। अतिसार के लिये इसका चूर्ण १५ से लेकर ३० ग्रेन तक की मात्रा में और वमन कराने के लिये ४० ग्रेन की मात्रा में दिया जाता है।

मुरे के मतानुसार यहाँ के देशी चिकित्सकों का यह विश्वास है कि इस फल के गूदा में कृमिनाशक तत्व रहते हैं। कुछ समय तक एक गर्भस्रावक औषधि की तरह भी इसका उपयोग किया जाता था। मेनफल के गूदा को पीसकर उसके चूर्ण को बच्चों की जबान और तालू पर उस समय लगाया जाता है जब उनके दात निकलते हैं और यह विश्वास किया जाता है कि इससे बच्चों के दात निकलने के समय की ज्वर इत्यादि सब व्याधिया दूर हो जाती हैं।

राबर्टस के मतानुसार सांप के काटे हुए व्यक्ति को मेनफल के गर्भ का चूर्ण खिलाया जाता है और इसकी जड को बैल के मूत्रमें पीसकर सर्प दंश के रोगी की आँखों में उसकी मूर्च्छा, बेहोशी और अवसन्नता को दूर करने के लिये आजा जाता है।

दक्षिण में तजोर पिल्स के नाम से एक प्रकार की गोलियाँ बनाई जाती हैं। साँप के विष को दूर करने के लिए इन गोलियों की बहुत ख्याति है। इन गोलियों में भी मेनफल का गर्भ एक प्रधान औषधि की तरह मिलाया जाता है।

चरक और सुश्रुत के मतानुसार इसका फल दूसरी औषधियों के साथ सर्प के विष को दूर करने के काम में आता है।

फेस और महस्कर के मतानुसार इस वृक्ष का प्रत्येक हिस्सा सर्प और विच्छू के विष पर निरु-पयोगी होता है।

मेनफल के वृक्ष की छाल संकोचक होती है। कालिक उदरशूल में इसके फल को कुचल कर चावल के पानी के साथ मिलाकर नाभि के ऊपर लगाया जाता है।

मेनफल और वध्यत्व—जगल्नी जडी बूटी नामक ग्रन्थ में इस औषधि के अंदर एक और आश्चर्य-जनक गुण का उल्लेख किया गया है। इस ग्रंथ के लेखक का कथन है कि मेनफल के बीज का चूर्ण करीब ३ माशे की मात्रा में लेकर दूध, शक्कर और केशर के साथ पीने से अथवा कसार (एक प्रकार की मिठाई जो गेहूँ के आटे और गुड के मेल से बनाई जाती है) में मिलाकर खाने से जिस स्त्री के सतान न होती हो वह गर्भधारण करती है। जब यह प्रयोग चलता हो तब आठ-दस रत्ती मेनफल के बीजों का चूर्ण गुड में मिलाकर उसकी बत्ती बनाकर स्त्री की योनि में रखना चाहिये। इस बत्ती के रखने से गर्भाशय में रहनेवाले वे सूक्ष्म जतु जो वीर्य का भक्षण कर जाते हैं उनका नाश हो जाता है। इसके अतिरिक्त गर्भाशय में वायु, सरदी अथवा जल का भाग अधिक हो तो वह भी दूर हो जाता है। इसी प्रकार अगर गर्भाशय में मास बढ़ गया हो अथवा मस हो गये हों तो वे भी गल जाते हैं। अगर मासिक धर्म अनियमित आता हो अथवा कम आता हो या मासिकधर्म के समय बहुत वेदना होती हो तो वह भी इससे दूर होकर मासिक धर्म नियमित होने लगता है। क्योंकि मेनफल उष्णवीर्य होने से वायु और सरदी को दूर करता है। कृमिनाशक होने से गर्भाशय के सूक्ष्म जतुओं का नाश करता है। वस्ति और रजोशोधक होने से यह मासिक धर्म को नियमित करता है और शोथघ्न और व्रणनाशक होने की वजह से यह गर्भाशय की सूजन आदि को दूर करता है। इन्हीं अत्युत्तम गुणों की वजह से विवाह संस्कार के समय नवदपति के हाथ में इस फल को देने का रिवाज है। यह रिवाज नवदपति को इस बात का सकेत करता है कि कदाचित अगर वे विवाह के चरम लक्ष्य सतानोत्पत्ति में समर्थ न हों तो इस फल का उपयोग करें।

उपयोग—

ज्वर—मेनफल के वृक्ष की छाल की फकी देने से ज्वर में होनेवाली हडफूटन दूर होती है।

चोट—मेनफल को गोबर में मिलाकर लेप करने से चोट की पीडा मिटती है।

अतिसार—मेनफल को शहद में मिलाकर चटाने से अतिसार और आमातिसार मिटता है।

दाँत के रोग—बच्चों के दाँत आने के समय में अकस्मात ज्वर अथवा कोई दूसरे रोग हो जायँ तो इसके दरदरे चूर्ण को जबान और तालू पर लेप कर देना चाहिये।

गठिया—गठिया की सूजन पर मेनफल का लेप करने से सूजन बिखर जाती है।

फोडे—मेनफल और रेवन्द चीनी का लेप करने से फोडे जल्दी पककर फूट जाते हैं।

मुख दूपिका—मेनफल का लेप करने से मुँह के ऊपर होनेवाली कीलें और दूसरे त्वचा के रोग मिटते हैं।

उदरशूल—मेनफल को चावलों के जल में पीसकर नाभि के ऊपर लेप करने से उदरशूल मिटता है।

तिजारी—मेनफल के चौथाई टुकडे को एक बडी इलायची के दानों के साथ नागरबेल के पान में रखकर पारी के दिन खिलाने से तिजारी छूटती है।

आधाशीशी—मेनफल को गाय के दूध में घिसकर सूँघने से आधाशीशी मिटती है।

मेथी

नाम—

सस्कृत—बहुपर्णी, मेथिका, मेथी, दीपनी, वेदनी, गधबीजा, चद्रिका, मिश्रपुष्पा, मुनींद्रिका इत्यादि। हिन्दी—मेथी। बगाल—मेथी। मराठी—मेथी। गुजराती—मेथी। पजाब—मेथी। तेलगू—मेंति। तामील—वेंदयम। अरबी—हुल्बा। फारसी—शमलिद्द। अग्रेजी—Fenugreek (फेन्यूग्रीक)। लेटिन—Trigonella Foenum-graecum (ट्रिगोनेला फोइनम ग्रीसम)।

वर्णन—मेथी का शाग भारतवर्ष में सब दूर कसरत के साथ खाया जाता है। इसको सब कोई जानते हैं। इसलिये इसके वर्णन की आवश्यकता नहीं। इसके बीज जिनको मेथीदाना कहते हैं पीले रग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मत से मेथी चरपरी, गरम, रक्तपित्त को कुपित करनेवाली, दीपन, रस में कडवी, मलरोधक, हलकी, रूखी, हृदय को हितकारी, बलकारक तथा ज्वर, अरुचि, वमन, वातरक्त, कफ, खाँसी, बादी, बवासीर और कृमियों को नष्ट करती है।

इसके बीज गरम, कडवे, पौष्टिक, ज्वरनाशक और कृमिनाशक होते हैं। ये भूख को बढाते हैं आतों का सकोचन करते हैं। कुष्ठ में लाभ पहुँचाते हैं। वमन, खासी, बवासीर और वात को दूर करते हैं। मुँह के खराब जायके को सुधारते हैं और हृदय रोग में लाभ पहुँचाते हैं।

मेथी के पत्ते शीतल, पित्तशामक, पाचन, आनुलोमिक और शोथनाशक होते हैं।

इसके पत्तों की तरकारी से पित्त प्रकृति के मनुष्य का कब्ज दूर हो जाता है। व्रणशोथ में इसके पत्तों का लेप करने से जलन की कमी होती है और सूजन का जोर कम हो जाता है। पित्त ज्वर में इसके पत्तों का रस देने से शाति होती है।

रक्तातिसार में इसके बीजों को कूटकर उनकी फाट बनाकर देते हैं। इससे रक्त का गिरना कम होता है और मल पीले रंग का होता है। प्रसूतिकाल में प्रसूता स्त्री को मेथी के बीजों का दूसरे सुगधित द्रव्यों

के साथ पाक बनाकर दिया जाता है। इस पाक से प्रसूता को भूख लगती है, उसको दस्त साफ होता है और उसके गर्भाशय की गदगी दूर होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका पौधा और इसके बीज गरम और खुश्क होते हैं। यह मृदु-विरेचक, पीव निकालनेवाला, मूत्रल और ऋतुस्राव नियामक होता है। यह जलोदर, पुरानी खाँसी और तिल्ली तथा यकृत की बीमारी में उपयोगी होता है। इसके पत्तों का भीतरी और बाहरी उपयोग करने से सूजन और जलन में लाभ होता है। ये बालों को गिरने से रोकते हैं।

मेथी के बीज पौष्टिक, कामोद्दीपक और शातिदायक होते हैं। इन बीजों से कई प्रकार की मिठाइयाँ बनाई जाती हैं और वे अजीर्ण, भूख की कमी, सधिवात, कामशक्ति की कमजोरी और प्रसूतास्त्रियों के अतिसार को दूर करने के लिये दी जाती है। इसके बीजों का शीतनिर्याय चेचक के बीमार को शाति-दायक पेय की तरह पिलाया जाता है।

दक्षिणी भारत में इसके बीजों को भूनकर उनका शीत निर्याय बनाकर अतिसार के रोगियों को देते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके बीजों में ट्रिगोनेल्लिन नामक एक उपक्षार पाया जाता है। इसमें एक तरह का स्थिर तेल भी रहता है जो १०० तोला बीजों में से ६ तोला तेल निकलता है।

उपयोग—

बदगाठ—मेथी के बीज और असालू को पीसकर लेप करने से बदगाठ बैठ जाती है।

छाती के रोग—मेथी के बीजों के क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से छाती के पुराने रोग मिटते हैं।

गालों की सूजन—मेथी के बीज और जौ के आटे को सिरके के साथ पीसकर गालों पर पतला लेप करने के सूजन उतर जाती है।

कान का बहना—मेथी के बीजों को दूध में पीसकर छानकर कुनकुना करके कान में टपकाने से कान से पीव का बहना बन्द होता है।

बवासीर—मेथी के बीजों का क्वाथ बनाकर पिलाने से अथवा इनको दूध में औटाकर पिलाने से बवासीर के खून का बहना बन्द हो जाता है।

आमातिसार—मेथी के पत्तों को घी में तलकर खाने से आमातिसार मिटता है।

चोट—मेथी के पत्तों का पुल्टिस बनाकर बाधने से चोट की सूजन मिटती है।

गठिया—गुड में मेथी का पाक बनाकर खिलाने से गठिया मिटती है।

दाह—इसके पत्तों को ठडाई की तरह घोट छानकर पीने से शरीर की अतर्दाह मिटती है और इसके पत्तों का ठडा लेप करने से शरीर की बाहरी जलन शात होती है।

मेदालकड़ी

नामः—

संस्कृत—मेदा, मेदिनी, मेदासरा, मनिछिद्रा, मधुरा, जीवनी, साध्वी, पुरुषदतिका, स्वल्पपर्णी, इत्यादि। हिन्दी—मेदालकडी, गरब्री जोर, मेंडा, मेघ। बगाल—मेदालकडी, कुकुरचिता, गरुड। बबई—चिकना, मेदालकडी। पजाब—मेदालकडी, चमन, मेदासाक, मेदाचोब। मराठी—मेदालकड़ी। तेलगू—मेदानरा। तामील—अमा। इंग्लिश—Common Tallow Lawrel (कामन टेलो लारेल)। लेटिन—Litsea chinensis, L. Sebifera (लिटसिया चायनेंसिस, लिटसिया सेबिफेरा)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति का हमेशा हरा रहनेवाला वृक्ष पजाब, मध्य प्रात, सतपुडा और हिमालय में बहुत पैदा होता है, इसके पत्ते मोटे और लम्बे होते हैं। इसकी छाल पीली, भूरी और ऊबड खाबड होती है। इसके फूल कुछ पीलापन लिये हुए होते हैं, इसके पत्तों में दालचीनी के समान गन्ध आती है। इसके फल काली मिरच के समान होते हैं। इसके बीजों में सफेद रग का तेल होता है। इस वृक्ष की छाल को मेदालकड़ी बोलते हैं। यह पुरानी होने पर खराब हो जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मेदालकड़ी की जड़ कुछ मीठी, शीतल, कामोद्दीपक, स्तनो में दूध बढानेवाली और पित्त, दाह, खासी, क्षय, ज्वर, कुष्ठ और वात में लाभदायक होती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड कुछ मीठापन लिये हुए कडवी, सकोचक, पौष्टिक, कफनिस्सारक और कामोद्दीपक होती है। यह सूजन, मस्तिष्क की गर्मी, जोडों के दर्द, प्यास, गले की शिकायत, तिल्ली के रोग और अर्द्धाङ्ग वायु में लाभदायक होती है। इसके बीज कामोद्दीपक होते हैं।

इसकी चिकनी और लुआबदार छाल एक शातिदायक और मृदु-संकोचक पदार्थ की तरह बहुत बड़े परिमाण में काम में ली जाती है। पटना के अन्दर यह कामोद्दीपक भी मानी जाती है। चोट और मोच के ऊपर इसकी ताजी छाल को पीस कर अथवा सूखी छाल को पानी या दूध के साथ पीस कर शातिदायक लेप के रूप में लगाई जाती है और जखम से बहनेवाले खून को रोकने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। यह वेदनानाशक भी मानी जाती है। विषैले प्राणियों के काटने पर विषनाशक पदार्थ की तरह इसका लेप किया जाता है। इसके बीजों से एक प्रकार का तेल प्राप्त किया जाता है जो जोडों के दर्द में मालिश करने के काम में लिया जाता है।

डाक्टर देसाई के मतानुसार मेदालकडी स्नेहन, सूजन को नष्ट करनेवाली और कुछ स्तम्भक होती है। इसके लेप से त्वचा के भीतर की बारीक रक्त-वाहिनियों का संकोचन होता है और त्वचा में मुलामियत आ जाती है और वेदना कम हो जाती है। चोट, मोच और सूजन पर इसको ठडे पानी में पीस कर लगाते हैं बगाल और मध्यप्रान्त के किसान लोग अतिसार और प्रवाहिका में इसको खाने को देते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्प और बिच्छू के विष में निरुपयोगी है।

उपयोग—

अतिसार और प्रमेह—मेदालकड़ी की ६ माशे छाल पानी में पीस कर देने से अतिसार और प्रमेह में लाभ होता है।

चोट और मोच—मेदालकडी, सज्जीखार और आंबी हल्दी इन तीनों चीजों को पानी में पीसकर लेप करके सेंकने से रक्त का जमाव बिखर जाता है जिससे चोट और मोच की पीड़ा दूर हो जाती है।

कामोद्दीपन—मेदालकड़ी का चूर्ण ६ माशे की मात्रा में दूध मिश्री के साथ १ महीने तक लेने से मनुष्य की काम-शक्ति की शिथिलता दूर होती है।

मेढासिंगी

नाम.—

बम्बई—कसेरी, मानचिंगी, मेंढल, मेससिंगी। मराठी—मेडासिंगी, मेरसिंगी। मेवाड़—कसेरी। अवध—हावर। मध्यप्रांत—मेढसिंग, भिल, दुदगा। तामील—कदालेट्टि। तेलगू—चित्तीवोदी। लेटिन—Dolichandrone Falcata (डोलीचेन्ड्रोन फेल्केटा)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का वृक्ष होता है। इसका वृक्ष १० से लेकर २० फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते ७ ५ से लेकर १५ सेंटि मीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। यह वनस्पति राजपूताना, बुन्देलखण्ड, बिहार, मध्यप्रांत, बरार, कोंकण और मद्रास प्रेसिडेन्सी में पैदा होती है।

बहुत से लोग गुडमार (Gymnema Sylvestris) नामक वनस्पतिको मेढासिङ्गी मानते हैं। इस वनस्पति का वर्णन हमने गुडमार के प्रकरण में इस ग्रन्थ के तीसरे भाग में दिया है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति के फल का काढा गर्भपात को रोकने के लिये काम में लिया जाता है।

मेंतोग

नामः—

पंजाब—मेंतोग, निम्बर, लेटिन—Senecio Tenuifolius, Doronicum, T. (सेनेसियो टेनुइफोलियस, डोरोनिकम टेनुइ फालियस)

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है। इसका पौधा ६ से लेकर १८ इंच तक ऊँचा

होता है। इसके पत्ते बिना डंठल के होते हैं। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। यह वनस्पति कर्नाटक, दक्षिण और पंजाब में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते चमड़े को मुलायम करने वाले और घाव को अच्छा करनेवाले होते हैं।

मेस्टापाट (अम्बाड़ी)

नाम:—

संस्कृत—अम्बालिका, अम्बष्ठा, भुरमल्लि, छिन्नपत्री, चित्रपुष्पी, गन्धपत्री, मुखवाचिका, शठबा इत्यादि। हिन्दी—अम्बाडी, नलिता, पाटसन। बिहार—कुद्रुम। बंगाल—अम्बाडी, मेस्टापाट, नलिता, पाटसन। दिल्ली—तुख्मइमाग। गुजराती—भिंडियाम्बोई। मराठी—अम्बाडा, अम्बाडी। फारसी—सुजादो। पंजाब—पाटसन, सनकोकरा, सिंजुबारा। तामील—कचुराई। तेलगू—गोंगुरा। इंग्लिश—Ambari Hemp (अंबारीहेंप) लेटिन—Hibascaus Canabinas (हिबिस्कस केनाबिनस)।

वर्णन—यह वनस्पति बरसात के दिनों में पैदा होती है यह भिंडी के वर्ग की वनस्पति होती है। इसके पत्तों की तरकारी बनाई जाती है और बीजों का तेल निकाला जाता है। पत्ते और फूल औषधि के काम में आते हैं और इसके लम्बे रेशों से रस्सियाँ बनाई जाती हैं। इस वनस्पति की खेती सारे भारतवर्ष में होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिकमत—आयुर्वेदिक मत से इसके बीज कसेले, खट्टे, अग्निवर्द्धक, भूख बढानेवाले कफ वात नाशक और कर्णशूल को नष्ट करनेवाले होते हैं। इसके पत्ते रक्तातिसार, खून की खराबी, पित्त विकार और गले के रोगों में उपयोगी होते हैं।

इसके बीजों का बाहरी लेप वेदना नाशक और चोट तथा मोच में लाभ पहुँचाता है और इसके बीजों का अन्तः प्रयोग कामोद्दीपक और पौष्टिक होता है। इसके पत्ते विरेचक होते हैं। पित्त विकार और अम्लपित्त अथवा ऐसे अजीर्ण में जिसके साथ खट्टी डकारें आती हो, इसके एक तोला फूलों के स्वरस में शक्कर और काली मिरच पिलाने से तुरन्त लाभ होता है। खाँसी में इसके पत्तों का शीत निर्यास बनाकर देने से लाभ पहुँचता है।

मेरिनो

नामः—

पंजाब—मेरिनो, स्पगझा। नेपाल—चीन्याफल। इंग्लिश—Shrubby Cinguefoil (श्रबी सिंगूफोइल)। लेटिन—Potentlla fruticosa (पोटेंटिला फ्रूटीकोसा)।

वर्णन—यह एक छोटी झाड़ीनुमा वनस्पति होती है। इसके फूल पीले रंग के होते हैं। यह वनस्पति काश्मीर में आठ हजार फीट से लेकर बारह हजार फीट की ऊँचाई तक और सिकिम में बारह हजार फीट से लेकर १६ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का शीत निर्यास एक संकोचक द्रव्य की तरह काम में लिया जाता है।

मेरोमचुंची

नाम —

संथाल—मेरोमचुंची। लेटिन—Cyanotis tuberosa (सीनोटिस ट्यूबरोसा)।

गुण दोष और प्रभाव—

संथाल जाति के लोग बहुत लंबे टाइम तक रहनेवाले ज्वर में इसकी जड़ का उपयोग करते हैं और उनके पशुओं के जब कीड़े पड़ जाते हैं तब वे इनको लगाने के काम में लेते हैं।

मैंसिल

नामः—

संस्कृत—मनःशिला, गोला, मनोज्ञा, नागजिह्विका, रोगशिला, रसनेत्रिका दिव्यौषधि इत्यादि। हिन्दी—मेन्सिल। बंगाल—मछाल। मराठी—मनशील। गुजराती—मणसल। फारसी—जरनिक, अहेमर। लेटिन—Arsenicum Rubrum (आरसेनिकम रूब्रम)।

वर्णन—मेन्सिल एक खनिज द्रव्य होता है। इसके अन्दर दो भाग गंधक और दो भाग संखिया रहता है। इसका रंग नारंगीपन लिये हुए लाल होता है। यह दो प्रकार का होता है। एक खान से निकला हुआ और एक बनावटी। खान से निकला हुआ नारंगी रंग का लाल होता है और बनावटी मैंसिल माणिक के रंग का होता है। कुछ लोगों के मत से मैंसिल तीन प्रकार का होता है। एक श्यामाँगी दूसरा करवीरका, तीसरा द्विखंडा। इनमें से करवीरका सबसे उत्तम होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मेंसिल भारी, बलकारक, सारक, गरम, लेखन, चरपरा, कड़वा, स्निग्ध तथा विष, श्वास, खाँसी, भूतबाधा, कफ और रुधिर के विकारों को दूर करता है।

अशुद्ध मेंसिल बल का नाश करनेवाला, मलरोधक, मूत्ररोधक, शर्करा रोग को पैदा करनेवाला और मूत्रकृच्छ् को उत्पन्न करनेवाला होता है।

मेंसिलको शुद्ध करने की विधिः—मेंसिल के छोटे-छोटे टुकडे करके उसको पोटली में बाँधकर हलदीके क्वाथ में दौला यन्त्र के अन्दर एक पहर तक औटाना चाहिये। फिर उसी प्रकार एक-एक पहर ३ दिन तक बकरी के मूत्र में दौलायन्त्र के अन्दर उसे शुद्ध करना चाहिये। फिर जलभाँगरा और अगस्तिये के क्वाथ में उसे एक पहर तक पचाना चाहिये। उसके पश्चात् उसको ७ भावनाएँ अगस्तिया के पत्तों के स्वरस की और ७ भावनाएँ अद्रक के स्वरस की अलग-अलग देना चाहिये। इतनी क्रिया के पश्चात् मेंसिल शुद्ध हो जाता है।

मेंसिलको भस्म करने की विधिः—मेंसिल की भस्म की क्रिया हरताल भस्म की क्रिया के समान होती है। हरताल को भस्म करने की विधि हरताल के प्रकरणों में अगले भागों में देखना चाहिये।

मेंसिलका तेल निकालने की विधिः—एक सेर हलदी की गाँठों को २ सेर गाय के दूध में रात भर भिंगो दे। प्रातःकाल उन गाँठों को बाहर निकाल कर धूप में सुखावे। इस प्रकार ७ दिन तक रात्रि भर हलदी को दूध में भिगोना और दिनमें सुखाना चाहिये। इन ७ भावनाओं के पश्चात् हलदी की गाँठों के चाकू से चार-चार पाँच-पाँच टुकडे कर लें। फिर उन टुकडों को धूप में खूब सुखा लें। इस शुद्ध हलदी में से ८ तोला हलदी लेकर उसके साथ ४ तोला मेंसिल मिलाकर कूट लें। बारीक टुकड़े हो जाने पर दोनों चीजों को एक काँच की बोतल में भरकर बालुका गर्भपाताल यन्त्र से तेल निकाल लें। यह स्मरण रहे कि लोहे के तारों की गोली बनाकर बोतल के मुँह मे घुसा दें जिससे संखिया का चूर्ण और हलदी के टुकडे बाहर न गिर सकें। फिर उस बोतल को लोहे के नल से ढाँककर ऊस नल के अन्दर बालू भर दें। फिर नलिका के चारों तरफ जो नाँद रहती है उसमें ऊपले कण्डे भरकर आग लगा दें। आग लगाने के बाद जब अग्नि निर्धूम हो जाय तब जितने ऊपले नाँद में और अँटसकें उतने और भर दें, जब वे भी निर्धूम हो जायँ तब जिसके तल भाग में धुएँ को निकालने का और वायु सचार का छिद्र किया गया है उस लोहे की नाँद को औंधी करके ढँक दें। यन्त्र के नीचे बोतल के मुख के ठीक सामने काँच, पत्थर अथवा चीनी का प्याला रख दें। ३ घण्टे के बाद उस बोतल में से तेल टपक-टपक कर उस प्याले में इकट्ठा होने लगेगा और ५।६ घण्टे में सब निकल जायगा।

इस तेल को एक-दो सींक पान में लगाकर खाने से और ऊपर से तेल का मालिश करने से दाद, खाज, कुष्ठ इत्यादि सब प्रकारका के रक्तविकारो में लाभ होता है।

उपयोग—

दाद और *खुजली*—मेंसिल को पानी के साथ पीस कर लेप करने से दाद और खुजली मिटती है।

जुएँ—मैनसिल को सरसों के तेल में मिला कर सिर में लगाने से जुएँ मर जाती हैं।

तन्द्रा—मैनसिल को बोहे की लार में घिसकर नेत्रों में आँजने से तन्द्रा दूर होती है।

त्वचा के रोग—तीन तोले मैनसिल को महीन पीस कर १ सेर गाय के घी में डालकर औटावें। जब उसका धुआँ निकलना बन्द होजाय तब उसको उतार कर एक पानी से भरे हुए पात्र में उलट दें। जिससे वह सब घी पानी के ऊपर आ जायगा। उस घी को इकट्ठा कर के रख लें। इस घी को लगाने से सब प्रकार के दाद, खाज, खुजली इत्यादि त्वचा के रोग आराम होते हैं।

ज्वर और खाँसी—शुद्ध किये हुए मैनसिल को बहुत सूक्ष्म मात्रा में देने से ज्वर और खाँसी में लाभ होता है।

बनावटें.—

मैनसिल के योग से शिला चन्द्रोदय, शिला सिंदूर इत्यादि कई प्रकार के रस तयार होते हैं। इनका विवेचन पारद के प्रकरण में देखना चाहिये।

मेदा

नाम —

संस्कृत—मेदा, वीर, मणिच्छिद्रा, मधुर, स्नेहवती, मल्या, स्वल्पपर्णी इत्यादि। हिन्दी—मेदा।

वर्णन—यह आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध अष्टवर्ग की एक औषधि है। इसका कंद सफेद रंग का होता है। इस कंद में नाखून लगाने से एक प्रकार का रस टपकता है। अभी तक आधुनिक चिकित्सा शास्त्र को इस वनस्पति का निश्चित पता नहीं लगा है। कुछ बंगाल के वनस्पति शास्त्रियों ने और कुछ हिमालय के आसपास भ्रमण करनेवाले वानस्पतिक धर्मप्रेमियों ने अपनी अपनी अटकल से अष्टवर्ग की इन वनस्पतियों का पता लगाने का प्रयत्न किया है। मगर अभी तक उनके प्रयत्न सर्वमान्य नहीं हुए हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से मेदा मधुर, शीतल, वीर्यवर्द्धक, स्वादिष्ट, भारी, धातुवर्द्धक, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाली स्निग्ध, कफकारक तथा वात, पित्त, रक्तविकार, क्षय, ज्वर, दाह और खाँसी को दूर करने वाली होती है।

मोलसरी

नामः—

संस्कृत—बकुल, केशर, भ्रमरानन्द, स्त्रीमुखमधु, अनगका, कठ, मधुपजर इत्यादि। हिन्दी—मौलसरी, बकुल। बंगाल—बकुलगाछ। बंबई—बोरसली। गुजराती—बोलसरी। मराठी—वकुल, बरसोली। पंजाब—मोल्सरी। तामील—अलागु, केसारम्। तेलगू—केसारा। उर्दू—मोलसरी। लेटिन—Mimusops Elengi (मिमूसोप्स इलेंगि)।

वर्णन—मोरसली के वृक्ष २० से लेकर ३५ फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते जामुन के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फूल कुछ मैलापन लिये हुए सफेद, बहुत छोटे और अत्यन्त सुगन्धित होते हैं। इनकी सुगध सूखने पर भी नहीं जाती। इसके वृक्ष नर और मादा दो प्रकार के होते हैं। मादा वृक्ष के फल आते हैं और नरवृक्ष के नहीं आते। नरवृक्ष का फूल कुछ बड़ा और सफेद होता है। मादावृक्ष का फूल कुछ सिंदूरी रग का होता है और उसका फल पीले रग का आता है। हर एक फल में एक एक बीज होता है। यह पुष्पवृक्ष भारतवर्ष के प्रायः सभी बगीचों में लगाया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मौलसरी की छाल कुछ कड़वी, मीठी, शीतल, हृदय को बल देनेवाली, अग्निवर्द्धक, कृमिनाशक और सकोचक होती है। मसूड़े और दाँत की व्याधियों में यह बहुत उपयोगी होती है। पित्तविकार को यह दूर करती है। इसके फूल मीठे, स्निग्ध, कसैले, विशद, शीतल, आँतों का सकोचन करनेवाले, रुचिवर्धक, दाँतों को मजबूत करनेवाले और रक्तविकार को दूर करनेवाले होते हैं। इसके फल मीठे, चरपरे, स्निग्ध, आँतों का संकोचन करनेवाले और वात को पैदा करनेवाले होते हैं। इसके बीज हिलते हुए दाँतों को मजबूत करते हैं। इनको सूँघने से मस्तकशूल दूर होता है।

इसकी छाल कसेली और पौष्टिक, फूल रोचक और फल स्निग्धताकारक और सग्राहक होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी जड़ कुछ मीठी और खट्टी, कामोद्दीपक, मूत्रल, आँतों का संकोचन करनेवाली और सुजाक में लाभदायक होती है। इसके काढ़े से कुल्ले करने से मसूड़े के रोग दूर होते हैं। इसके फूल कफ निस्सारक और पित्त विकार, यकृत की शिकायतें, नाक की बीमारियाँ और मस्तक शूल में लाभदायक होते हैं। इनका धूम्रपान करने से दमे में लाभ होता है। इसके फल और इसके बीज खट्टे मीठे, कामोद्दीपक, मूत्रल, आँतों का संकोचन करनेवाले और सुजाक में लाभदायक होते हैं।

जावा द्वीप में इसकी छाल का काढ़ा जीर्ण ज्वर में एक पौष्टिक वस्तु की तरह दिया जाता है। इसके फूलों से भभके से तयार किया हुआ अर्क ज्वर में उत्तेजना और शुद्धि के लिये दिया जाता है। हिलते हुए दाँतों को स्थिर करने के लिये और मुँह से बहती हुई लार को रोकने के लिये इसकी छाल के काढ़े से कुल्ले करते हैं अथवा कच्चे फलों को चबाते हैं। प्राचीन रक्तमिश्रित अतिसार में इसके पके हुए फल खिलाये जाते हैं।

बंगाल में अड़वाह नामक एक विशेष प्रकार की बीमारी का बहुत चलन है। इस बीमारी में बहुत तेज बुखार रहता है, जोर का सिर दर्द रहता है, गले में दर्द रहता है, कंधे और शरीर के दूसरे भागों में भी बहुत दर्द रहता है। इस बीमारी में इसके फूलों का बारीक चूर्ण नस्य की तरह सुंघाने से नाक के जरिये बहुत सा दूषित मल निकल जाता है और सिर दर्द तथा दूसरी वेदना मिट जाती है।

इसके पके हुए फलों का गूदा शीतल और संकोचक होता है और प्राचीन अतिसार में बहुत सफलता के साथ उपयोग में लिया जाता है।

बच्चों की कब्जियत को दूर करने के लिये इसके बीजों के मगज़ को थोड़े पुराने घी के साथ बत्ती बनाकर उस बत्ती को उनकी गुदा में रखने से १५ मिनट में मल की कठोर गांठें दस्त के साथ निकल जाती हैं।

जिन स्त्रियों के गर्भ न रहता हो उनको इसकी छाल का सेवन कराने से कुछ दिनों में उनका गर्भाशय शुद्ध होकर वे गर्भधारण के योग्य हो जाती हैं।

इसकी छाल के चूर्ण में समान भाग शक्कर मिलाकर खिलाने से गर्भाशय से पानी का बहना बंद हो जाता है।

इसके बीजों को यन्त्र में दबाकर तेल निकाला जाता है। यह तेल खाने के काम में आता है। इसके फूलों में एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है।

महर्षि सुश्रुत के मतानुसार मोलसरी के पत्ते दूसरी औषधियों के साथ सर्प के विष को दूर करने के लिये दिये जाते हैं।

चॅक्रदत्त के मतानुसार इसके ताजा पत्तों का दबाकर निकाला हुआ रस आधे चाय के चम्मच की मात्रा में नाक में टपकाने से साँप के काटे हुए की मूर्च्छा और बेहोशी दूर होती है।

मतलब यह कि मौलसरी दाँतों और मसूड़ों के लिये एक बहुमूल्य औषधि है। इसकी छाल के चूर्ण से मंजन करने से अथवा इसकी छाल के काढ़े से कुल्ले करने से या इसके फल को मुँह में चबाते रहने से दाँत और मसूड़े मजबूत होते हैं और उनके रोग मिट जाते हैं।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्पविष में निरुपयोगी है।

उपयोग—

अतिसार—मोलसरी के बीजों को ठंडे पानी में पीसकर देने से अतिसार दूर होता है। पुराने अतिसार में इसके पके हुए फल का गूदा बहुत लाभदायक होता है।

हृदयरोग—मौलसरी के फूलों का हार पहिनने से और इसके फूलों को सूँघने से और इसकी अंतर छाल का क्वाथ पीने से हृदय रोग में लाभ होता है।

प्रमेह और धातुरोग—मोलसरी के ताजे फूल १ तोला बदाम की मगज़ ३ दाने और ३ माशे मिश्री, इन चीजों को मिलाकर सवेरे शाम दोनों टाइम लेने से और ऊपर से १ तोला ठंडा पानी पीने से धातु-

विकार में लाभ होता है। अगर किसीके दाँत असमय में हिलने लग गये हों तो कुछ दिनों तक इस औषधि का लगातार सेवन करने से मजबूत हो जाते हैं।

बालकों की खाँसी—मोलसरी के ताजे फूल २ तोला, १ तोला पानी में भिगोकर रात भर रखना चाहिये। सवेरे उस पानी को छानकर बच्चे को पिला देना चाहिये। इस प्रकार ३ से ७ दिन तक करने से बच्चों की खाँसी मिट जाती है।

मुखरोग—मोलसरी, आवला और खेर इन तीनों वृक्षों की छाल का काढा बनाकर दिन में दस-बीस बार उस काढे से कुल्ले करने से मुँह के छाले, मसूडों की सूजन और सब प्रकार के मुखरोग तत्काल आराम होते हैं और दात बहुत मजबूत हो जाते हैं।

मूत्राशय के रोग—मोलसरी की छाल का हिम बनाकर पिलाने से मूत्राशय और मूत्रनाली की झिल्ली का श्राव बन्द हो जाता है।

मोम

नाम:—

सस्कृत—मधुच्छिष्टम्, मयनम्, सिक्थकम्, मक्षिकामल, मधुरियत्। हिन्दी–मोम, मेण। गुजराती–मेण। मराठी—मेण। बगाल—मोम। पजाब—मोम, सिरथा। तेलगू—मेनम्। अरबी—शमे, शया। फारसी—मोम। लेटिन—Cera Alba (सेरा एल्बा)।

वर्णन—मोम मधुमक्खी के छत्ते में से प्राप्त किया जाता है। इसको छत्ते मे से निकालने की विधि इस प्रकार है—मधुमक्खी के छत्ते में से मधु को निचोडने के पश्चात् उस छत्ते को औटते हुए पानी में डाल दिया जाता है जिससे मोम पिघल कर जल के ऊपर तैरने लगता है और दूसरी चीजें जल के नीचे बैठ जाती है। फिर उस पानी के पात्र को अग्नि पर से उतार कर उसको जमीन पर रख देते हैं। जब वह ठण्डा हो जाय तब उस पर जमे हुए मोम को इकठा कर लेते हैं। अगर खौलते हुए पानी मे शोरे का तेजाब भी डाल दिया जाय तो मोम बहुत साफ और निर्मल प्राप्त होता है। यह मोम पीले रग का होता है। इस मोम को फिर विशेष क्रियाओं के द्वारा सफेद बनाया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

मोम कोमल, स्निग्ध, भूत बाधाओं को हरनेवाला, वृण को भरनेवाला, भग्नसंधानकारक तथा रुधिर के विकारों को हरनेवाला है।

मोम पिच्छिल, स्वादिष्ट, कटु, स्निग्ध, नरम, अस्थि सधानकारक, व्रण को हितकारी तथा वात, कोढ, विसर्प और रुधिर विकार को आराम करने वाला होता है।

मोम, स्निग्ध, मृदु, कटु, पिच्छल, मधुर और व्रण को भरनेवाला होता है। घाव या कोमल त्वचा

पर तीक्ष्ण पदार्थ के लगाने से जो जलन होती है वह मोम को लगाने से अथवा उस पदार्थ को मोम में मिला कर मरहम बना कर लगाने से नहीं होती है। अतिसार और आमातिसार को दूर करनेवाली औषधियों में थोडा सा मोम मिला देने से उनकी शक्ति बढ जाती है। स्नायु सम्बन्धी और गठिया की पीडा को मिटाने के लिये मोम के तेल का मालिश किया जाता है। ७ माशे मोम में २ माशे नमक मिला कर उसकी बत्ती बना कर उस बत्ती पर थोडा सा घी चुपड कर उसको गुदा में रखने से दस्त आ जाता है और वायुशूल मिट जाता है। अगर बत्ती बाहर निकल आवे तो फिर पीछे उसे गुदा में रख देनी चाहिये।

कर्नल चोपरा के मतानुसार मोम के अन्दर चिकित्सा सम्बन्धी तत्व बहुत रहते हैं। इसका प्रधान उपयोग प्लास्टर और मरहम बनाने के सम्बन्ध में होता है। मोम और गूगल को समान भाग लेकर तिल के तेल के साथ इसका एक मलहम बनाया जाता है। जो बाल तोड और स्फोटक के ऊपर लगाने के काम में लिया जाता है।

मोरपंखी

नामः—

संस्कृत—मयूर शिखा। हिन्दी—मोरशिखा, मोरपखी। मराठी–मयूर शिखा। गुजराती–मोरशिखा। इंग्लिश–Peacock's Tail (पीकाक्स टेल)। लेटिन–Actinopteris Dichotoma (एक्टि-नोपेटेरिस डिचोटोमा)।

वर्णन—यह एक तृण की जाति की छोटी वनस्पति होती है। इसका पौधा ६ इञ्च ऊँचा होता है। इसकी जड में से अनेक शाखाएँ निकलती हैं और इन शाखाओं के सिरे पर मोर के पख के समान तुर्रा निकलता है। इसी से इसको मोरपखी कहते हैं। इसकी शाखाओं का रग हरा होता है और इसके सिर पर निकलनेवाले मोरपख का रग भी हरा होता है। मगर पुराना पडने पर इसका रग नीला हो जाता है।

मोरपखी के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न प्रकार की वनस्पतियां उपयोग में ली जाती है। कई लोग सेलोसिया क्रिस्टेटा (Celosia Crisiata) नामक वनस्पति को जिसे हिन्दी में लाल मुर्गा कहते हैं मोरपखी समझ कर काम में लेते हैं। इस वनस्पति का वर्णन इसी भाग में मयूर शिखा के नाम से किया जा चुका है। कुछ लोग एडिएण्टम कॅडेटम (Adiantum candatum) नामक हसराज के वर्ग की वनस्पति को मोरपखी मानते हैं। इसका वर्णन भी इस ग्रन्थ में मयूरशिखा के नाम से पहिले दिया जा चुका है। मगर अनेक जिम्मेदार और अनुभवी वैद्य इसी Actinopteris Dichotoma नामक वनस्पति को असली मोरपखी मानते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

जगलनी जडी बूटी के लेखक वैद्य शास्त्री शामलदास गौर का कथन है कि मोरपंखी एक दिव्य औषधि है। अनुपान भेद से इसका उचित उपयोग करने पर यह अनेक रोगों को दूर करती है। बालकों के सूखा जिसको अगरेजी में (Ricket) रिकेट कहते हैं यह औषधि बहुत अच्छा काम करती है।

इसके पंचाग के चूर्ण को १ रत्ती से लेकर २ रत्ती की मात्रा में शहद अथवा दूध के साथ प्रतिदिन देने से थोड़े ही दिनों में आश्चर्यजनक लाभ दिखलाई देने लगता है। कुछ लोग इसके चूर्ण के बदले इसके पंचाग की राख करके उस राख को इसी मात्रा में शहद के साथ देते हैं और उससे भी ऐसा ही लाभ होता हुआ दिखलाई देता है।

नारू के रोग पर भी यह औषधि अच्छा काम करती है। इस वनस्पति को गौ मूत्र के साथ खरल करके उसकी लुग्दी बनाकर नारू पर पट्टी चढाने से ३-४ दिन में नारू नष्ट हो जाता है।

जिन स्त्रियों को सन्तान न होती हो उनका बन्ध्यत्व दूर करने में भी यह औषधि सफल समझी जाती है। इसके बारे में लक्ष्मणा नामक प्रसिद्ध वनस्पति की यह प्रतिनिधि मानी जाती है। लेकिन लक्ष्मणा का हर स्थान पर उपलब्ध होना कठिन है और यह वनस्पति हर स्थान पर मिल सकती है। बन्ध्यत्व को दूर करने के लिये इस वनस्पति का उपयोग इस प्रकार किया जाता है। मासिक धर्म के चतुर्थ दिन में जब स्त्री स्नान करके शुद्ध हो जाय तब मोरपखी का चूर्ण ६ माशे लेकर गाय के घी में मिलाकर सूर्य के सम्मुख खड़ी रहकर चाट ले अथवा मोरपखी, शिवलिंगी और नागकेशर इन तीनों चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर गाय के घी में उस चूर्ण को घोटकर नौ नौ माशे वजन को गोलियाँ बना ले और मासिक धर्म से शुद्ध होने पर प्रति दिन १ गोली दूध में मिला कर सूर्य के सामने खडी होकर पी जावे। इन दोनों योगों में से कोई भी योग ७ दिन तक लगातार प्रतिदिन सबेरे सेवन करना चाहिये और पथ्य में सिर्फ दूध और भात लेना चाहिये। जब तक यह औषधि चलती रहे तब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये और ७ दिन के पश्चात् औषधि खतम होने पर पुरुष के साथ सहवास करना चाहिये। इस प्रकार जब तक गर्भ न रहे तब तक हर महीने ७ दिन तक यह प्रयोग करना चाहिये। कुछ ही महीनों में इस प्रयोग से गर्भाशय की शुद्धि होकर स्त्री गर्भधारण कर लेती है।

बालकों की खाँसी ओर हूपिंग कफ पर भी यह वनस्पति लाभ पहुँचाती है। इसको छाँह में सुखाकर पीस कर १ से २ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ बालकों को चटाने से हर प्रकार की खाँसी में लाभ होता है।

अतिसार के ऊपर भी मोरपखी का चूर्ण १ से २ माशे की मात्रा में लेने से बहुत लाभ होता है।

बनावटें :—

पारद भस्म—आयुर्वेद में पारद को बाँधनेवाली जिन ६४ दिव्य औषधियों का उल्लेख किया गया है उनमें मोरपंखी भी एक है। इसके योग से पारद को किस प्रकार बाँधा जाता है और किस प्रकार उसकी भस्म बनाई जाती है इस सम्बन्ध का एक योग जगलनी जड़ी बूटी के आधार से हम नीचे देते हैं।

देशी नौसादर पाँच तोला और शुद्ध नीला थूथा पाँच तोला लेकर दोनों को अलग २ पीस लेना चाहिये। फिर लोहे की कढ़ाही में ढाई तोला नौसादर बिछाकर उसी के ऊपर ढाई तोला नीलाथूथा पिसा हुआ बिछा देना चाहिये। उस नीले थूथे के ऊपर तीन तोला पारा रख कर उस पारे पर शेष बचा हुआ ढाई तोला नीला थूथा बिछा देना चाहिये और उस नीले थूथे पर बाकी का ढाई तोला नौसादर दबाकर धीरे से

उस कढाही में एक सेर पानी भरना चाहिये। यह खयाल रखना चाहिये कि पानी भरते समय व्यवस्था-पूर्वक रखी हुई ये औषधियाँ बिखर न जाय। उसके पश्चात् उस कढाही को हलकी आँच पर चढा देना चाहिये। जब वह पानी जल जाय तब उस कढाही में फिर एक सेर पानी धीरे से भर देना चाहिये। जब वह पानी भी जल जाय तब उस कढाही को उतार कर ठण्डी कर लेना चाहिये। उसके पश्चात् उस कढाही में साफ पानी डालकर हाथ से खूब मसलना चाहिये। मसलते-मसलते जब सब पानी मैला होकर काला पड जाय तब उस पानी को नितारकर अलग कर देना चाहिये और उसकी जगह फिर नया पानी उस कढाही में डालकर फिर मसलना चाहिये। जब वह भी काला पड़ जाय तब उसको भी फेंक देना चाहिये। फिर नया पानी लेकर धोना चाहिये। इस प्रकार जब धोते धोते पानी का मैला होना बद हो जाय और वह जैसा का तैसा स्वच्छ रहे तब उसमें से पारे को निकालकर खरल में डालकर सत्यानाशी के रस में १ घंटे तक घोटकर शुद्ध पानी से धो डालना चाहिये। सत्यानाशी के रस की यह क्रिया ७ वार करना चाहिये। इतना करने के पश्चात् वह पारा टिकडी वनने की स्थिति में आ जाता है। उसकी टिकडी बनाकर १ सप्ताह तक छाया में सुखाना चाहिये। फिर ५ तोला हरी मोरपखी की लुग्दी बनाकर उस लुग्दी में इस टिकडी को रखकर उसके ऊपर ७ बार कपडमिट्टी कर लेना चाहिये। जब यह कपडमिट्टी सूख जाय तब ६ सेर बकरियों की मेंगनिया लेकर उनको सुलगाना चाहिये। जब उन सबके अगारे पड जायँ और उनमें से धुआँ निकलना बन्द हो जाय तब उस कपडमिट्टी किये हुए गोले को उन मेंगनियों की आग में इस प्रकार डाट देना चाहिये कि वह गोला बराबर आग के बीच में रहे। तीसरे दिन जब अग्नि बिलकुल ठंडी हो जाय तब उस गोले को धीरे से निकाल कर सावधानी के साथ उस कपडमिट्टी को निकालना चाहिये और उसके अदर से बताशे के समान फूली हुई निर्धूम पारद भस्म को निकालकर खरल करके साफ और सुन्दर शीशी में भर लेना चाहिये।

यह भस्म पारे का जितना वजन होता है ठीक उतने ही वजन में प्राप्त होती है। इसको १ चावल भर की मात्रा में मक्खन के साथ प्रतिदिन चाट लेना चाहिये। यह भस्म तत्काल फलदायक, रसायन और बाजिकरण होती है। वृद्ध लोग इसका सेवन करके जवानी का आनन्द उठा सकते हैं। धातुक्षीणता, स्वप्नदोष इत्यादि रोगों को नष्ट करके यह मनुष्य को दीर्घजीवी बनाती है। इस भस्म का सेवन करते समय तेल, खटाई, हींग इत्यादि गरम वस्तुओं का त्याग करना चाहिये।

मोराइ

नाम—

पुश्तु—मोराई। अरबी—मिश्कतरेलमाशीह। लेटिन—Ziziphora Tenuior (झिझिफोरा टिनूयर) Z. Clinopodioides (झिझीफोरा क्लिनोपोडिआइडस)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी बहुशाखी वनस्पति होती है, इसकी शाखाएँ जड के पास से ही निकलना रम्भ हो जाती हैं। यह वनस्पति बलुचिस्तान और अफगानिस्तान में विशेष तौर से पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति कफ निस्सारक, कामोद्दीपक, शान्तिदायक, पेट के आफरे को दूर करनेवाली तथा पेशाब में पथरी की वजह से होनेवाली जलन और वेदना को दूर करनेवाली होती है।

इक्सबूलर के मतानुसार बलूचिस्तान में इसके सारे पौधे को सुखाकर उसका काढा बनाकर टायफस ज्वर (तान्द्रिक सन्निपात) को मिटाने के लिये पिलाते हैं। इसके पत्तों को रात में पानी के अन्दर भिगोकर सवेरे उनको मल छानकर बढी हुई गर्मी को शान्त करने के लिये पिलाते है। इसके रस को ज्वर के पश्चात् होनेवाली कमजोरी को दूर करने के लिये पौष्टिक वस्तु की तरह पिलाया जाता है। इसके बीजों का चूर्ण कर मट्ठे के साथ अतिसार को दूर करने के लिये पिलाते हैं।

मोखा

नामः—

संस्कृत—मुस्ककः, मोक्षकः, जटाल, गोलीढ, बनवासी, क्षारवृक्ष, इत्यादि। हिन्दी—मोखा, बन-पलाश, घाट, गोकी। बगाल—घाटपेरुल। बम्बई—मोकाघंटा। बुन्देलखड—घाट पटाली। गुजराती—मोखो, नरुतीनुझाड। मराठी—मोका, मोकडी, नखती। तामील—मोगालिंगा। तेलगू—मगलिंगा। लेटिन—Schrebera Swietenioides (स्क्रेबेरा स्वेटेनिआइडस्)।

वर्णन—यह एक बडी जाति का जंगली वृक्ष होता है। इसकी ऊँचाई ३० से ४० फुट तक होती है। इसके पिंड की गोलाई ४ से ५ फीट तक होती है। इसकी छाल खाकी रंग की होती है। इसके पत्ते चैत, वैसाख के अन्दर आते हे। इसके फूल सुगन्धित होते हैं और ये माघ से चैत महीने तक आते हैं। इसकी डोडी २ इंच तक लम्बी और ऊपर से खरदरी होती है। इस डोडी पर कुछ सफेद दाग होते हैं। इसकी लकडी से खेराती लोग बच्चों के लिये खिलौने तैयार करते हैं। इसके सफेद रग का गोंद भी लगता है। काले और सफेद के भेद से यह वृक्ष दो प्रकार का होता है। इसके पत्ते बडे-बडे होते हैं और उनमें आक के समान दूध निकलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघंटु रत्नाकर के मत से मोखा वृक्ष चरपरा, खट्टा, रुचिकारक, पाचक, मल-रोधक, गरम, नमकीन, कडवा तथा प्लीहा, गुल्म, उदर रोग, विषविकार, कफ, वात, मेदरोग, वस्ति-शूल, शुक्रदोष, कर्णरोग, पित्त खुजली और कृमि को दूर करता है। इसका फूल कुष्ठ, वात, पित्त और कफ को दूर करता है। इसका फल अग्निदीपक, दस्तावर, रोचक तथा गुल्म, प्रमेह, बवासीर, पाडुरोग, शुक्रदोष और उदर रोग को दूर करता है। इसकी जड श्वेत कुष्ठ में बहुत लाभ पहुँचाती है।

राजनिघट्ठ के मतानुसार दोनों प्रकार के मोखा वृक्ष चरपरे, खट्टे, रोचक, पाचक तथा प्लीहा, गुल्म और उदर रोग को दूर करते हैं।

मोखा चरपरा, खट्टा, रोचक, पाचक, ग्राही, उष्ण, नमकीन, और कडवा होता है। प्लीहा, गुल्म, उदर रोग, विष, कफ, वात, मेद, वस्तिशूल, शुक्रदोष, कर्णरोग, पित्त, खुजली और कृमि को मिटाता है। इसके फल अग्नि को बढानेवाले, भेदक और रोचक होते हैं। इसके फूल त्रिदोष और कुष्ठ को मिटाते हैं। इसका गोंद अत्यन्त वीर्यवर्द्धक होता है। यह शोष, पित्त और बादी को मिटाता है।

मोखा (२)

नामः—

हिन्दी–मोखा। गुजराती—छोछिडाँ। मध्यप्रान्त—मोख। सिंध–कारेलो जागरो। अरबी–मोकाह। अंग्रेजी—Balsamina बालसेमिना। लेटिन—Momordica Balsamina (मोमोर्डिका बालसेमिना)।

वर्णन—यह एक लता होती है। जो बरसात के दिनों में पैदा होती है। इसके फल करेले के समान दोनों तरफ नोकदार होते हैं और इन फलों के ऊपर तरोइ के समान खडी धारिया रहती हैं। इस वनस्पति की बेलें पुराने खडहरों में बहुत पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसका फल मृदुविरेचक होता है और इस का शाग बनाकर खाया जाता है। इसके फल को काट कर मीठे तेल में डाल दिया जाता है और उसी हालत में उसको कुछ दिनों तक सूरज की धूप में रक्खा जाता है। जब उस तेल का रङ्ग लाल हो जाता है। तब उसको बोतल में भर लिया जाता है। यह तेल ताजे घावों के लिये बहुत मुफीद माना जाता है। इसकी कुछ बूँदें रूई के फाये पर टपकाकर उस फाये को ताजे जखम पर बाँध दिया जाता है। जिससे घाव कुछ दिनों में अच्छा हो जाता है।

मोथा

:—

संस्कृत—भद्र मुस्त, मुस्तक, गांगेयम्, कुरुविल्व, सुगधि ग्रन्थिला, इत्यादि। हिन्दी—मोथा, भद्र-मोथा। मराठी—मोथा, बिम्बल। बङ्गाल—मोथा, मूथा। बम्बई—बडी कमोठ, मुस्ता। गुजराती—मोथ, मोथा। तामील—कोरा, कोरइ। तेलगू— भद्रमुस्त, तुङ्गमुस्ते। लेटिन— Cyperus Rotundus (सायपेरस रोटुंडस)।

वर्णन—यह नागरमोथे के वर्ग की एक क्षुद्र जाति की वनस्पति होती है। नागरमोथा जहाँ सूखी जमीनों में पैदा होता है वहाँ यह मोथा सजल जमीन में या जलके किनारे पैदा होता है। इसकी डंडी तिकोनी होती है और वह १ से २ फुट तक ऊँची होती है। डंडी के सिरे पर फूलों का गुच्छा आता है। इसकी जड़ें गोल, काली, कठोर और सुगन्धित होती हैं। यही जड़ें औषधि प्रयोग करके काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मोथा चरपरा, शीतल, ग्राही, कड़वा, दीपन, पाचक, कृमिनाशक और रक्त पित्त, तृषा, ज्वर, रक्तरोग, पित्तविकार, रक्तातिसार, वमन, गुदाद्वार की वेदना, मृगी और विसर्प रोग में लाभदायक होता है।

इस वनस्पति में मूत्रल, स्वेदल, सकोचक, वृणरोपक, रुचिवर्द्धक और गर्भाशय को उत्तेजित करने के धर्म विद्यमान रहते हैं। ज्वर में इसको देने से यह तीन प्रकार के असर पैदा करती है। पसीना लाती है, मूत्र अधिक पैदा करती है और शरीर को उत्तेजना देती है। पित्त ज्वर और अतिसार युक्त ज्वर में यह विशेष उपयोगी होती है। अजीर्ण, वमन, दस्त इत्यादि आमाशय और आँतों से सम्बन्धित रोगों में अपने सकोचक और रुचिवर्द्धक गुणों की वजह से यह औषधि विशेष उपयोग में ली जाती है। दाद, खुजली और बवासीर के ऊपर इसका लेप लाभदायक होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह वनस्पति मूत्रल, ऋतुश्राव नियामक, पसीना लानेवाली, कृमिनाशक और घाव को भरनेवाली होती है। फोड़े फुन्सी, जखम, ज्वर, अजीर्ण और पेशाब सम्बन्धी शिकायतों में भी यह उपयोगी होती है।

इसकी जड़ एक संकोचक और पसीना लानेवाले द्रव्य की तरह आम तौर से उपयोग में ली जाती है। अपने मूत्रल और उत्तेजक तत्वों की वजह से भी यह वनस्पति प्रसिद्ध है। पेट की अव्यवस्था और आँतों के प्रदाह में भी यह बहुत लाभ पहुँचाती है। इसकी जड़ का कन्द अदरक के साथ कुचलकर शहद में मिलाकर दस रत्ती की मात्रा में अतिसार के रोगियों को दिया जाता है। एक कृमिनाशक द्रव्य की तरह भी इसका उपयोग होता है। इसकी गठानदार जड़ को पीसकर दूध बढ़ाने के लिये स्तनों पर लेप करते हैं।

चीनी लोगों के मतानुसार इसकी छोटी गठान फेफड़े और यकृत के ऊपर विशेष रूप से क्रिया करती है। यह पौष्टिक, उत्तेजक और अग्निवर्द्धक होती है।

इस वनस्पति की गठानों में एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है।

उपयोगः—

आमातिसार—अदरक और मोथे को पीसकर शहद के साथ दस रत्ती की मात्रा में चाटने से आमातिसार मिटता है।

दुग्धवृद्धि—ताजे मोथे को पीसकर स्त्री के स्तनों पर लेप करने से दूध बढ़ता है।

मूत्रवृद्धि—दूध की लस्सी के साथ मोथे के चूर्ण की फक्की देने से मूत्रवृद्धि होती है।

मासिक धर्म की शुद्धि—मोथा और गुड मिलाकर गोली बनाकर तिल के क्वाथ के साथ देने से स्त्रियों का मासिक धर्म शुद्ध होने लगता है।

बिच्छू का विष—बिच्छू के विष पर इसका ठंडा या गरम लेप करने से फायदा होता है।

विसर्पिका—फैलनेवाले फोडों पर इसका चूर्ण भुरभुराने से लाभ होता है।

पेट के कृमि—इसके चूर्ण को कुछ अधिक मात्रा में लेने से पेट के कृमि मर जाते हैं।

ज्वर—मोथा और गिलोय का क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वर छूटता है। मोथा और पित्त पापडे का क्वाथ या फाँट बनाकर पिलाने से शीत ज्वर छूटता है और पाचन शक्ति बढती है।

बनावटें—

मुस्तकादि क्वाथ—मोथा, नीम की अन्तर छाल और पटोल इन तीनों औषधियों को समान भाग लेकर जौकुट कर लेना चाहिये। इसमें से एक तोला चूर्ण लेकर उसको पाव भर पानी में औटाना चाहिये। जब छटाँक भर पानी शेष रह जाय तब छानकर कुछ शहद मिलाकर पिलाना चाहिये। इस क्वाथ को कुछ दिनों तक पिलाने से खाज, खुजली, रतवा इत्यादि सब प्रकार के रक्त रोग मिटते हैं।

घनादिचूर्ण—मोथा, पीपर, अतीस और काकडासिंगी का समान भाग चूर्ण घनादि चूर्ण कहलाता है। इस चूर्ण को चार रत्ती की मात्रा में देने से बालकों के ज्वर, अतिसार, खाँसी, श्वास, वमन तथा दूसरे अनेक रोगों में लाभ होता है।

मोगरा

नामः—

संस्कृत—मुद्गर, मल्लिका, प्रमोदिनी, वनचन्द्रिका, राजपुत्री, अनग, गधराज इत्यादि। हिन्दी—मोगरा, मोतिया, वनमल्लिका। गुजराती—मोगरो। बगाल—मोगरा, वनमल्लिका। मराठी—मोगरा। काठियावाड—डोलेरा। पजाब—मुगरा, चबा। तामील—अनगम्। तेलगू—मल्ले। उर्दू—आजाद, रायबेल, सोसन। फारसी—गुलसफेद, झम्बक। अरबी—सोसन। इग्लिश—Arabian Jasmine। (अरेबियन जेस्मिन) लेटिन—Jasminum Sambac (जेसमिनम सबाक)।

वर्णन—मोगरे के पुष्प अपनी खुशबू की वजह से सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। जैसे—बेलिया मोगरा जिसकी बेल चलती है। बट मोगरा जिसका फूल गोल होता है। सादा मोगरा जिसका झाडीनुमा क्षुप होता है। इसके पत्ते गोल और चमकीले हरे होते हैं। इसके फूल अत्यंत सुगंधित और सफेद होते हैं। इसकी खुशबू अत्यन्त मनमोहक होती हैं। ये पुष्प भारतवर्ष के प्रायः सभी बगीचों में लगाये जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिकमत—आयुर्वेदिक मत से इसका फल कडवा, तीक्ष्ण, शीतल, त्रिदोष नाशक, कान, आँख और मुँह के रोगों को दूर करनेवाला, चर्मरोगों में लाभदायक तथा कुष्ठ और व्रण को नष्ट करनेवाला होता है। इसके विशेष गुण चमेली के ही समान होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके फूल कडवे और खराब स्वादवाले होते हैं। ये मस्तिष्क को शक्ति देनेवाले, विरेचक, ज्वर को दूर करनेवाले और वमन तथा हिचकी को बद करनेवाले होते हैं।

इसका पौधा शीतल और मधुर होता है। पागलपन की बीमारी में इसका उपयोग किया जाता है। दृष्टि की कमजोरी और मुखरोगों में भी यह काम में आता है।

गोआ में इसकी जगली जाति की जड ऋतुश्राव नियामक औषधि की तरह काम में ली जाती है।

इसके सूखे पत्तों को पानी में भिगोकर उनका पुल्टिस तयार करके हठीले फोडों पर बाँधा जाता है।

स्त्रियों की जननेंद्रियों पर विशेषकर गर्भाशय और स्तनों पर मोगरे की क्रिया होती है। प्रसूति काल में अगर स्तनों में दूध की गाँठें जमकर पीब पैदा होने लग जाय तो ऐसे समय में मोगरे के फूलों का प्रयोग करने से तुरत लाभ होता है। एक तोला मोगरे के फूलों को लेकर कुचलकर स्तनों पर बाँधते हैं और ७।८ घटों के पश्चात् पुराने फूलों को निकाल कर उनकी जगह पर नये फूल बाँध देते हैं। इस प्रयोग से स्तनों में जमी हुई दूध की गठानें बिखर जाती हैं। स्तनों की सूजन उतर जाती है और पीब पैदा होने की क्रिया रुक जाती है। प्रसूति के समय में प्रसूतिश्राव अनियमित और थोडा पड़ता हो तो तीन माशे मोगरे की जड़ का काढा बनाकर देने से प्रसूतिश्राव साफ होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता है।

रक्तमिश्रित अतिसार में मोगरे के दो-चार कोमल और ताजे पत्तों को लेकर दो तीन तोले ठण्डे पानी में उनको घोटकर कपडे में छानकर उसमें थोडी सी मिश्री मिलाकर दिन में तीन बार देने से मल के अन्दर रक्त जाना बन्द होता है और दस्तों की संख्या भी कम हो जाती है।

मोरंग इलायची

नामः—

हिन्दी—मोरग इलायची। बंगाल—मोरंग इलायची। लेटिन—Amomum Aromaticum (एमोमम एरोमेटिकम्)।

बर्णन—यह इलायची के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसके वृक्ष नेपाल, पूर्वी हिमालय, सिल्हट और उत्तरी बगाल में पैदा होते हैं। इसके फलों को मोरग इलायची कहते हैं। इसके बीजों का स्वाद बडी इलायची के बीजों से मिलता हुआ रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके बीज सकोचक और बलकारक होते हैं। इनके चूर्ण का मजन करने से दाँत दृढ और चम-

मोडिका

नामः—

तेलगू—मोडिक्का । कोकण—उंडल । लेटिन—Adenia Palmata (एडिनीया पामेटा) । Modecca Palmata ।

वर्णन—यह एक बड़ी जाति की वर्षजीवी वनस्पति होती है जो विशेष करके नार्थकनारा में पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

मलाबार में इस वनस्पति का रस छाती के रोगों को दूर करने के लिये काम में लिया जाता है ।

सीलोन में इसकी जड और इसके पत्तों का रस चर्मरोगों पर लगाने के काम में लिया जाता है । इसका फल जहरीला और प्राणघातक समझा जाता है । इसकी जड पौष्टिक और ताकत देनेवाले नुस्खों में मिलाई जाती है ।

मोदिरकान्नी

नामः—

तामील—मोदिरकान्नी, अगोरी, कोदी विराई । कनाडी—मोदिरकान्नी । तेलगू—गटूरिता, पिसागी । इंग्लिश—Climbing Flax (क्लाइम्बिग फ्लेक्स) । लेटिन—Hugonia mystax (ह्यूगोनिया मिसटैक्स) ।

गुण दोष और प्रभाव—

वर्णन—यह एक फैलनेवाली और घने पत्तोंवाली रुएँदार झाडी होती है । इसके फूल पीले रंग के होते हैं । औषधि प्रयोग में इसकी जड काम में आती है । यह वनस्पति कोकण, ट्रावनकोर और लंका में बहुत पैदा होती है । इसकी जड को कुचलकर लेप की तरह सूजन पर लगाने से सूजन बिखर जाती है । इसकी जड का चूर्ण कृमिनाशक और ज्वर को दूर करनेवाला समझा जाता है । इसकी जड की छाल सर्पविष और दूसरे विषों के दर्प को नाश करनेवाली मानी जाती है ।

केस और महस्कर के मतानुसार यह वनस्पति सर्पविष में निरुपयोगी है ।

मोटा तरवड़

नामः—

मराठी—मोटा तरवड । तामील—कोवालाइ । लेटिन Cassia Glauca (केसिया ग्लोका) ।

मोचरस

मोचरस सेमर के गोंद को कहते हैं। इसका वर्णन सेमर के प्रकरण में आगे देखना चाहिये।

मोटीलटकेसर

नामः—

गुजराती—मोटी लटकेसर। कच्छी—बड़ी लटकेसर। अंग्रेजी—Spiny Gmelina। लेटिन—Gmelina Hystrix (मेलिना हिस्ट्रिक्स)।

वर्णन—यह एक मध्यम कद का काटेदार झाड होता है। इसमें पीले रङ्ग के बहुत सुदर फूल लड़ी के आकार में निकलते हैं। यह वृक्ष कच्छ के राजकीय बगीचों में विशेष तौर से लगाये जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल प्रमेह, सधिवात, और मूत्राशय की व्याधियों में लाभ पहुँचाती है।

मोरढूंडियो

नामः—

संस्कृत—बहुवरका, दीर्घमूला, महाकपित्थ, वेल्तरु, इत्यादि। गुजराती—मोरढूढियो, मरुड। हिन्दी—खेरी, वरतुली। बम्बई—वरतुली। मराठी—सेगुनकाटी। राजपुताना—खेन। लेटिन—Dichrostachys Cinerea (डिक्रोस्टेचीज सिनेरिया)।

वर्णन—इस वनस्पति के वृक्ष ४ से लेकर १० हाथ तक ऊँचे होते हैं। इसकी शाखाएँ बहुत निकलती हैं और छोटी शाखाओं के सिरे पर तेज काटे के समान अणी रहती है। इसके फूल की कलंगी पीछे की तरफ गुलाबी ओर बैंगनी और आगे तरफ से पीले रङ्ग की होती है। इसकी फलियाँ लम्बी, पतली और बाकी टेढी होती है। यह वनस्पति उत्तर पश्चिमी भारत, मध्यभारत, राजपूताना और दक्षिण में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसकी जड़ गरम, कडवी, भूख बढानेवाली, आँतों के लिये सकोचक और सधिवात, पथरी, मूत्रकृच्छ् और गुर्दे की व्याधियों में लाभ पहुँचाती है। योनिपथ और मूत्राशय की बीमारियाँ, मूत्र की रुकावट और जोड़ों के दर्द में यह वनस्पति मुफीद होती है।

इसके ताजे पत्तों को कुचलकर आँखों पर बाँधने से आँख का दुखना अच्छा होता है। फोडे-फुन्सियों

पर इसके पत्तों का लेप करने से लाभ होता है। इसके पत्तों को दाने के साथ घोड़े को खिलाने से उसके पेट के कीड़े निकल जाते हैं।

मोती

नाम—

संस्कृत—मौक्तिक, मुक्ता, शशिप्रभ, इन्दुरत्न, शुक्तिज, इत्यादि। हिन्दी—मोती। बंगाल—मुक्ता। मराठी—मोती। गुजराती—मोती। तेलगू—मात्यालु। फारसी—मरवारिद। अरबी—लोलो। अंग्रेजी—Pearl (पर्ल)। लेटिन—Pinctada Margaritifera (पिनेक्टेडा मारगेरिटीफेरा)।

वर्णन—मोती नवरत्नों में से एक रत्न है। आयुर्वेद के अन्दर यह आठ प्रकार का माना गया है। सीप का मोती, गजमुक्ता अर्थात् हाथी का मोती, वराह मौक्तिक अर्थात् सुअर के अन्दर से निकलनेवाला मोती, वेणुमौक्तिक अर्थात् बांस के अन्दर से निकलने वाला मोती, मत्स्य मौक्तिक अर्थात् मछली के पेट से निकलनेवाला मोती, दर्दुरमौक्तिक अर्थात् मेंढक के पेट से निकलनेवाला मोती, शंख के अन्दर से निकलने वाला मोती सर्प मौक्तिक अर्थात् साँप के फण में से निकलने वाला मोती, ये आठ प्रकार के माने गये हैं।

सीप के मोती—समुद्र के अन्दर रूपे के समान या सोने के समान दीप्तिमान अत्यन्त उत्तम गुण-युक्त बड़े बड़े सीप रहते हैं। वे सीप स्वाति नक्षत्र के जल की बूंद को ग्रहण करते हैं। वह जल की बूंद उनके पेट में जाकर मोती का रूप धारण करती है। ये मोती कुंकुम के समान प्रभायुक्त, जायफल के समान आकार वाले, स्थूल, स्निग्ध, अत्यन्त निर्मल और सदैव प्रकाशित रहते हैं।

पारसदेश के समुद्र में (Persian Gulf) उत्पन्न होनेवाले मोती श्वेत, स्निग्ध और अत्यन्त प्रकाशमान होते हैं। अरब के समुद्र में उत्पन्न होनेवाले मोती रूखे और कुछ पीले रंग के होते हैं और अन्य समुद्रों में उत्पन्न होनेवाले मोती लाल, स्निग्ध, दीपजनक, चार वर्णयुक्त, सुलक्षण तथा लक्ष्मी-दायक होते हैं।

गजमुक्ता—काम्बोज देश के बलवान हाथियों के गण्डस्थल के निकट किंचित् लाल और पीले रंग का मोती उत्पन्न होता है। यह अधम रत्न होता है।

वराह मोती—आदि वराह अवतार के वंश के जो सूअर अकेले मस्त होकर वन में विहार करता है। उस सूअर के मस्तक में मोती होता है। वह मोती कंकोल के समान आकृतिवाला और चन्द्रमा के समान धवल होता है। यह मोती प्रारब्ध के बलसे प्राप्त होता है। इस मोती के मिलने से दरिद्री धनाधीश हो जाते हैं।

वेणु मौक्तिक—कुलाचल पर्वत पर उत्तम जातिवाले बांस होते हैं उन बांसों में बेर के समान मोती उत्पन्न होता है। उस मोती को वेणुमौक्तिक कहते हैं।

मत्स्य मौक्तिक—समुद्र के अंदर किसी किसी विशेष जाति की मछली के पेट के अन्दर मत्स्य-

मौक्तिक पैदा होता है। यह मोती गज मोती के समान आकृतिवाला और पाढल के फूल के समान रंग-वाला होता है। यह मोती पृथ्वी पर पापीजनों को दृष्टि नहीं पडता है।

दर्दुर मौक्तिक—वर्षा ऋतु में जो मेंडक मेघोदर से उत्पन्न होते है और पृथ्वी के ऊपर नहीं गिरते हैं उन मेंडकों के उदर में मोती उत्पन्न होता है। वह मोती पृथ्वी पर नहीं आता उसे देवता ग्रहण करते हैं। यह मोती सूर्य और बिजली के तेज से भी अधिक प्रभावशाली होता है।

शंख मौक्तिक—पाचजन्य वश के जो शंख समुद्र में हैं उन शखों में सफेद तथा नक्षत्र के समान कातिवाले और कबूतर के अण्डे के समान गोल मोती उत्पन्न होते हैं। ये मोती झलकदार, स्निग्ध, हलके और लक्ष्मी को देनेवाले होते है।

सर्पज मौक्तिक—शेषनाग के वंश में उत्पन्न हुए सर्पों के फण में सर्पजमौक्तिक उत्पन्न होता है। वह मोती गोल, निर्मल, उज्ज्वल, चद्रमा के समान छविवाला और ककोल के समान आकृतिवाला होता है। यह अत्यन्त भाग्यशाली मनुष्यों को ही प्राप्त होता है। नीच कुल का मनुष्य भी अगर इस मोती को धारण करता है तो वह राजा के समान हो जाता है। इन मोतियों को घर में रखने से भूत-प्रेत और राक्षसों की बाधा निश्चित रूप से दूर हो जाती है और महाशान्ति होती है।

यद्यपि आयुर्वेद में ऊपर बतलाये हुए आठ प्रकार के मोतियों का वर्णन पाया जाता है मगर आज-कल सीप के मोतियों को छोडकर प्रायः सभी मोती मनुष्य जाति को अप्राप्य है।

मोती की परीक्षा—जो मोती तारों के समान चमकदार ,मोटा, चिकना, गोल, चद्रमा जैसा सफेद और तौल में भारी होता है वही खाने और पहिनने के काम में उत्तम होता है।

और जो मोती रग में फीका, कातिरहित, टेढा-मेढा खड्डेवाला, रूखा, ऊँचा-नीचा और मछली की आँख जैसी ललाई लिये हुए होता है वह न खाने के काम का होता है और न पहिनने का।

अनुभवी पुरुष तो मोती की सूरत, शकल, उसकी सफेदी, गुलाई, मुटाई, भारीपन और चिकनाई को देखकर ही समझ लेते हैं कि यह मोती अच्छा है। तथा उसके टेढे-मेढ़ेपन, रुखाई और फीकेपन को देखकर उसकी अधमता को समझ लेते है। फिर भी साधारण लोगों को मोती की परीक्षा करने में कठि-नाई का सामना करना पडता है। इसलिये आयुर्वेद में मोती की एक ऐसी परीक्षा बतलाई गई है कि जिससे मोती की परख न जाननेवाला आदमी भी उसकी भलाई-बुराई को समझ सकता है। वह परीक्षा इस प्रकार है:—

एक हाँडी में एक सेर गौमूत्र और छटाँक भर साम्हर नमक पीसकर डाल देना चाहिये फिर उस हाँड़ी पर दौला यन्त्र की तरह एक लकडी रखकर मोती की पोटली को उस लकडी से इस प्रकार बाँध देना चाहिये कि वह पोटली गौमूत्र में डूबी रहे। लेकिन हाँडी के पेंदे से ऊँची बँधी रहे। फिर उस हाँडी को चूल्हे पर चढाकर ६ घटे की आँच दें और उसके बाद पोटली में से उन मोतियों को निकालकर चाँवलों की भूसी में रखकर मलें अगर मोती असली होगा तो उसका रग रूप जरा भी न बदलेगा। यदि

खराब होगा तो रग रूप बदल जायगा। जिन मोतियों का रग रूप न बदले उन ही को भस्म करने के काम में लेना चाहिये।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मोती मधुर, शीतल, दृष्टिरोग को दूर करनेवाला, विषनाशक राजयक्ष्मा को हटनेवाला, तथा क्षीण वीर्यवाले को बल और शक्ति देनेवाला होता है। यह कफ, पित्त, क्षय, खाँसी, श्वास, मदाग्नि और दाह को दूर करता है तथा पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक और आयुवर्द्धक होता है। मोतियों का हार धारण करने से दाह और पित्त दूर होते हैं, काति बढती है और नेत्रों की ज्योति प्रदीप्त होती है।

मोती कसेला, स्वादिष्ट, बलवर्द्धक कामोद्दीपक, वीर्यवर्द्धक, नेत्रों को हितकारी तथा राजयक्ष्मा और विष को नष्ट करनेवाला होता है। इसके धारण करने से स्त्रियों की काति और रति बढती है तथा ग्रह और पाप का नाश होता है।

मोती को शुद्ध करने की विधि—मोतियों को मिट्टी के एक पक्के और गहरे सकोरे में रखकर उस सकोरे को आग पर तपाओ। जब खूब तप जायँ तब घीगुवार के रस में बुझाओ। इस प्रकार सात बार तपा तपाकर बुझाने से मोती शुद्ध हो जाते हैं। अगर विशेष शुद्धि करना हो तो उनको सात बार तपा-तपाकर चौलाई के रस में भी बुझा लेना चाहिये।

यह खयाल रखना चाहिये कि अनबींद मोती आग पर तपाने से बरतन में से उछल-उछल कर भागते हैं। जरा भी असावधानी रखने से ये आग में या जमीन पर गिर पड़ते हैं। अतः इनको गरम करने के लिये गहरा बरतन ही लेना उचित होता है।

दूसरी विधि—एक मिट्टी के घडे में आधे हिस्से तक इद्रायण का रस भरकर दौला यत्र की विधि से उसमें मोती की पोटली बनाकर लटका दो और उसके नीचे तीन घटे तक आग जलाओ। इस क्रिया से भी मोती शुद्ध हो जाते हैं।

मोती भस्म की विधि—शुद्ध किये हुए मोती एक तोला, शुद्ध पारद डेढ़ माशा और शुद्ध गधक डेढ माशा। पहिले गधक और पारे की कजली बनाकर फिर उसमें मोतियों को डालकर घीगुवार के रस में १२ घटे तक घोटें। फिर उसकी टिकियाँ बनाकर सरावसम्पुट में रखकर गजपुट में फूँक दें। आग ठण्डी होने पर उसमें से सफेद रग की मोती भस्म को निकाल कर शीशी में भर लें।

मोती भस्म की दूसरी विधि—एक तोला शुद्ध किये हुए अनबींध मोती लेकर उनको घीगुवार के चार तोला गूदा के बीच में रख दें। फिर उस लुग्दी को सरावसम्पुट में रखकर कपड मिट्टी करके सुखा लें। फिर ४ सेर कडों की आँच में उसे फूँक दें। सुन्दर भस्म तयार हो जायगी।

तीसरी विधि—शुद्ध मोती को लेकर उनको पाताल नीम की पीसी हुई लुग्दी के बीच में रखकर उस लुग्दी को सरावसम्पुट में बद करके गजपुट में फूँक देना चाहिये। इससे एक ही आँच में भस्म हो

जाती है मगर उसको विशेष प्रभावशाली बनाना हो तो एक बार नीबू के रस के साथ घोंटकर और दूसरी बार घीगुवार के रस के साथ घोटकर गजपुट में फूँक देना चाहिये।

मोती की इस भस्म में उत्तम जाति का केल्शियम रहता है अतः मनुष्य के शरीर में केल्शियम की कमी से होनेवाले जितने रोग हैं उन सब में मोती की भस्म को पीरज के साथ देते रहने से बहुत लाभ होता है।

मोती की भस्म मधुर और ठण्डी होती है। यह राजयक्ष्मा, उरक्षत, नेत्ररोग, वीर्य की कमजोरी और दुर्बलता इत्यादि रोगों को नाश करती है। खाँसी, श्वास, कफ क्षय और मंदाग्नि को दूर करके यह मनुष्य को हृष्ट-पुष्ट और बलवान बनाती है। मोती भस्म से नेत्र रोग, खाँसी, प्रमेह, सुजाक, ज्वर और मूत्रकृच्छ्र इन सब रोगों में लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार मोती की भस्म उत्तेजक, पौष्टिक, कामोत्तेजक, मृदुविरेचक और उपशामक होती है।

मौक्तिक पिष्टि—अनविंद उत्तम जाति के मोतियों को उत्तम पत्थर की खरल के अन्दर गुलाबजल में २४ घण्टे तक घोटने से मौक्तिक पिष्टि तयार हो जाती है। यह मौक्तिक पिष्टि हृदय को बल देनेवाली, पौष्टिक, कामोद्दीपक और तबीयत में प्रसन्नता पैदा करनेवाली होती है। अनुपान भेद से यह भी अनेक रोगों में काम करती है।

मात्रा—मौक्तिक भस्म की मात्रा आधी रत्ती से २ रत्ती तक की होती है।

उपयोग—

हृदय की धड़कन—मोती की पिष्टी को सोने के वर्क के साथ शहद में मिलाकर चटाने से हृदय की धड़कन मिट जाती है।

कम्पवायु—मोती की पिष्टी को माजून कुचला में मिला कर देने से कंपवायु मिटती है।

कुष्ठ—मोती जब सीप के गर्भ में रहता है तब उसको पीसकर लेप करने से कुष्ठ में लाभ होता है।

नेत्रों की ज्योति—मोतियों को गुलाबजल में खूब महीन पीसकर आंखों में अंजन करने से आँखों की ज्योति बढ़ती है।

कामोद्दीपन—एक रत्ती मोती भस्म को शीतोपलादि-चूर्ण और चांदी के वर्क के साथ लम्बे समय तक सेवन करने से मनुष्य की काम शक्ति जाग्रत होती है।

पित्तविकार—गिलोय के सत्व के साथ मोती की भस्म को चटाने से पित्तविकार मिटते हैं।

अधिक वीर्यपात के कारण हुआ ज्वर—अधिक वीर्यपात के कारण जो ज्वर हुआ हो और उसमें बहुत खुश्की हो, बार बार गश आता हो, बहुत कमजोरी हो और मनुष्य का अन्तकाल दिखाई देता हो तो ऐसी स्थिति में एक रत्ती मोतीभस्म, एक चांदी का वर्क, एक रत्ती सतगिलोय, एक रत्ती बंशलोचन, १ छोटी

इलायची और एक रत्ती वगभस्म इन सब को पीस कर शहद में या शरबत अनार में मिलाकर फौरन चटाने से १५ मिनट में आराम हो जाता है। अगर दवा देने में देर होगी तो रोगी मर जायगा।

(चिकित्सा चन्द्रोदय)

बनावटें—

मुक्तादि वटी—६ माशे उत्तम अबीध मोती लेकर उनको १२ घण्टे तक गुलाबजल के साथ घोटना चाहिये। फिर शुद्ध किये हुए कुचले के एक दाने को बारीक कतरकर उसी खरल में डाल देना चाहिये। फिर १ माशे सोने के वर्क और ३ माशे चादी के वर्क डालकर इन सब चीजों को एक साथ घोट लेना चाहिये।

फिर केशर १ तोला, जावित्री ६ माशे, जायफल १ तोला, अकलकरा २ तोला, छोटी इलायची के बीज १ तोला, भीमसेनी कपूर ३ माशे और ककोल १ तोला। इन सब औषधियों को पीस कर कपड़े में छान कर उसी खरल में डाल देना चाहिये और एक तोला शहद भी इसमें मिला देना चाहिये। फिर सब औषधियों में गुलाब का बढ़िया अर्क डालकर ३ दिन तक घोटना चाहिये। ज्यों ज्यों गुलाबजल सूखता जाय त्यों त्यों नया गुलाबजल डालते रहना चाहिये। फिर रत्ती २ भर की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लेना चाहिये।

इन गोलियों की मात्रा आधी गोली से लेकर २ गोली तक है। सबेरे शाम १ या २ गोली खाकर ऊपर से मिश्री मिला हुआ दूध पीने से मनुष्य की काम शक्ति, इच्छा-शक्ति और स्मरणशक्ति बहुत बढ़ती है। नामर्द भी मर्द हो जाता है। इसके सेवन से मनुष्य का वीर्य कितना ही कम क्यों न हो गया हो फिर से ताजा हो जाता है और खानेवाला खूब पुरुषार्थी हो जाता है। उसकी स्तम्भनशक्ति बढ़ जाती है। खासी, श्वास, लकवा इत्यादि रोगों में भी ये गोलियाँ लाभ पहुँचाती हैं। मगर नपुंसक के लिये तो ये अमृत हैं। लेकिन इनका सेवन जाड़े की ऋतु में ३।४ महीने तक करना चाहिये।

खमीरा मोती—सफेद बंशलोचन, अनबिधे मोती, सफेद चन्दन, अबरेशम कतरा हुआ और बहमन सफेद, इनमें से हर एक चीज २ तोला, अम्बर ५। माशे, सोने के वर्क ५। माशे, चादी के वर्क ५। माशे, कस्तूरी २। माशे, शक्कर सफेद १५ तोला, अर्क गुलाब १५ तोला, अर्क बेदमुश्क १५ तोला और शहद १० तोला, इन सब चीजों को मिलाकर खमीरा बना लें।

इस खमीरे को एक माशे से डेढ़ माशे तक की मात्रा में सेवन करने से हृदय और मस्तिष्क को बल देता है। उन्माद, भ्रम, पागलपन, कमजोरी इत्यादि अनेक रोगों को दूर करता है। कामोद्दीपक है।

खमीरा मरवारीद—खीरा ककड़ी के बीजों की मगज १॥ तोला, अनबिधे मोती ८॥ माशा, कद्दू के बीज की मगज १०॥ माशे, सफेद चन्दन गुलाबजल में घिसा हुआ ७ माशे, खुरफे के बीज ७ माशे, बनफशा के फूल ७ माशे, गावजवां के फूल ७ माशे, बंशलोचन ७ माशे, केशर ३॥ माशे, कस्तूरी ७॥ माशे, अम्बर ७॥ माशे इन सब दवाओं को कूट पीसकर छान लें, फिर शर्बत मीठा अनार ६ तोला,

शरबत जरिश्क ६ तोला, अर्क वेदमुश्क २ तोला और अर्क गुलाब ३ तोला इन सब चीजों में मिला-कर रख लें।

यह खमीरा मरवारीद १ माशे से डेढ माशे तक मात्रा में लेने से दिल, दिमाग तथा आमाशय को बहुत शक्ति देता है। उन्मत्तता और पागलपन को दूर करता है, कामोद्दीपक है।

मोती की सीप

नामः—

सस्कृत—मुक्ताप्रसू, मुक्तास्फोट, मौक्तिकशुक्ति, मौक्तिकप्रसवा इत्यादि। हिंदी—मोती की सीप। वगाल—झिनुक। गुजराती—मोतीनी छीप। मराठी—मोत्याची शिंप। पजाब—सीप। इग्लिश—Oyster shell (ओस्टर शेल)।

वर्णन—समुद्र के अदर दो प्रकार के सीप प्राणी होते हैं। एक वह सीप जो मोती को पैदा करती है और दूसरी वह जिसमें मोती पैदा नहीं होते। पहिली प्रकार की सीप को मोती की सीप और दूसरी सीप को जल सीप कहते हैं। मोती की सीप बहुत बडी दलदार और मोती के ही समान कातिवाली होती है। इसी सीप की भस्म विशेष गुणकारी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से मोती की सीप, मधुर, स्निग्ध, रुचिकारक, दीपन, चरपरी तथा खासी, शूल, हृदयरोग, स्नायुरोग, ज्वर और व्रण में लाभ पहुँचानेवाली होती है।

मोती की सीप चरपरी, स्निग्ध, दमा और हृदय रोग को दूर करनेवाली, उदर शूलनाशक, रुचि को उत्पन्न करनेवाली, मधुर और दीपन होती है।

सीप को शुद्ध करने की विधि—सीप के छोटे छोटे टुकडे करके फिर उसको एक पोटली में बाँधकर एक मिट्टी की हाडी में खटाई और काजी भरकर दौलायन्त्र की विधि से उस पोटली को लटका कर चा पहर तक हलकी आँच देना चाहिये। फिर उसमें से निकालकर गरम पानी से धोकर सुखा लेना चाहिये

सीप की भस्म करने की विधि—शुद्ध सीप को अग्नि में लाल कर करके नींबू के रस में बा बुझाना चाहिये। जब वह बिखरकर टुकडे-टुकडे हो जाय तब उसको एक मिट्टी के सकोरे में घीगु गुदा के बीच में रखकर उस सकोरे का मुँह कपडमिट्टी से बद कर गजपुट की आँच में फूँक देना इससे उत्तम सफेद रग की भस्म तैयार होती है।

बम्बई—

इग्लिश—

मोती की सीप की भस्म में मोती भस्म की तरह ही केलसियम की पर्याप्तमात्रा रह)। मनुष्य शरीर में केलसियम की कमी से जो-जो रोग उत्पन्न होते हैं उन रोगों में इस भस्म

होता है। मोती की भस्म में और भी जो-जो गुण होते है वे कुछ हलके रूप में मोती की सीप की भस्म के अंदर भी रहते हैं। इसलिये मोती की भस्म के अभाव में उसके प्रतिनिधि रूप में मोती की सीप की भस्म ली जा सकती है।

उपयोगः—

श्वास और खाँसी—मोती की सीप की भस्म को अदरक के रस में घोटकर चने के बराबर गोलियाँ बनाकर २ गोली नित्य देने से श्वास और खाँसी मिटती है।

नेत्रपीडा—मोती की सीप की भस्म का अंजन करने से पलकों की खुजली और नेत्रपीड़ा मिटती है।

तिल और मस—इसकी भस्म को सिरके में मिलाकर मालिश करने से मस और तिल मिटते हैं।

योनि का ढीलापन—सीप को महीन पीसकर नित्य दो बार योनि में मलने से योनि का ढीलापन मिटता है और वह सकुचित हो जाती है।

मूत्र की रुकावट—सीप को पीसकर नाभि के आसपास लेप करने से मूत्र की रुकावट मिटती है।

मस्तक पीडा—सीप को सिरके में घिसकर कानों की पपडी पर लेप करने से जुकाम की मस्तक पीडा मिटती है।

दाँतों की पीडा—सीप की भस्म से दाँतों का मंजन करने से दाँतों की पीडा मिटती है और वे निर्मल हो जाते हैं।

बच्चों का दंतकष्ट—बच्चों के गले में मोती की सीप लटकाने से उसको दाँत निकलने के समय का कष्ट नहीं होता।

यूरमकेरा

नाम:—

तेलगू—यूरमकेरा, नेकेश, कुदनकेरा। तामील—कदारजो। इंग्लिश—Mountain Plum (माउन्टेनप्लम)। लेटिन—Ximenia Americana (क्सिमेमिया अमेरिकेना)।

वर्णन—यह एक छोटी जाति की बहुशाखी झाडी होती है। इसके फूल सफेद और सुगंधित होते हैं। इसके फल पकने पर गहरे नारंगी रंग के हो जाते हैं। यह वनस्पति पश्चिमीघाट, सीलोन, मलाया और अमेरिका में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति की लकडी संदल की लकड़ी के प्रतिनिधि रूप में काम में ली जाती है। इसके बीज

विरेचक होते हैं। इसकी जड़ों का गरम पानी में तैयार किया हुआ क्वाथ रक्तप्रधान प्रवाहिका रोग में काम में लिया जाता है।

रक्तरोहिड़ा

नामः—

संस्कृत—रोहिक, रोही, प्लीहशत्रु, दाडिम पुष्पक, इत्यादि। हिन्दी—रक्त रोहिडा। मराठी—रक्तरोहिडा। गुजराती—रोहियो, रगतरोहिडो। पंजाब—रुहेडा। बंगाल—रोढा। लेटिन—Tacoma Undulata (टेकोमा अन्ड्यूलेटा)।

वर्णन—रक्तरोहिड़े का वृक्ष मध्यम कद का होता है। इसकी ऊँचाई १० से लेकर २५ फुट तक होती है। इसके पत्ते अनार के पत्तों की तरह होते हैं। इसके फल नारंगी रंग के चमकदार और निर्गन्ध होते हैं। इसकी फलियाँ ६ से आठ इंच तक लंबी और मुडी हुई होती है। इसके एक प्रकार का भूरे रंग का गोंद लगता है। यह वनस्पति सिंध, पंजाब, गुजरात, खानदेश और राजपुताना इत्यादि प्रान्तों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से रोहिडा स्निग्ध, कसेला, चरपरा, रक्तशोधक, कडवा, शीतल, सारक तथा कृमिरोग, प्लीहा, रुधिर विकार, व्रण, कान के रोग, आँख के रोग, विषविकार, नेत्ररोग, गुल्म, यकृत के रोग, कफ, वात, कब्जियत, मेदशूल, आफरा और भूत बाधा को नष्ट करता है।

रक्तरोहिडे की छाल जमे हुए रक्त को बिखेरने में अक्सीर मानी जाती है। इसलिए चोट और पछाड में अगर कहीं रक्त जम गया हो तो इसकी छाल को औटा कर उसमें दूध मिला कर पिलाते हैं। इसव छाल और पत्ते क्षय, खासी और ज्वर में लाभ पहुँचाते हैं। इसकी लकडी तिल्ली और यकृत सम्बन्धी र व्याधि में उपयोगी मानी जाती है। रक

इसकी छाल के चूर्ण से एक प्रकार की गुलाबी चाय तयार की जाती है। इसकी छाल के आ चूर्ण को २० तोले खौलते हुए दूध में डाल देने से यह चाय तयार होती है। यह चाय स्वास्थ्य आयुवर्द्धक होती है।

उपयोग—

उपदंश—इस वृक्ष की छोटी छोटी कोमल डालियों का क्वाथ बनाकर पिलाने से उ लाभ होता है।

उदर रोग—रक्तरोहिडे की छाल और हरड के फल की छाल को पीस कर उसमें देकर उस चूर्ण का सेवन करने से तिल्ली और उदर के रोग मिटते हैं।

बेल। बम्बई— । इंग्लिश— डिका)।

प्रदर—इसकी जड की छाल को पीसकर उसमें शहद और मिश्री मिलाकर खाने से श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर दोनों में लाभ होता है।

रक्तरोहिड़ा (२)

नाम:—

संस्कृत—रक्तरोहित। बम्बई—रक्तरोहिडा। इंग्लिश—Indian Buckthorn (इंडियन ब्यूकथार्न)। तामील-पेपुल्ला। लेटिन-Rhamnus Wightii (र्हेमनस विटी)।

वर्णन—यह रक्तरोहिड़े की एक दूसरी जाति होती है। कीर्तिकर और वसु ने अपने इंडियन मेडिसिनल प्लाट्स में इसी वनस्पति को रक्तरोहिडा लिखा है मगर अन्य ग्रन्थों में 'टेकोमा अन्ड्यूलेटा' को ही रक्तरोहिडा बतलाया है जिसका वर्णन हम ऊपर दे चुके है। यहाँ पर इस वनस्पति का भी संक्षिप्त विवरण दे देना उचित समझते हैं।

इस वनस्पति की बहुत बडी झाडी होती है। इसके पत्ते आमने सामने लगते हैं। के कंगूरेदार होते हैं। इसकी छाल मोटी, कठोर और लाल रंग की होती है। यह वनस्पति पश्चिमी घाट, नीलगिरि पर्वत और लंका में बहुत ऊँचे स्थानों पर पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह वनस्पति संकोचक, पौष्टिक और बाधानाशक होती है।

इसकी एक वर्ष पुरानी छाल का शरबत बनाकर देने से दस्त के साथ खून जाना बन्द हो जाता है और दस्त साफ होने लगता है। इसकी ताजी छाल को पानी में पीस कर सूजन और बवासीर के मस्सों पर लेप करते हैं।

रक्तरोहिड़ा (३)

नाम—

बम्बई—रक्तरोहिडा। बंगाल—विशागनी। आसाम-पयारुभा, लखोरना। संथाल—जिओटी। तामील-अटलारी। लेटिन-Polygonum Glabrum (पोलीगोनम ग्लेब्रम)।

वर्णन—यह निसोमली अथवा मचोटी के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसकी डालियां कोमल हालत में हरी और पकने पर लाल हो जाती हैं। इसके पत्ते ३ से लेकर ५ इंच तक लम्बे और आधे से लेकर १ इंच तक चौड़े होते हैं। इसके कोमल पत्ते लाल रंग के होते हैं। इसके फूल गुलाबी रंग के होते हैं। यह वनस्पति प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का शीत निर्यास बबई के अन्दर कॉलिक उदरशूल को रोकने के लिये दिया जाता है। छोटा नागपुर में इसके पत्ते पसली के दर्द को दूर करने के काम में लिये जाते हैं और आसाम में यह वनस्पति ज्वर को दूर करने के काम में ली जाती है।

रंजन (बड़ी गुमची)

नामः—

सस्कृत—रजक, क्षारक। बगाल—रंजन, रक्त कम्बल, रक्तकंचन। दक्षिण—बडी गुमची, हट्टी गुमची। गुजराती—बडी गुमची। हिन्दी—बडी गुमची, रक्त चदन। मराठी—थोरली गज, वाल। अँग्रेजी—Redwood (रेडवुड)। लेटिन—Adenanthera Pavonina (एडेनेंथेरा पेवोनिना)।

वर्णन—यह एक छोटा और बिना शाखाओंवाला वृक्ष होता है, इसके पत्ते दो दो के जोड में लगते हैं। ये ८ से लेकर १२ इन्च तक लम्बे होते हैं। इसके फूल का भीतरी हिस्सा पीले रग का होता है। इसके बीज गोल, काले रङ्ग के और चमकीले होते हैं। यह वनस्पति बगाल, बरमा और पश्चिमीघाट में पैदा होती है।

इसके बीजों का चूर्ण लेप के रूप में फोडों को जल्दी पकाने के लिये लगाया जाता है। दक्षिणी भारत में इसके पत्तों का काढा तयार करके प्राचीन सधिवात, गठिया और कटिवात को दूर करने के लिए दिया जाता है। अगर इस काढे को अधिक समय तक सेवन किया जाय तो यह कामोद्दीपन का काम करता है। इसके पत्तों का काढ़ा आँतों से होनेवाले रक्तश्राव और मूत्र के साथ रक्त जाने की बीमारी में उपयोगी माना जाता है।

लारियूनियन में इसका पौधा सकोचक माना जाता है और यह सधिवात तथा गले के व्रण को दूर करने के उपयोग में लिया जाता है। इसके बीजों में १४ प्रतिशत तेल और २५ प्रतिशत लिग्नोसेरिक एसिड पाया जाता है।

रंगून की बेल

नामः—

हिन्दी—रगून की बेल। मराठी—रगूनची बेल, लाल चमेली। गुजराती—बरमासीनी बेल। बम्बई—विलायती चमेली। पोरबन्दर—झुम्मकबेल। तामील-इरगूमल्लि। तेलगू—रगूनी मेल। इग्लिश—Rangoon Creeper। लेटिन—Quisqualis Indica (क्विसक्वेलिस इंडिका)।

वर्णन—यह सुन्दर लता प्रायः भारतवर्ष के बहुत से बगीचों में लगाई जाती है। इसके पत्ते गोल, गहरे हरे रंग के और रुएँदार होते हैं। इसके फूल रंगबिरंगे, बहुत सुगंधित और झुमकों में लगते हैं। ये पहिले सफेद रंग के होते हैं और फिर गहरे लाल रंग के हो जाते हैं। इसके बीज काले रङ्ग के होते हैं। औषधि प्रयोग में ये ही बीज काम में आते हैं। यह वनस्पति बरमा में विशेष रूप से पैदा होती है मगर भारतवर्ष के बगीचों में भी यह लगाई जाती है।

इस वनस्पति का कृमिनाशक धर्म बहुत महत्वपूर्ण है। इसके २।३ बीजों को पीस कर शहद में मिलाकर देने से पेट में पड़नेवाले गोल कृमि (Round Woruns) नष्ट हो जाते हैं।

इनके पत्तों का काढा बनाकर पिलाने से पेट के अन्दर की कोष्ठवायु निकल जाती है और उदर शूल बन्द हो जाता है।

चीनी लोग इसके बीजों को पीसकर प्रवाहिका और ज्वर को रोकने के लिए देते हैं।

मलाया में बच्चों की आंतों में पड़नेवाले कृमियों को नष्ट करने के लिए इसके ४ या ५ बीजों को कुचलकर शहद में मिलाकर देते हैं।

रंघेवड़ा

नामः—

संस्कृत—नादिनिष्पावा। मराठी—रंघेवड़ा। गुजराती—कमलवेल। काठियावाड़—दरियावेल। कच्छ—खाटीवालोर। लेटिन—Cylista scariosa (सिलिस्टा स्केरिओसा)।

वर्णन—यह एक काष्ठपूर्ण लता होती है। इसकी डालियाँ और शाखाएँ रुएँ से आच्छादित रहती हैं। इसके फूलों का भीतरी हिस्सा पीले रङ्ग का रहता है। इसके बीज कोष रुएँदार और छोटे होते हैं। हर एक बीजकोष में एक-एक बीज रहता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसके पीले फूल वाली जाति के फल कड़वे और कसैले होते हैं। ये रुचिवर्द्धक भूख बढ़ाने वाले, आंतों का संकोचन करनेवाले, रक्त को शुद्ध करनेवाले, पित्त और कफ को शमन करनेवाले और गले की पीड़ा में लाभदायक होते हैं। ये वात को बढ़ानेवाले होते हैं।

जड़ी बूटियों को बेचनेवाले लोग इस वनस्पति की जड़ों को संग्रह करके इसको पेचिश और श्वेत प्रदर की दवा के नाम से बेचते हैं। क्योंकि इसके संकोचक तत्व बहुत ही उत्तम होते हैं। यह वनस्पति दूसरे लेप द्रव्यों के साथ मिलाकर अर्बुद या गठानों पर लेप की जाती है। जिससे वे गठानें बैठ जाती हैं।

रतनजोग

नामः—

पंजाब—रतनजोग, पाडर। कुमाऊँ—रतनजोग, काकरिया। लेटिन—Anemone obtusi-loba (एनेमोन आबटूसीलोबा)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है। इसकी जड कन्द के रूप में होती है। इसके पत्ते बहुत घने लगते हैं। ये हृदयाकृति के होते हैं। इसके फूल सफेद और नीले रङ्ग के होते हैं। यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से लेकर सिकिम तक ८ हजार फीट से १५ हजार फीट को ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी छाल और इसके पत्ते गरम, खुश्क और कडवे होते हैं। ये तिल्ली और गुर्दे की शिकायतों को दूर करते हैं, पीलिया में लाभ पहुँचाते हैं, इनको शराब के साथ लेने से साँप के विष में लाभ पहुँचता है। मुँह के छालों को भी ये दूर करते हैं। इनको कुछ अधिक मात्रा में खा लेने से सिर में दर्द पैदा हो जाता है।

स्टेवर्ट के मतानुसार इसकी जड को कुचलकर दूध के साथ मिलाकर पिलाने से शस्त्र के लगे हुए जख्मों में लाभ होता है। कहीं-कहीं पर यह वनस्पति छाला उठानेवाले द्रव्य की तरह उपयोग में ली जाती है।

इसके बीजों को पेट में देने से वे वमन और दस्त पैदा करते है। इसके बीजों का तेल सधिवात मे उपयोग में लिया जाता है।

रतन जोत

नाम—

संस्कृत—अजनकेशी, धामनी, कपोतचरणा, नाली, नलिनि, नर्तकी, रक्तदला, स्तुत्या हिन्दी—रतन-जोत। पजाब–लालजरी, महारङ्गा, रतनज्ञोत। नेपाल–नेवार, महारङ्गी। लेटिन–Onosma Echioides (ओनोस्मा इचिआइड्स)।

वर्णन—यह वनस्पति हिमालय मे कश्मीर से कुमाऊँ तक ५ हजार फीट से ९ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका पौधा कडवा, तीक्ष्ण, मृदुविरेचक, कृमिनाशक और विषविकार को दूर करनेवाला होता है। यह नेत्र रोग, खासी, उदर शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्यास, खुजली, श्वेत, कुष्ठ, ज्वर, जखम ववासीर, मूत्राशय की पथरी और रक्त की अव्यवस्था को दूर करता है।

इसकी जड को कुचलकर फोडे फुंसियों पर लेप करने से लाभ होता है। इसके पत्ते धातु परिवर्तक होते हैं और इसके फूल उत्तेजक और हृदय के लिये पौष्टिक होते हैं। ये हृदय की धड़कन (Pulpitations of Heart) और सन्धिवात के अन्दर उपयोगी समझे जाते हैं। इसके पत्तों का चूर्ण बच्चों को देने से विरेचक द्रव्य का काम करता है। चर्मरोगों में इसकी जडों का लेप किया जाता है। इस वनस्पति से एक प्रकार का लाल रङ्ग प्राप्त किया जाता है जो तेलों में रङ्ग देने के काम में लिया जाता है।

उपयोग—

गठिया—रतनजोत को तेल में औटाकर उस तेल का मालिश करने से गठिया में लाभ होता है।

मिरगी—रतनजोत को पीसकर नाक में टपकाने से मिरगी वाले की मूर्छा मिटती है।

हृदयरोग—रतनजोत के पत्तों को औटाकर पिलाने से हृदय को बल मिलता है और उसकी अस्वाभाविक धड़कन मिट जाती है।

रुधिरविकार—इसके पत्तों के रस में शहद मिलाकर पिलानेसे रुधिरविकार मिट जाता है।

रतनजोत (२)

नामः—

पंजाब—रतनजोत। लेटिन—Potentilla Nepalensis (पोटेंटिला नेपालेंसिस)।

वर्णन—यह एक वर्षजीवी वनस्पति होती है। इसके फूल गुलाबी रङ्ग के होते हैं। यह वनस्पति हिमालय में मरी और काश्मीर से लेकर कुमाऊँ तक ५ हजार फीट से ८ हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड शोषक मानी जाती है। इसकी जड की राख को तेल में मिलाकर जले हुए स्थान पर लगाने से शांति होती है।

रतनजोत (३)

नामः—

हिन्दी—रतनजोत, रोवाना, सूरजमुख, थारू। लेटिन—Clausena Pentaphylla (क्लोसेना पेंटेफिला) Amyris Pentaphylla (एमिरिस पेंटेफिला)।

वर्णन—यह एक सीधी जाति की झाडी होती है। इसकी ऊँचाई १ फुट से लेकर ढाई फुट तक होती है। इसके पत्ते एक के बाद एक लगे हुए रहते हैं। इसके फूल कुछ पीलापन लिए हुए रहते हैं। इसके फल

छोटे-छोटे रसदार, पीले तथा नारङ्गी के रङ्ग के होते हैं। यह वनस्पति कुमाऊँ, नेपाल, सिकिम, चपारन और अवध के जङ्गलों में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति की छाल पशु चिकित्सा के अन्दर बहुत उपयोगी होती है। इसके चूर्ण को मीठे तेल मे मिला ताजा जख्मों पर लगाने के काम में लिया जाता है। मॉसपेशियॉ और जोडों की ऐंठन तथा मोच और रगड में इसके चूर्ण को १५ मिनट तक मीठे तेल में औटाकर पुल्टिस की तरह लगाया जाता है।

रतनपुरुष

नामः—

संस्कृत–पुष्करनादि, पुष्करणी, शारदा, सुगन्धमूल, लक्ष्मीश्रेष्ठ, पुरुषरत्न। बबई—रतनपुरुष। मराठी—रतनपुरुष। हिन्दी—रतनपुरुष। बगाल—नुनबोरा। तेलगू—पुरुषरत्नम्, सूर्यकांति। सथाल—बिरसूरजमुखी, टाडीसोल। लेटिन—Ionidium Enneaspermum (आयोनिडियम एनेस परमम) Ionidium Suffruticosum (आयोनिडियम सफ्रूटीकोसम)।

वर्णन—यह बहुवर्षजीवी क्षुद्र वनस्पति ६ से लेकर १० इञ्च तक ऊँची होती है। इसकी छोटी २ शाखाएँ बहुत फैली हुई रहती हैं। इसके पत्ते छोटे, बरछी आकार के, १॥ इञ्च से लेकर २ इञ्च तक लम्बे और कटी हुई किनारों के होते हैं। इसके फूल छोटे, लाल और किरमजी रग के होते हैं। इसकी जडें ३ से ४ इञ्च तक लबी और पीलापन लिये सफेद रग की होती हैं। इसके बीज पीलापन लिये सफेद रग के होते हैं। यह वनस्पति बुन्देलखण्ड, आगरा, बगाल, मद्रास, गुजरात, खानदेश कर्नाटक और सीलोन में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति का पौधा कडवा, कसेला, आसानी से हजम होनेवाला और कफ, पित्त, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशय की पथरी, अतिसार, वमन, दाह, चित्त भ्रम, अनैच्छिक वीर्य श्राव, रक्त विकार, दमा, मृगी, और खासी में लाभ पहुँचाता है। यह स्तनों को कठोर करता है।

सथाल जाति के लोग इसकी जड को बच्चों के आँतों सम्बन्धी रोगों को दूर करने के लिये देते हैं। रतन पुरुष में शीतल, स्नेहन और मूत्रल धर्म रहते हैं। इसका स्नेहन धर्म उत्तम होता है। इसका मुलेठी के साथ काढा बना कर देने से सुजाक की जलन कम होती है। इसके चूर्ण की गोलियॉ बना कर देने से खासी का त्रास कम हो जाता है। गर्मी की वजह से होनेवाले सिर दर्द में इसके स्वरस को तेल के साथ मिला कर सिर पर मालिश करने से शाति मिलती है।

महर्षि चरक के मतानुसार इसका फल दूसरी औषधियों के साथ मिला कर साप और बिच्छू के विष को दूर करने के लिये दिया जाता है। मगर केस और महस्कर के मतानुसार सर्प विष में यह वनस्पति बिलकुल निरुपयोगी होती है।

रताळू

नाम:—

संस्कृत—रोमशकन्दक, स्वादुकन्दक, कदग्रन्थी, रक्तालु, रक्तपिंडक, रक्तकन्द, इत्यादि। हिन्दी—रताळू, शकरकन्द। गुजराती—रताळू, शकरकन्द। मराठी—लालरतालें, पांढरे रतालें। बंगाल—लाल बिंहालू, लाल आलू, लाल शकरकन्दालु। फारसी—लारदककलाहोरी, जमीकन्द। उर्दू—शकरकन्द। इंग्लिश—Sweat Potato (स्वीट पोटेटो) लेटिन—(Ipomaea Batatas) इपोमिया बटाटास)।

वर्णन—यह कन्द सारे भारतवर्ष में पैदा होता है। इसकी लाल और सफेद दो जातियाँ होती है। इसका कन्द शाक, तरकारी, हलुवा इत्यादि बनाने के काम में आता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत से रताळू का कन्द मीठा, शीतल, कामोद्दीपक और मूत्रकृच्छ्र, दाह और प्रमेह को दूर करता है। यह वात और कफ को पैदा करता है।

सफेद रतालु शीतल, मधुर, भारी, और कामोद्दीपक होता है। यह दाह, शोष, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है।

लाल रतालु शीतल, मधुर, खट्टा, भारी, बलकारक और पौष्टिक होता है। यह दाह, पित्त और श्रम का नाश करता है।

रतालु के अन्दर आलू की अपेक्षा शक्कर और आटे का अश अधिक होता है। लेकिन मांस वर्द्धक द्रव्य की इसमें कमी रहती है।

बिच्छू के विषपर रतालु की बेल के पत्तों को पीस कर लगाने से तथा सूखे हुए रतालुओं को पानी में पीस कर लगाने से शाति मिलती है।

यूनानीमत—यूनानीमत से इसका कन्द मीठा, मोटापन पैदा करनेवाला, प्रवाहिका को रोकनेवाला और छाती तथा फेफड़ों को नुकसान पहुँचानेवाला होता है। यह मृदु विरेचक भी होता है। इसके कन्द को पीस कर पानी में मिला कर पीने से प्यास और ज्वर में शाति मिलती है।

गोल्डकास्ट में इसके पत्तों को नमक के साथ पीसकर उँगली की विद्रधि पर लगाया जाता है जिससे २।३ दिन में वह फूटकर अच्छी हो जाती है।

रनभिंडी

नामः—

बम्बई—रनभिंडी। कच्छी—रणभिंडी। गुजराती—तली। तेलगू-मुलगोगू। तामील—कासलीकिराई। लेटिन-Hibiscus Suratensis (हिबिस्कस सुरेटेंसिस) Hibiscus Solandra (हिबिस्कस सोलेंड्रा)।

वर्णन—यह भिंडी की एक उपजाति होती है। इसके पौधे बरसात के दिनों में बहुत पैदा होते हैं। इसका पौधा कहीं २,४ से ६ इंच तक ऊँचा और कहीं-कहीं दो से तीन फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते ३ और ५ कोनों के होते हैं। इसके फूल छोटे और सफेद रङ्ग के होते हैं। इस सारे पौधे पर सफेद रंग का रुँआ होता है। इसका फल छोटी भिंडी की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके लुआबदार फूल कफनिस्सारक और शांतिदायक होते हैं। छुलू जाति के लोग इसके पत्ते और कोमल डालियों का लोशन बनाकर हर प्रकार के मूत्रेन्द्रिय सम्बन्धी प्रदाह को दूर करने के उपयोग में लते हैं। मूत्रनाली की सूजन और उपदंश-जनित फोड़े फुंसियों को आराम करने के उपयोग में भी इस लोशन को लिया जाता है। कभी-कभी इस वनस्पति का मलहम बना करके भी इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये उसका प्रयोग किया जाता है। सुजाक और मूत्रनाली की सूजन में इसके शीत निर्यास की मूत्रनाली में पिचकारी दी जाती है।

यह वनस्पति ढोरों के लिये एक उत्तम घास का काम भी करती है। गर्मियों के दिनों मे इस वनस्पति के हरी हालत में सुखाये हुए पौधे ढोरों के लिये उत्तम घास का काम करते हैं। इसके फल दूध देनेवाले ढोरों को खिलाने से उनका दूध बढ़ता है।

रक्तस्कंदन

नामः—

संस्कृत—रक्तस्कंदन, व्रणपट। नीलगिरी—काटपलास्टर। लेटिन—Anaphalis Neelgerriana (एनाफेलिसनीलगेरिना)।

वर्णन—यह घनी डालियोंवाली और घने पत्तोंवाली वनस्पति नीलगिरी पर्वत पर बहुत ऊँचे स्थानों पर पैदा होती है। इसकी शाखाएँ मजबूत और काष्ठमय होती है। इसके पत्ते सुई के समान बारीक और आधे इंच लंबे होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके ताजा पत्तो को पीस कर उनका प्लास्टर बनाकर जख्म पर बांधने से बहुत लाभ होता है।

रंगाकालो

नामः—

उरिया—रंगाकालो। तेलगू-नेपालेमू। तामील—अदालाई। लेटिन—Jatropha Gossypifolia जेट्रोफा गॉसिपिफोलिया।

वर्णन—यह दती के वर्ग की एक वनस्पति होती है। इसका पौधा झाड़ीनुमा होता है। इसके छोटे छोटे लाल रंग के फूल आते हैं। इस वनस्पति का मूल उत्पत्ति स्थान ब्राझील है मगर यह हिन्दुस्तान के कई हिस्सों में भी पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस वनस्पति की छाल का काढा ऋतुश्राव नियामक होता है। इसके पत्ते बालतोड़, विस्फोटक, कारबंकल, एक्झिमा और खुजली पर लगाने के काम में लिये जाते हैं। इसके बीज वमनकारक होते हैं, मगर इनका सेवन उन्माद और पागलपन पैदा करता है। इसकी पुरानी डालियों का सत्व जो कि कुछ पीला और भूरे रङ्ग का होता है वह गोल्ड कास्ट के बेचनेवालों के यहाँ मिलता है। इस सत्व को साफ कपड़े में रखकर नाक के सुरों में टपकाया जाता है। जिससे बीमार को जोर से छींकें आकर उसका सिर दर्द दूर हो जाता है।

इसके पत्ते और बीज विरेचक द्रव्य की तरह भी काम में लिए जाते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि इसके पत्तों को पानी में उबाल कर उस पानी से स्नान करने से ज्वरउतर जाता है। इसके पत्तों का रस बच्चोंकी जबान पर लगाने से उनकी जबान के छाले अच्छे हो जाते हैं।

* समाप्त *